कनौजी लोकसाहित्य

अभिनव प्रकाशन

२१ ए दरियागंज दिल्ली ११०००६

(लखनऊ विश्वविद्यालय की पी एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोधप्रबन्ध)

कनौजी लोक साहित्य

डॉ. सन्तराम अनिल

अभिनव प्रकाशन

प्रकाशक
अभिनव प्रकाशन
२१ ए दरियागंज दिल्ली ११०००६

प्रथम संस्करण १९७५

मूल्य
४५ रुपये

मुद्रक
रमेश कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा
प्रिंट आर्ट नवीन शाहदरा,
दिल्ली ३२ में मुद्रित

Published by R. S CHAUHAN

गृहिणी-सचिव मित्र दमयन्ती

को

प्रस्तुति

मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता हुई है कि डा० सन्तराम 'अनिल' का शोध प्रबन्ध प्रकाशित हो रहा है। कनौजी लोक साहित्य पर किया गया यह अनुशीलन बड़ा रोचक और महत्त्वपूर्ण है—विशेषरूप से इस कारण कि लेखक का कनौजी क्षेत्र से 'धरती के पूत' का सम्बन्ध है अत उसके लोक साहित्य के मम को उसने भली भाँति जाना-पहिचाना और देखा-परखा है।

लोक साहित्य किसी भी क्षेत्र की धरती पर दूर्वांकुर फल फल एव लता वृक्षो की भाँति अकुरित और विकसित होता है। एक मुख का सृजन सहस्र मुखों मे परिमार्जित होकर जिस प्रकार सहज मिठास और भाव भगिमा को ग्रहण करता है, वसा मँजकर निखरने का सौभाग्य एक साहित्यकार की विशिष्ट रचना को प्राप्त नही हो सकता, जिस पर मार्जन की कुदृष्टि डालने का साहस कोई दूसरा साहित्यकार नहीं कर सकता। यही कारण है कि कलाकार के बनाए चित्रो और कारीगर की कागजी शिल्प रचना के फल फूलो की अपेक्षा मिट्टी से फूट निकलने वाली डालियों पर किरणों की पुचकारों से खिलने हँसन वाल फूलो की छटा निराली होती है। वही विशेषता सहज नि सत उन्गीय के रूप मे हजारो कठो म गूँजने और असख्य जीभों पर नाचने वाले लोक साहित्य मे भी होती है। अत उसकी मर्म-भरी विशेषताओ को पहचानने और परखने वाला वही हो सकता है जिसका धरती से सीधा सम्बन्ध हो।

इसी सम्बन्ध के कारण डा० 'अनिल' का यह अध्ययन अनेक विशेषताओ म लोक साहित्य का यथाथ और व्यवस्थित वर्गीकरण है, क्योकि उसकी प्रत्येक शाखा प्रशाखा का अनिल' जी को सम्यक ज्ञान है फिर उसके भेदा प्रभेदो की सूक्ष्म विशिष्टताओं का अलग अलग स्पष्ट करना भी उनके लिए सुगम है। इसी वर्गीकृत विवेचन के कारण यह ग्रथ आद्योपांत रोचक एव ज्ञान-वद्धक है।

इस व्यापक और परिपूर्ण अध्ययन में उन्होंने कनौजी लोक-साहित्य की साहित्यिक गरिमा, भाषागत विशेषताओं तथा उसके ऐतिहासिक धार्मिक, सांस्कृतिक एवं शिक्षागत महत्त्व का भली भाँति उद्घाटन किया है। इस कार्य को पूरा करने के हेतु डॉ० अनिल ने बड़ा परिश्रम किया है। अतः उन्हें पी-एच० डी० की उपाधि से जो लाभ हुआ है, वह उनकी निजी उपलब्धि थी। इसके प्रकाशन से अब इसका लाभ समाज और अध्येता भी उठा सकेंगे, यह सन्तोष की बात है। इसके प्रकाशन पर प्रसन्नता व्यक्त करने के साथ, मैं यह भी आशा करता हूँ कि डा० 'अनिल' इस प्रकार के अन्य ग्रन्थ भी तैयार कर प्रकाशित कराएँगे। इसके लिए मेरी शुभकामनाएँ हैं।

आषाढ़ पूर्णिमा ७५

— भगीरथ मिश्र
आचार्य एवं अध्यक्ष,
हिन्दी विभाग,
सागर विश्वविद्यालय, सागर

प्राक्कथन

किसी भी प्रदेश की सस्कृति का जीता जागता चित्र उसके लोक-साहित्य मे प्रतिबिम्बित होता है। समाज के विकास की सूक्ष्मातिसूक्ष्म रखा, सामाजिक बोध की एक एक अवस्था, जन-जन की आशा निराशा हर्ष विषाद, आवश-आक्रोश, शौय-पराक्रम, राग-वराग्य, मनन चिन्तन—सभी की सटीक एव सजीव अभिव्यक्ति लोक साहित्य क माध्यम से होती है। अपने इसी अपरिमय गुण के कारण लोक-साहित्य वस्तुत लोक-सस्कृति का पर्याय-सा बन गया है। एक ओर वह साहित्य मनीषियों तथा दूसरी ओर समाज शास्त्रियो एव नतत्व-वेत्ताओ का ध्यान बरबस अपनी ओर खींच रहा है। यही कारण है कि ससार क सभी दशो म लोक-साहित्य-सकलन और उसका सर्वांगीण अध्ययन किया जा रहा है।

हिन्दी की प्राय सभी बोलियो के लोक साहित्य का पुष्कल मात्रा म सकलन और विवेचन किया गया है। कनोजी बोली इस दृष्टि स सवथा उपेक्षित रही है—इसक लोक-साहित्य की किसी विधा का न सकलन हुआ है और न विवचन। इस अभाव को दूर करने के लिए लेखक न कनौजी लोक साहित्य की विविध विधाओ क सकलन का श्रीगणेश सन् १९५४ म कर दिया था। सकलन काय कभी मथर और कभी तीव्र गति से सन् १९६४ तक चला। सन् '५५ तक जो लोकगीत एकत्र हो चुक थे उनको आधार बनाकर सन् ५६ की लखनऊ विश्वविद्यालय की एम० ए० हिन्दी परीक्षा के लिए लघु शोध प्रबन्ध 'कनौजी लोकगीत प्रस्तुत किया गया और इस पर लेखक को स्वण पदक प्राप्त हुआ। अगले वष विश्वविद्यालय ने इस प्रकाशित किया और सन १९५८ म उत्तर प्रदेश सरकार ने इस पुरस्कृत किया। इसी बीच काशी नागरी प्रचारिणी सभा की ओर स हिन्दी साहित्य का वृहद् इतिहास' के सोलहवे खड क रूप म महापडित राहुल साकृत्यायन द्वारा सपादित हिन्दी का लोक-साहित्य सन १९६० मे प्रकाशित हुआ। इस ग्रथ म 'कनौजी लोक-साहित्य' से सबद्ध अश लेखक द्वारा प्रस्तुत किया गया।

प्रस्तुत कृति लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा पी-एच० डी० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबध का सशोधित रूप है। प्रबन्ध सात अध्यायों में विभक्त किया गया है।

प्रथम अध्याय में कनौज और कनौजी की व्युत्पत्ति और विकास दिखलाते हुए कनौजी बोली का परिचय दिया गया है। अन्य बोलियों और विशेषतः ब्रज से साम्य-वैषम्य दिखलाकर स्थापना की गई है कनौजी ब्रज का एक उपरूप न होकर स्वतन्त्र एवं पृथक् बोली है। कनौजी के विश्लेषण के बाद लोक साहित्य के स्वरूप तथा उसकी विविध विधाओं का विवेचन करते हुए कनौजी लोक साहित्य का वैज्ञानिक पद्धति में वर्गीकरण किया गया है।

--- —

द्वितीय अध्याय में लोकगीतों का सैद्धान्तिक विवेचन किया गया है। अन्य विद्वानों के वर्गीकरणों की पृष्ठभूमि में देखकर लेखक ने लोकगीतों का स्वतन्त्र और मौलिक वर्गीकरण किया है। वर्गीकरण के उपरान्त कनौजी लोकगीतों का विस्तारपूर्ण विश्लेषण तथा साहित्यिक मूल्यांकन किया गया है।

तृतीय अध्याय में कनौजी की विशिष्ट विधा 'पँवारा' का अध्ययन किया गया है। पँवारे ब्रज तथा बुन्देली में प्रचुर मात्रा में हैं किन्तु कनौजी के पँवारे जितने व्यापक रूप में प्रसिद्ध हैं उतने अन्य पँवारे नहीं। आल्हा तो पँवारों का प्राण है जो कनौजी में अपनी ख्याति के चरम बिन्दु पर है। पँवारा के शिल्प पर सम्भवतः किसी शोध-कर्ता का ध्यान नहीं गया था। इस अध्याय में कनौजी पँवारों के शिल्प-सौंदर्य का भी विवेचन किया गया है।

चतुर्थ अध्याय में कनौजी के लोक कथा साहित्य का अध्ययन किया गया है। लोक कथाओं के स्वरूप का विवेचन करके वर्गीकरण सम्बन्धी पद्धतियों का पुनर्परीक्षण किया गया है और वर्गीकरण की एक नई पद्धति को स्थिर करके कनौजी लोक कथाओं का वर्गीकरण और वैज्ञानिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

पंचम अध्याय में कहावतों की व्युत्पत्ति तथा स्वरूप का विश्लेषण किया गया है तथा कनौजी कहावतों को विविध वर्गों में रखकर उनका अध्ययन किया गया है।

षष्ठ अध्याय में पहेलियों को परिभाषित करके उनका वर्गीकरण किया गया है। विश्लेषण में इस बात पर विशेष बल दिया गया है कि पहेलियाँ एक ओर बुद्धि को तीव्र बनाने का कार्य करती हैं तो दूसरी ओर मनोरंजन का साधन भी होती हैं।

सप्तम अध्याय में कनौजी लोक-साहित्य की सभी विधाओं में चित्रित समाज एवं संस्कृति के स्वरूप का व्यापक एवं सर्वांगीण विवेचन है। इसमें सामाजिक पारिवारिक सम्बन्धों के अतिरिक्त खान-पान, वेश भूषा, रहन-सहन, रीति रिवाज, धार्मिक-आर्थिक जीवन, संस्कार तथा उनके सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेदों पर दृष्टिपात किया गया है।

शोध प्रबंध की मौलिकता के सम्बन्ध में इतना ही कहा जा सकता है कि लोक साहित्य की विधाओं के स्वरूप को स्पष्ट करने में जहाँ लेखक ने अनेक लोक-साहित्य मीमांसकों के चिंतन का लाभ उठाया है, वहीं उसने विविध विधाओं को परिभाषित करना उनका वर्गीकरण करना तथा उनका साहित्यिक, सामाजिक सांस्कृतिक विश्लेषण करना—सभी में कुछ नई दृष्टि देने का भी विनम्र प्रयास किया है। जहाँ तक कनौजी लोक साहित्य के संकलन और उसके विश्लेषण का प्रश्न है, लेखक की उसमें पूर्ण मौलिकता है, क्योंकि किसी भी संकलन ग्रंथ के अभाव में स्वयं लेखक को ही गाँव गाँव घूमकर सारी सामग्री एकत्र करनी पड़ी है और उसका विवेचन भी उसे अपनी सूझ-बूझ से करना पड़ा है।

प्रस्तुत प्रबन्ध को तैयार करने में जिन महानुभावों ने प्रेरणा, निर्देशन एवं सहयोग दिया है उन सभी के प्रति आभार प्रकट करना लेखक अपना परम कर्तव्य समझता है। लेखक सर्वप्रथम अपने पूज्य गुरुवर डा० भगीरथ मिश्र प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय के प्रति नत मस्तक है जिनके स्नेहपूर्ण निर्देशन के बिना यह कार्य सम्भवतः अपूर्ण ही रह जाता। 'प्रस्तुति' के माध्यम से उन्होंने मुझे आशीर्वाद दिया है यह उनकी मुझ पर अनुकम्पा है। दिल्ली विश्व विद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष श्रद्धेय डा० विजयेन्द्र स्नातक ने प्रबन्ध को आद्योपांत पढ़कर अपने बहुमूल्य सुझावों के द्वारा इसकी उपादेयता को बढ़ा दिया है। लेखक उनकी इस कृपा के लिए कृतज्ञ है। लोक साहित्य संकलन में जिन ग्रामीण नर नारियों से सहायता मिली है उन सबके लिए लेखक उनका हृदय से आभारी है। पत्नी दमयन्ती (एम० ए० समाज शास्त्र एवं अंग्रेजी) ने शोध कार्य-काल में न केवल घर की चिन्ताओं से ही मुझे मुक्त रखा है लोक साहित्य के समाज शास्त्रीय एवं साहित्यिक पहलुओं को उजागर कराने में अपने सुझावों द्वारा भी मुझे सहायता दी है। प्रिय बन्धु डा० ज्ञानचन्द गुप्त ने मुझे प्रकाशन कार्य में अनेक प्रकार की सहायता दी अतः उनके प्रति धन्यवाद। प्रकाशक श्री आर० एम० चौहान ने जिस तत्परता के साथ इस रचना का प्रकाशन किया है, उसके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

बी १/५२ अशोक विहार फेज १
दिल्ली ११००५२
१ १० ७५

—सन्तराम 'अनिल'

अनुक्रम

प्रथम अध्याय

विषय-प्रवेश

कन्नौज, कनौजी और उसका लोक साहित्य

उत्तर प्रदेश के फरुखाबाद जिले म स्थित कन्नौज प्राचीन काल के नगर एव साम्राज्य 'कान्यकुब्ज' का विकसित रूप है। प्राचीन भारतीय साहित्य म कान्यकुब्ज का प्रचुर मात्रा मे उल्लेख हुआ है। वाल्मीकि रामायण म इसका सबसे प्राचीन नाम महोदय मिलता है। इसकी स्थापना धर्मात्मा कुश ने की थी।[1] महोदय कान्यकुब्ज का ही एक नाम है इसकी विविध प्रमाणा से पुष्टि होती है।[2] इस कुशस्थल का कान्यकुब्ज नाम किस प्रकार पडा, इसकी मनोरजक कथा है। राजा कुश के घृताची अप्सरा से उत्पन्न सौ पुत्रियाँ थी। एक बार वायु देवता इन कुमारियो को उद्यान म विहार करते देखकर उन पर मुग्ध हो गए और उन्होने विवाह के लिए प्रस्ताव कर दिया। राजा न प्रस्ताव के सम्बन्ध म प्रत्यक कुमारी को बताया किन्तु छोटी के अतिरिक्त सभी न प्रस्ताव को ठुकरा दिया। दवता को इस बात पर क्रोध आ गया और उसने शाप दिया कि उस कन्या के अतिरिक्त सभी कुब्जा हो जाएँ। अत इन ९९ कुब्जा कन्याओ के कारण इस नगर और साम्राज्य का नाम कान्यकुब्ज प्रसिद्ध हो गया।[3]

वदिक काल म कन्नौज पचाल जनपद नाम से प्रसिद्ध था। कहा जाता है कि भरतवशी भ्रम्यश्व के पाँच पुत्र थे इसीलिए इस जनपद का नाम पचाल पडा। पाच नदियो स सिंचित हान के कारण भी इस प्रदश को पचाल कहा जाता था। पौराणिक वणना के अनुसार भी कान्यकुब्ज एक प्रदेश था।[4] महाभारत काल म राजा द्रुपद के कारण इस प्रदश की प्रसिद्धि बढी। प्राचीन जन और बौद्ध साहित्य म भी इस प्रदश

---

१ कुशनामस्तु धर्मात्मा पुर चक्रे महोदयम्—वा० रा० ३६ ६ बाल काड।

२ कान्यकुब्ज महोदयम—अभिधान चिन्तामणि, अभिधान रत्नमाला, शब्दार्थ रत्न समन्वय।

३ दद्रवा धुना च ता कन्या तम कुब्जी कृतापरा।
कान्यकुब्जमिति ख्यातम तत प्रभृति तत्पुरम॥ वा० रा० बाल काड।

४ पद्मपुराण (कन्याकुब्ज माहात्म्य पचम अध्याय)।

शब्द भी अनेक विवरण मिलते हैं। चतुर्थ शताब्दी ई० पू० में मगधवंश नन्दों ने इस प्रदेश को अपने अधीन कर लिया। नन्दों के बाद यह प्रदेश क्रमशः मौर्य, शुंग, कुषाण, गुप्त, मौखरी, गुर्जर प्रतीहार तथा गाहड़वाल शासकों ने इस प्रदेश पर शासन किया। कन्नौज का अंतिम शासक जयचन्द्र था। मुहम्मद गोरी ने इसे परास्त करके मार डाला और इस प्रकार कन्नौज का साम्राज्य-सूर्य अस्त हो गया।

कनौजी

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन भूगोल के अनुसार कन्नौज न केवल नगर का नाम था वरन जो क्षेत्र इसके अधीन थे उन्हें भी कन्नौज कहा जाता था।[1] इस प्रकार राजधानी और देश दोनों एक ही नाम के थे। आज 'कनौजी' या 'कन्नौजी' का जो प्रयोग होता है उसका आशय है प्राचीन 'कान्यकुब्ज' साम्राज्य में बोली जाने वाली बोली। कन्नौज संज्ञा में 'ई' प्रत्यय लगाकर कन्नौजी शब्द बना लिया गया है। स्थानीय लोग कन्नौज शब्द का उच्चारण कनौज के रूप में करते हैं। अतः इस बोली को कनौजी कहना अधिक समुचित है।[2]

कनौजी बोली और उसका क्षेत्र विस्तार

भाषा शास्त्र की दृष्टि से मध्य-देश की मुख्य बोलियों के समुदाय को हिन्दी नाम दिया गया है। हिन्दी को भी पश्चिमी हिन्दी उपभाषा और पूर्वी हिन्दी उपभाषा—दो भागों में बाँटा गया है। इस पश्चिमी हिन्दी उपभाषा वर्ग के अन्तर्गत खड़ी बोली, बाँगरू, ब्रज, कनौजी और बुन्देली—पाँच उपरूप हैं।[3]

कनौजी का क्षेत्र विस्तार

कनौजी का क्षेत्र ब्रजभाषा और अवधी के बीच का प्रदेश है। यह बोली उत्तर में कुमायूँनी, पूर्व में अवधी, दक्षिण में बुन्देली और पश्चिम में ब्रज से घिरी हुई है।

अपने विशुद्ध रूप में कनौजी फर्रुखाबाद, शाहजहाँपुर, हरदोई[4] जिलों में तथा पश्चिमी कानपुर और इटावा के कुछ भागों में बोली जाती है। कानपुर जिले के पूर्वी भाग में अवधी और दक्षिणी भाग में बुन्देली का प्रभाव है। [illegible] के सम्बन्ध में निश्चय कहना कठिन है कि वहाँ की भाषा कनौजी है या नहीं। इन्हें तो बोली को वास्तव में मिश्रित बोली कहना चाहिए।[5] जिला

---

1 डा० ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आव् इंडिया भाग ९, खंड १, पृ० १

2 डा० धीरेन्द्र वर्मा—हिन्दी भाषा और लिपि पृ० ८७

3 डा० ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आव इण्डिया भाग ९, खंड १, पृ० [illegible]

4 वही पृ० १

5 वही, पृ० ३८[illegible]

पीलीभीत की बोली के रूपो मे 'ब्रज भाषा' का प्रभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है।[1] मोटे रूप से कहा जा सकता है कि 'कनौजी' के क्षेत्र के अन्तर्गत फर्रुखाबाद, शाहजहांपुर, हरदोई, कानपुर, इटावा और पीलीभीत छः जिले आते है।[2] ब्रज और अवधी के बीच पड जाने से कनौजी का क्षेत्र बहुत सकुचित हो गया है। यह भूभाग प्राचीन काल मे पचाल जनपद के नाम से प्रसिद्ध था। इस बोली का केन्द्र 'कन्नौज' नगर है जिससे इसका नामकरण किया गया है।

जनसख्या तथा क्षेत्रफल

उत्तर प्रदेश के राज्य नियोजन सस्थान, अर्थ एव सख्या प्रभाग द्वारा प्रकाशित 'साख्यिकी डायरी १६७३' मे कनौजी बोलने वालो की सख्या एक करोड दो लाख तिरपन हजार तथा क्षेत्रफल सत्ताइस हजार सात सौ तिरसठ वर्ग किलोमीटर है। जिलावार जनसख्या तथा क्षेत्रफल निम्न प्रकार है—

जिला	जनसख्या	क्षेत्रफल (व० कि० मीटर)
कानपुर	३१,२८,०००	६,१०५
इटावा	१५,०५ ०००	४,३२२
फर्रुखाबाद	१६,१२,०००	४,२६१
हरदोई	१६,०८ ०००	६ ०१०
शाहजहांपुर	१३ १६ ०००	४,५६५
पीलीभीत	७ ८१ ०००	३,५००
	१०२,५३,०००	२८,७६३

कनौजी की विशेषताएँ

१ 'ब्रज', 'कनौजी' और 'अवधी' मे मुख्य भेद यह है कि साहित्यिक 'खडीबोली' के सज्ञा, विशेषण तथा क्रियाओ के आकारान्त रूप इन तीन भाषाओं मे क्रमश 'औकारान्त', ओकारान्त'[3] तथा 'अकारान्त या 'आकारान्त' हो जाते है। 'खडीबोली' के 'घरा', 'बडा' और 'गया', 'ब्रज मे 'घूरौ', 'बडौ' और 'गयौ', 'कनौजी' मे 'घूरो', 'बडो' और 'गओ' तथा अवधी मे 'घूर', 'बडका' और 'गा' हो जाते है। अन्य उदाहरणो को लेकर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि जिन शब्दो के खडीबोली मे 'आकारान्त' रूप है वे 'कनौजी' मे ओकारान्त हो जाते है। इस नियम के कुछ ही अपवाद है।

---

१ डा० ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया, भाग ६, खड १ पृ० ४००

२ वही पृ० ८२ ८३

३ वही पृ० ८२ ८३

२ क्रिया के भविष्य निश्चयार्थ के रूपों के लिए 'गगीवाला' में—ग' प्रत्यय लगाकर रूप-रचना होती है पर 'कनौजी' में इस कार्य के लिए—ग प्रत्यय का प्रयोग किसी भी क्षेत्र में नहीं मिलता[1] वरन इसके लिए ह प्रत्यय प्रयुक्त होता है। जैसे रूप चलेगी के लिए 'कनौजी' में 'चलिहै' पाया जाता है।

३ नहिका शब्द में—आ का एकवचन विकृत रूप ए कनौजी में नहीं मिलता।[2] नहके ने दूध पी लिया के स्थान पर नहिका ने दूध पी लिआ होगा। इस वाक्य में नहिका शब्द या-का-ज्यों बना रहा।

४ मध्य—ह का लोप हो जाता है।[3] यह प्रवृत्ति फर्रुखाबाद के पूर्वी भाग तथा इटावा में पाई जाती है। ब्रज का रूप जाहि और रहे, कनौजी' में क्रमशः 'जाय और रहे होते हैं।

५ न अन्य भूतकालिक कृदन्ता के बाद सहायक के या के कनौजी में या या ता रूप हो जाते हैं। पर या या ता का प्रयोग विकल्प से ही होता है, क्योंकि जात हता बहुत हुता—इस रूप भी कनौजी में मिलते हैं।

६ सकर्मवाचक सर्वनाम यह वह के हैं ह एवं जो वो रूप मिलते हैं।

७ व्यंजनान्त संज्ञाओं में कभी-कभी ह जुड़ जाता है। यह प्रवृत्ति ब्रज में भी है पर कनौजी में यह अधिक मात्रा में पाई जाती है।[4]

८ व्यंजनान्त संज्ञाओं तथा क्रिया के बाद इटावा और शाहजहाँपुर में—इ जुड़ जाती है।[5] जैसे रात=राति बरन=बरनि जात है—जाति है।

९ कनौजी में इच्छा बताने के लिए नहिका ने चहा तरा प्रयोग मिलता है।[6] इस प्रकार का प्रयोग अन्य किन्हीं के नियमों के विरुद्ध है और इस डा० धीरेन्द्र वर्मा ने कनौजी की व्यक्तिगत विशेषता मानी है।[7]

कनौजी और ब्रजभाषा

डा० ग्रियर्सन ने कनौजी का स्वतन्त्र-सत्ता को स्वीकार करते हुए कहा है कि कनौजी वास्तव में ब्रजभाषा का ही एक रूप है और इसका पृथक स्थान

---

१ डा० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा पृ० ६३
२ डा० ग्रियर्सन—लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इण्डिया, भाग ९, खण्ड १ पृ० ८२
३ वही पृ० ८२
४ वही पृ० ८४
५ वही पृ० ८३
६ वही पृ० ८२
७ डा० धीरेन्द्र वर्मा—ब्रजभाषा पृ० ३४

सर्वसाधारण मे पाई जाने वाली भावना के कारण दिया गया है।[1] इसी को आधार मानकर डा० धीरेन्द्र वर्मा ने भी 'कनौजी' को स्वतन्त्र बोली न मानकर[2] उसे ब्रज-भाषा का ही एक उपरूप बतलाया है।

'ब्रजभाषा' शोध ग्रन्थ यद्यपि हिन्दी मे १९५४ मे प्रकाशित हुआ परन्तु इसका लेखन काल सन् १९३५ था। इधर वर्मा जी की १९४८ मे जो 'विचार धारा' नाम की पुस्तक निकली है उसके 'अन्तर्गत हिन्दी की बोलियाँ तथा प्राचीन जनपद' नामक निबन्ध मे दिए गए मानचित्र मे तथा १९५० मे प्रकाशित 'ग्रामीण हिन्दी' पुस्तक मे हिन्दी की ग्रामीण बोलियो के मानचित्र मे उन्होने कनौजी की सीमा को ब्रज की सीमा से अलग दिखाया है। इसके अतिरिक्त ब्रजभाषा की चर्चा करते हुए उन्होने यह भी कहा है कि ब्रज के पूर्वी जिले एटा, मैनपुरी और बरेली मे कुछ कनौजीपन आने लगता है।[3] इससे यही प्रतीत होता है कि अब वर्मा जी भी कनौजी को ब्रज से अलग मानने के पक्ष मे हो गए हैं। हाँ इसमे तो कोई सन्देह नही कि ब्रज और कनौजी मे बहुत अधिक समानता है। इसी से उन्हे दो सगी बहनो के रूप मे स्वीकार किया जा सकता है।

प्राचीन काल से ही 'कान्यकुब्ज' की भाषा ने आसपास के प्रदेशो पर प्रभाव डाला है। प्राकृत और अपभ्रंश काल मे ब्रज तथा बुन्देलखण्ड कन्नौज-साम्राज्य के अन्तर्गत थे। अतः इन प्रदेशो की भाषाओ पर कन्नौज की प्राकृत और अपभ्रंश ने पर्याप्त प्रभाव डाला। पर कन्नौज साम्राज्य के नष्ट हो जाने तथा ब्रज के कृष्ण-भक्ति आन्दोलन के कारण 'ब्रज' ने 'बुन्देली और कनौजी' पर आधिपत्य जमा लिया। 'ब्रजभाषा' से अधिक प्रभावित होते हुए भी 'कनौजी' की स्वतन्त्र सत्ता तो है ही। इसी कारण 'भोजपुरी भाषा और साहित्य' मे डा० उदयनारायण तिवारी ने कनौजी की स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया है।[4]

लोक साहित्य का स्वरूप

लोक-साहित्य क्या है ?

भारतीय वाङ्मय मे 'लोक साहित्य' शब्द का प्रयोग सर्वथा नवीन है। यो तो लोक तथा साहित्य दोनो ही शब्द एक महान परम्परा को अपने मे सजोये हुए हैं पर इन दोनो का समास युक्त रूप हमारी पुरानी परम्परा मे नही मिलता। देशो की दृष्टि से रखकर साहित्य का वर्गीकृत किया जाता है जैसे भारतीय साहित्य, रूसी साहित्य या चीनी साहित्य यह हम जानते है। इसी प्रकार भाषाओ की दृष्टि मे

---

१ डा० ग्रियर्सन — लिंग्विस्टिक सर्वे आव इंडिया, भाग ९ खंड १, पृ० १

२ डा० धीरेन्द्र वर्मा — ब्रजभाषा, पृ० ३४

३ डा० धीरेन्द्र वर्मा—ग्रामीण हिन्दी पृ० ११

४ डा० उदयनारायण तिवारी—भोजपुरी भाषा और साहित्य पृ० १२६

अर्थ 'वेदेतर' और वेद विरोधी भी रहा है, पर कालान्तर में 'लोक' वेदेतर मान्यताओं की संकुचित सीमा को तोड़कर ऊपर उठ गया है और उसकी भावना वैदिक और लौकिक दोनों तत्त्वों का स्पर्श करने लगी। गीता में 'अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः' में लोक और वेद दोनों की महत्ता स्पष्ट रूप में मानी गई है। बौद्ध धर्म के प्रचार और प्रसार के साथ लोक मानव मात्र के भावों में विभूषित हो गया। ऋग्वेद में लोक (समाज) की एक विराट कल्पना की गई—'वह पुरुष रूप ईश्वर है, उसके सहस्रों मुख, सहस्रों नेत्र और सहस्रों पद हैं।'[1] अतः 'लोक' साधारण जनसमाज है, जिसमें भूभाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। समाज में नागरिक और ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, पर 'लोक' दोनों में विद्यमान है।[2] लोक हमारे जीवन का महासमुद्र है, उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता है। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है। लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान है।[3]

भारतीय विचारकों ने 'लोक' का बहुत विशद अर्थ किया है। यदि लोक को मानव मात्र के पर्याय के रूप में ग्रहण किया जाय तब तो मानव समाज का जितना भी साहित्य है वह सभी लोक साहित्य में अन्तर्भूत हो जायगा। दूसरी ओर यदि 'लोक परिपाटी' को दृष्टि में रखा जाय तो वेद से इतर जितना भी साहित्य है वह सारा का सारा लौकिक कोटि में तो आ जाएगा, पर उसे लोक साहित्य कदापि नहीं कहा जा सकता। वाल्मीकि, व्यास, कालिदास, सूर, तुलसी, प्रसाद—सभी की रचनाएँ 'लौकिक' होते हुए भी लोक-साहित्य की कोटि के बाहर की हैं।

हमें 'लोक' का अर्थ समझने में यह न भूलना चाहिए कि इस विशिष्ट क्षेत्र में 'लोक' शब्द की अपनी सीमाएँ हैं। पहले ही कहा जा चुका है कि लोक शब्द 'फोक' का पर्याय है। अतः एक सीमा तक ही यह मूल रूप से स्वतन्त्र अर्थ दे सकता है। यह बात अवश्य है कि 'फोक' के नितान्त संकुचित अर्थ को कुछ विस्तार दिया जा सकता है, क्योंकि पर्याय होने पर भी शब्द की कुछ अपनी परम्परा होती है और उस परम्परा से उसका सम्बन्ध एकदम विच्छिन्न हो जाए, यह तो सम्भव ही नहीं है। अतः मध्यमार्ग को अपनाते हुए कहा जा सकता है कि हमारा 'लोक' पाश्चात्य 'फोक' से कुछ भिन्नता रखता है और इसका अर्थ 'ग्राम्य' नहीं है। वरन् नगरों और गाँवों में फैली हुई समूची जनता है, जिसके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं।[4] यह लोक शास्त्र का परमुखापेक्षी न होकर परम्परा से प्राप्त अपने गीतों

---

१ सहस्र शीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात्, ऋग्वेद १०।६

२ श्याम परमार—भारतीय लोक साहित्य, राजकमल दिल्ली १६५४ पृ० १०

३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—सम्मेलन पत्रिका, लोक संस्कृति विशेषांक, सं० २०१० पृ० ६५

४ डा० हजारीप्रसाद द्विवेदी—जनपद, लोक साहित्य का अध्ययन अंक, अक्टूबर १६५२, पृ० ६५

कहानियों तथा कहावतों के प्रयोग तक जीवन-क्षेत्र में अन्तर होता है और यही लोक परिस्थितिक लोक-साहित्य में विभेद के रूप में प्रयुक्त होता है और ऐसा लोक का साहित्य जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मौखिक परम्परा में चलता रहता है लोक साहित्य कहलाता है।

लोक शब्द पर विचार करने के पश्चात अब यहाँ साहित्य को भी स्पष्ट करना अपेक्षित है। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्य में साहित्य और लिटरेचर शब्दों का शास्त्र के अर्थ में प्रयुक्त होते थे पर अब समस्त लिपिबद्ध अभिव्यक्ति को क्रमशः साहित्य और लिटरेचर कहा जाने लगा है। लिपि का साहित्य से अविच्छिन्न सम्बन्ध नहीं है और बिना लिपि का सहारा लिए भी कोई रचना साहित्य की कोटि में आ सकती है। वेद भी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में लिपिबद्ध न थे पर उनके सम्बन्ध में कभी यह प्रश्न ही नहीं उठा कि वे साहित्य हैं या नहीं। वस्तुतः अब सर्वसम्मत रूप से साहित्य को विस्तृत अर्थ दे दिया गया है और मनुष्य की लिखित हो या मौखिक, समस्त सहजाभिव्यक्ति को साहित्य कहा जाने लगा है। लोक की अभिव्यक्ति को भी साहित्य कहा जाता है पर इसमें 'लोक' विशेषण जोड़ दिया गया है और इसी से परिनिष्ठित साहित्य से इसका पृथक अस्तित्व स्थापित हो जाता है। इस 'लोक' विशेषण के जुड़ जाने से इस साहित्य में मौखिक परम्परा और प्राचीन मानव के किसी न किसी अवशेष का होना आवश्यक समझा जाता है। कुछ विद्वान लोक-साहित्य को मौखिक परम्परा के कारण इसे लोक वाङ्मय कहना अधिक संगत समझते हैं।[1] पर अब लोक-साहित्य अति प्रचलित हो चुका है। अतः नाम-परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं है। धीरे-धीरे लोक-साहित्य को भी ग्रंथ का आश्रय मिल रहा है और कोई दिन ऐसा भी हो सकता है जबकि लोक-साहित्य को वाङ्मय कहना भी असंगत ठहराया जाय।

कुछ विद्वानों को विशेष रूप से रामनरेश त्रिपाठी को लोक के लिए ग्राम के प्रयोग का विशेष मोह है। उन्होंने अपनी लोक-साहित्य-सम्बन्धी सभी पुस्तकों में 'ग्राम-साहित्य', 'ग्राम-गीत', 'ग्रामीण कहावतें'—इत्यादि शब्दों का प्रयोग किया है। त्रिपाठी जी ने इस विषय पर पुनर्विचार करके कहा है कि 'यद्यपि मैं फिर भी यह उचित समझता हूँ कि लोकगीत की अपेक्षा ग्रामगीत शब्द ज्यादा उपयुक्त और भाव-सूचक है।'[2] त्रिपाठी जी के कथन में भावुकता अधिक है, तथ्य कम है क्योंकि लोक गीतों का सम्बन्ध केवल ग्राम से न होकर ग्राम और नगरों में फैली हुई प्राचीन समूची जनता से है। ग्राम और नगरों के भेद अर्वाचीन काल में बने हैं। गीतों की रचना में ग्राम और नगर का उतना हाथ नहीं है जितना कि सर्वसाधारण—लोक

---

१ त्रि० का० गजबार—नागरी का टीका पृ० ५८

२ रामनरेश त्रिपाठी—जनपद त्रैमासिक अंक १ ग्राम-साहित्य पृ० ११

का।[1] यही कथन ग्राम-साहित्य पर भी घटित हो सकता है। अतः फोक लिटरेचर को ग्राम साहित्य न कह कर लोक-साहित्य कहना ही विवेकपूर्ण है।

लोक साहित्य के इस विश्लेषण के फलस्वरूप निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि सर्वसाधारण समाज की वह मौखिक एवं स्वाभाविक अभिव्यक्ति, जिसकी रचना में अभ्यास और अध्ययन की अपेक्षा नहीं होती जिसमें कर्ता का व्यक्तित्व साधारणीकृत हो जाता है और जिसमें आदिम मानस के कुछ न कुछ अवशेष विद्यमान हों और जिसे एक पीढ़ी दूसरी पीढ़ी को सौंपती चली जाय लोक-साहित्य कहलाती है। व्यक्तित्व का तभी साधारणीकरण होता है जब किसी व्यक्ति विशेष की रचना जन मानस को आन्दोलित कर देती है। थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ निरन्तर प्रयोग में आने पर ही किसी रचना को लोक साहित्य नहीं कहा जा सकता, उसे यह सत्ता तो इतिहास और निरन्तर प्रयोग के सहारे मिलती है।

'लोक साहित्य' 'लोक-वार्ता'[2] का एक अंग है

'लोक वार्ता का क्षेत्र बहुत व्यापक है। वह एक जीवित शास्त्र है—लोक का जितना जीवन है उतना ही लोक-वार्ता का विस्तार है। लोक में बसने वाला जन, जन की भूमि और भौतिक जीवन तथा तीसरे स्थान में उस जन की संस्कृति—इन तीन क्षेत्रों में लोक के पूरे ज्ञान का अन्तर्भाव हो जाता है और लोक वार्ता का सम्बन्ध भी उन्हीं के साथ है।[3] सी० एस० बर्न ने इसकी और भी विशद व्याख्या की है। लोकवार्ता के अन्तर्गत पिछड़ी जातियों में प्रचलित अथवा अपेक्षाकृत समुन्नत जातियों के असंस्कृत समुदायों में अवशिष्ट विश्वास रीति रिवाज कहानियाँ गीत तथा कहावतें आती हैं। प्रकृति के चेतन तथा जड़ जगत के सम्बन्ध में भूत प्रेतों की दुनिया तथा उनके साथ मनुष्यों के सम्बन्धों के विषय में जादू टोना सम्मोहन वशीकरण तावीज, भाग्य शकुन, रोग तथा मृत्यु के सम्बन्ध में आदिम तथा असभ्य विश्वास इसके क्षेत्र में आते हैं। और भी इसमें विवाह उत्तराधिकार बाल्यकाल तथा प्रौढ़ जीवन के रीति रिवाज तथा अनुष्ठान और त्योहार युद्ध आखेट मत्स्य व्यवसाय पशु पालन आदि विषयों के भी रीति रिवाज इसमें आते हैं तथा धर्मगाथाएं अवदान (लीजेण्ड) लोक कहानियाँ साके किंवदन्तियाँ, पहेलियाँ तथा लोरियाँ भी इसके विषय हैं। संक्षेप

---

१ सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोकगीत, साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं० १९९६ वि०, पृ० १

२ फोक लोर के लिए सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग डा० वासुदेव अग्रवाल ने किया और बाद में यह अति प्रचलित शब्द बन गया यद्यपि यह शब्द उपयुक्त पर्याय नहीं है क्योंकि इसमें अधिक से अधिक लोक कथा के भाव वहन करने की क्षमता है पर इसका इतना अधिक प्रचलित प्रयोग है कि अब इसे स्वीकार ही करना पड़ेगा।

३ पृथिवी पुत्र—वासुदेवशरण अग्रवाल, रामप्रसाद एण्ड संस, १९६०, पृ० ८८

हैं। समाज के प्राय सभी लोकवार्ताविशारद (फोक लारिस्टस) ने लोकवार्ता की व्यापकता को स्वीकार करते हुए लोक साहित्य को उसका प्रमुख अंग माना है।

कुछ विद्वान 'लोक साहित्य' को लोकवार्ता से भी अधिक व्यापक मानते हैं। उनका कहना है कि लोकवार्ता स्वयं लोक-साहित्य का एक अंग है। लोक साहित्य के दो भेद हैं—लोकगीत और लोकवार्ता। वार्ता शब्द में इतनी व्यापकता नहीं कि उसमें समस्त लोक साहित्य का समावेश हो जाए।[1] डा० सत्येन्द्र भी 'ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन' में लोक-साहित्य को लोकवार्ता से अधिक व्यापक मानते हैं—एक दृष्टि से लोक साहित्य का एक अंग ही लोकवार्ता के अन्तर्गत आ सकता है। ऐसा भी लोक साहित्य हो सकता है, नहीं होता ही है जो लोकवार्ता नहीं माना जा सकता। लोक वार्ता में केवल वही लोक साहित्य समावेशित होता है जो लोक की आदिम परम्परा को किसी न किसी रूप में सुरक्षित रखता है।[2] लोक-साहित्य का वस्तुतः अंश ऐसा भी है जो पारिभाषिक लोकवार्ता से बाहर रखता है। यह वह साहित्य है जिसकी मौलिक परम्परा विशेष पुरानी नहीं है जिसके निर्माता का काल अथवा समय जाना जा सकता है। जो नए विषयों और नए उद्वेगों के परिणामस्वरूप रचा गया है।[3]

डा० सत्येन्द्र ने उपर्युक्त विचार सन १९४९ में व्यक्त किए थे। पर इधर १९६० में उनका दूसरा महत्वपूर्ण शोध प्रबन्ध 'मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन' प्रकाशित हुआ है। उसमें उन्होंने लोक-साहित्य की परिभाषा इस प्रकार की है—'लोक-साहित्य के अन्तर्गत वह समस्त भाषागत अभिव्यक्ति आती है जिसमें (अ) आदिम मानस के अवशेष उपलब्ध हों (आ) परम्परागत मौखिक क्रम से उपलब्ध भाषागत अभिव्यक्ति हो जिसको किसी की कृति न कहा जा सके जो श्रुति ही माना जाता हो और जो लोक मानस की प्रवृत्ति में समाई हुई हो, (इ) कृतित्व हो किन्तु वह लोक मानस के सामान्य तत्त्वों से युक्त हो कि उसका व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करें।'[4] लोक साहित्य की इस परिभाषा के अनुसार 'आदिम मानस के अवशेष' को प्राथमिकता दी गई है और इस स्थिति में समस्त लोक साहित्य लोक-वार्ता की परिधि में आ जाता है। इस परिभाषा को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि डा० सत्येन्द्र भी अब लोक-साहित्य को किसी भी स्थिति में लोकवार्ता के क्षेत्र से बाहर नहीं मानते। प्रस्तुत

---

१ डा० सत्यव्रत सिन्हा—हिन्दी अनुशीलन पत्रिका वर्ष ४ अंक ४, भारतीय हिन्दी परिषद, इलाहाबाद।

२ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन साहित्य रत्न भंडार, आगरा १९४९ पृ० ८

३ वही पृ० ८

४ डा० सत्येन्द्र—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोकतात्विक अध्ययन विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा सन् १९६०, पृ० ३५

लगता था। अतः यह कहा जा सकता है कि लोक साहित्य में लोक की मुखीय परम्पराएँ रूप में प्रचलित होती हैं। मौखिक परम्परा, रचनाकार की अवैयक्तिकता, भाव भूमि, जन मानस को आन्दोलित करने की क्षमता—लोक-साहित्य के अनिवार्य गुण हैं।

लोक-साहित्य की सार्वदेशिक विशेषताएँ

लोक साहित्य लोकवार्ता का एक प्रधान अंग है। अतः लोकवार्ताविदों ने लोकवार्ता की जिन विशेषताओं का उल्लेख किया है प्रायः वे सभी विशेषताएँ लोक-साहित्य पर भी घटित होती हैं। दूसरी ओर लोकगान और कथाएँ लोक साहित्य की प्रबल धाराएँ हैं अतः उनके सम्बन्ध में भी जो उल्लेख किया गया है उसका भी लोक साहित्य पर घटित होना स्वाभाविक ही है। लोक साहित्य की विशेषताओं और उसके महत्त्व का विश्लेषण करते समय उक्त सामग्री का भी उपयोग किया जाना सर्वथा संगत ही है।

लोक साहित्य की अनेकानेक विशेषताएँ होती हैं। उनमें से प्रमुख विशेषताओं का आगे उल्लेख किया जाएगा—

१ लोक साहित्य श्रुति परम्परा पर आधारित है—

लोक साहित्य अनादि काल से श्रुति-परम्परा के रूप में चला आ रहा है। इसे लोक सभ्यता का वेद (श्रुति) कहा जा सकता है क्योंकि वेद भी तो अपने आरम्भिक रूप में श्रुति परम्परागत थे और गुरु मुख से याद किये जाते थे। वेद ने तो कालान्तर में लिपि का सहारा ले लिया पर लोक साहित्य आज भी श्रुति ही है। लोक साहित्य का सहज सौन्दर्य उसके मौखिक रूप में ही है। उसका प्रवाह तभी तक अक्षुण्ण रहता है जब तक उसे लिपि के शिकंजे में जकड़ नहीं लिया जाता। लोकवार्ताकार लोक साहित्य की मौखिक परम्परा बनाए रखने की आवश्यकता का अनुभव करते हैं और कुछ का तो मत है कि उसको लिपिबद्ध करने का अर्थ है उसे मार डालना।[1]

२ लोक-साहित्य में प्रामाणिक मूल पाठ का अभाव रहता है

लोक साहित्य एक कंठ से दूसरे कंठ में जाता हुआ समस्त समाज में परिव्याप्त हो जाता है। स्मरण के सहारे चलता है। [illegible] की मौखिकी है। स्मरण में जहाँ कोई हस्तक्षेप हुआ गायक उसमें अपनी ओर से कुछ जोड़ देता है और इस प्रकार रचना में मूल घटता जाता है और प्रक्षिप्त अंश बढ़ता जाता है। जैसे जैसे लोक की भाषा विकसित होती है लोक-साहित्य की भाषा भी बदलती जाती है और एक स्थिति तो ऐसी भी आ सकती है कि आदि प्रणेता यदि उसके वर्तमान स्वरूप एवं स्वर को सुने तो वह विस्मय ही स्वयं अपनी रचना को

---

१ फ्रैंक सिजविक—[illegible] पृ० १२

नही पहचान सकेगा।[1] परिणाम यह होता है कि लोक साहित्य का मूल पाठ मिलता ही नहीं है। लोक साहित्य की इसी प्रकृति के कारण कहा जाता है कि वह अत्यधिक दूर और कोई प्राचीन वस्तु नही है, वह तो हमारे मध्य यथार्थ होकर जीवित है।[2]

३ अज्ञात रचयिता तथा रचना मे उसके व्यक्तित्व का अभाव

लोक-साहित्य की अपार राशि हमारे सम्मुख है। पर उसका निर्माण किसने किया है, यह बतलाना नितान्त कठिन है। कुछ लोकगीतो म 'कबीर' 'तुलसी' आदि की छाप रहती है पर लोक साहित्य के मीमांसको ने एक स्वर से इस बात को स्वीकार किया है कि ये नाम बाद मे रचना की प्रतिष्ठा को बढाने के लिए जोड दिए गए हैं। यो तो सभी रचनाएँ किसी-न किसी व्यक्ति की सहज प्रतिभा का प्रसाद हैं पर उस व्यक्ति का नाम उनमे कही नही मिलता। अनेक कारणो म से एक कारण यह भी हो सकता है कि रचयिता ने अपने नाम को रचना मे प्रकट करने की आवश्यकता ही न समझी हो वह इस सम्बन्ध म चिन्तित ही न हो।[3]

नाम के अतिरिक्त रचना म रचयिता का स्पष्ट व्यक्तित्व भी नही मिलता है। परिनिष्ठित साहित्य की यह सबसे बडी विशेषता मानी जाती है कि उसम कलाकार का व्यक्तित्व झलकता हो पर लोक साहित्य म तो रचना की विशेषता रचयिता के व्यक्तित्व म नही वरन उसके व्यक्तित्व के नितान्त अभाव मे है।[4] लोक साहित्य की तो कसौटी ही यह है कि कृतित्व हो किन्तु वह लोक मानस के ऐसे सामान्य तत्वो से युक्त हो कि व्यक्तित्व के साथ सम्बद्ध करते हुए भी लोक उसे अपने ही व्यक्तित्व की कृति स्वीकार करे।[5]

यो तो 'आल्हा' नामक 'पँवारा' जगनिक की रचना अवश्य माना जाता है पर उसका जो वर्तमान रूप है वह जगनिक का न होकर विभिन्न बोलियो म उसके गायको का है। इसी प्रकार कहावतो म भी घाघ भडडरी के नाम लिये जाते है पर इन नामो ने तो रूढ़ि का रूप ले लिया है व वस्तुत नाम रह ही नही गए हैं। कुछ विद्वानो न आधुनिक बोलियो म लिखने वालो का नाम भी लोक साहित्यकारो म रख दिया है यह आपत्तिजनक है, क्योकि जिन रचनाओ के नाम पर उन्हें लोक-साहित्यकार बतलाया जाता है वे सबसे पहली बात तो यह है कि छपी हुई ह दूसरे

---

१ एफ० जे० चाइल्ड—इंगलिश ऐण्ड स्काटिश पापुलर बलेडस, जाज जी० एच० ऐंड को०, लन्दन १९१४, पृ० १७
२ बी० ए० बोटकिन—अमरिकन फोक्लार (पाकेट बुक), पृ० १५
३ रावर्ट ग्रेब्स—दी इंगलिश बलेड अरनेस्ट बन लिमिटड १९२७ पृ० १२
४ फ्रैक सिजविक—दी बलड, मार्टिन सकर, लन्दन पृ० ११
५ डा० सत्येन्द्र—मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन, विनोद पुस्तक मदिर आगरा, १९६०, पृ० ५

उनमें रचयिता का व्यक्तित्व स्पष्ट है और साथ ही उनमें रचयिता के आभिजात्य संस्कार भी परिलक्षित होते हैं तथा वे रचनाएँ हृदय से सहज उद्भूत के रूप में नहीं, प्रचार के लिए लिखी गई हैं। अतः इन रचनाओं को न तो हम लोक-साहित्य कह सकते हैं और न इनके रचयिताओं को लोक-साहित्यकार।[1]

४ अलंकृत शैली का अभाव

परिनिष्ठित साहित्य में अलंकारों पर बहुत बल दिया जाता है। कुछ काव्य-शास्त्री तो अलंकार के अभाव में काव्य के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते। पर लोक-साहित्य में अलंकारों के प्रति कोई आग्रह नहीं है। यह तो उस वन्य कुसुम की भाँति है जो बिना सजाये-सँवारे ही अपने प्राकृतिक सौन्दर्य से दीप्यमान रहता है। ग्रामगीत और महाकवियों की कविता में अन्तर है। ग्रामगीतों में रस है, महाकाव्यों में अलंकार। ग्रामगीत हृदय का धन है, महाकाव्य मस्तिष्क का। ग्रामगीत प्रकृति के उद्गार हैं, इनमें अलंकार नहीं, केवल रस है।[2] लोक-साहित्य में कहीं-कहीं अलंकार भी मिल जाते हैं पर वे बड़े ही स्वाभाविक होते हैं।

अलंकार के अतिरिक्त लोक-साहित्य में छन्द पर भी कोई ध्यान नहीं दिया जाता। छन्द की कमी को संगीत पूरा कर देता है। सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य शिष्ट काव्य-कला की कसौटी पर बहुत खरा नहीं उतरता पर उसका अपना सौन्दर्य, अपना माधुर्य और अपनी स्वाभाविकता श्रोताओं तथा पाठकों को निश्चय ही आकृष्ट करता है।

५ कोरे उपदेशों का अभाव

लोक-साहित्य में लोक-जीवन का सांगोपांग वर्णन होता है। इसलिए स्वाभाविक रूप से लोक-जीवन के गुण-दोष उसमें रहते हैं। लोक-साहित्य अपना आधार लोक के आदर्शों को भी बनाता है, पर उसमें न तो कोरी आदर्शवादिता ही झलकती है और न कोरी उपदेशात्मकता। अधिकांश लोकोक्तियों में उपदेशात्मक प्रवृत्ति होती है, इसमें कोई सन्देह नहीं, पर उन्हें भी कोरी उपदेशात्मकता नहीं कहा जा सकता। लोकोक्तियों में रचयिता का चमत्कार अभिव्यंजित होता है। अतः वे अपना अनुभव अभिव्यक्ति के आधार पर आश्रित हैं न कि उपदेश पर। उपदेशात्मकता तो उनमें गौण रूप में ही अपना स्थान रखती है।

---

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने ग्रन्थ 'भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन' में गोरखनाथ, रामचरित्र पाण्डेय, रघुवीरनारायण, भिखारी ठाकुर, मनोरंजन प्रसाद सिन्हा आदि की रचनाओं को भोजपुरी लोक-साहित्य में सम्मिलित कर लिया है।

२ रामनरेश त्रिपाठी — हमारा ग्रामसाहित्य (प्रथम भाग) ... प्रकाशन लिमिटेड बम्बई, १९५१ पृ० ६८

६ लोक-साहित्य लोक संस्कृति का प्रतिबिंबित करता है

लोक साहित्य की यह बहुत बडी विशेषता है कि इसम जाति का वास्तविक रूप प्रकट होता है। इसका कारण यह है कि इसके रचयिता किसी उद्देश्य विशेष को न लेकर अपने स्वाभाविक रूप को प्रकट करते हैं। अत लोकगीतो लोक गाथाओ लोक-कहानियो कहावतो पहेलियो सूक्तियो—सभी म लोक का रहन-सहन खान-पान, आचार-व्यवहार, प्रेम, वात्सल्य, करुणा घृणा विश्वास—सबका स्वाभाविक आकलन हो जाता है। लोक साहित्य की इसी विशेषता के कारण समाज शास्त्री, नविज्ञानवेत्ता और इतिहासकार इसको अपने अध्ययन का प्रामाणिक स्रोत मानने लगे हैं। शिष्ट साहित्य से तो वे निराश हैं क्योकि वहाँ तो वास्तविकताएँ कम मिलती हैं, आदर्शों की ही भरमार रहती है।

लोक-साहित्य की जिन विशेषताओ का ऊपर विवेचन किया गया है वे उसकी सार्वदेशिक विशेषताए हैं—वे सभी देशो के लोक-साहित्य म उपलब्ध होती हैं। पर किसी विशिष्ट देश या जाति के लोक साहित्य की कुछ अपनी स्थानीय विशेषताएँ भी होती हैं। एक विशिष्ट जाति का लोक साहित्य अपने ही प्रचलित संस्कारो अनुष्ठानो एव विश्वासो को अपने म स्थान देगा और इस प्रकार से वह दूसरे देश या जाति के लोक साहित्य स भिन्न प्रतीत होगा। इसके अतिरिक्त वीरता के आदर्श, लोक व्यवहार खान पान का वर्णन भी विविध लोकसाहित्यो म विभिन्नता लिए होगा। संगीत की मात्रा म भी विषमता का होना स्वाभाविक है। विविध लोक साहित्यो म विविध नदियो और स्थानो क उल्लेख और वातावरण की भी विविधता निरंतर रूप से मिलेगी। आगे कनौजी लोक साहित्य के विश्लेषण करते समय सार्वदेशिक तथा अन्य स्थानीय विशेषताओ का यथास्थान उल्लेख किया जाएगा। यहा तो केवल उनकी ओर संकेतमात्र कर दिया गया है।

लोक-साहित्य का महत्त्व

लोक-साहित्य का अध्ययन पश्चिम म विभिन्न जातियो के प्रति जिज्ञासा वृत्ति से प्रेरित होता हुआ धीरे धीरे एक स्वतन्त्र विज्ञान का स्वरूप धारण करता गया, जिसने न केवल पश्चिमी देशो को ही प्रभावित किया वरन वहा स उठी हुई लहर ने सुदूरपूर्वी देशो को भी शीघ्र ही प्लावित करना आरम्भ कर दिया। ज्यो-ज्यो भाषा-विज्ञान, नविज्ञान समाज विज्ञान, जाति विज्ञान पुरातत्त्व विज्ञान जैसे विषयों का विकास होने लगा लोक साहित्य की सहायता की आवश्यकता बढ़ती गई क्योकि इन विषयो की अधिकांश सामग्री लोक साहित्य से ही प्राप्त होती है। सन १६०८ म जॉ० एल० गोमे ने 'फोकलोर इज ए हिस्टॉरिकल साइंस' पुस्तक म इस बात का प्रतिपादन किया कि लोक-वार्ता इतिहास का स्वतन्त्र विषय है जिसके अपने नियम और सिद्धान्त हैं उनकी मान्यताओ को अन्य शास्त्रो की मान्यताओं की भाँति अपनाना चाहिए। यद्यपि 'गोमे' की स्थापनाओ को पूर्ण रूप से मान्य नही समझा गया, नविज्ञान म लोकवार्ता

का भी महत्त्व है इसे स्वीकार कर लिया गया। आर० आर० मरेट ने तो अपनी पुस्तक 'साइकोलॉजी एण्ड फोकलोर' में इस बात पर जोर दिया कि लोकवार्ता का केवल समाज-शास्त्रीय ढंग से ही अध्ययन करना एकांगी दृष्टिकोण है। उसका मनोवैज्ञानिक अध्ययन भी होना चाहिए। इससे मानव की जाति स्थिति में आज तक के विकास की विविध मनोभूमियों का हमें पता लग जाता है। लोकवार्ता में लोक मानस जितना शुद्ध अवस्था में प्रतिबिम्बित होता और सुरक्षित रहता है उतना वह किसी इतर माध्यम में नहीं रहता।[1]

लोक-साहित्य में उपलब्ध जो मनोदशाएँ प्रकट होती हैं उन्हीं के आधार पर यह निश्चय होता है कि उसमें जातीय तत्त्व मिलते हैं। इसी आधार पर लोकवार्ताकारों ने उसे जाति विज्ञान का सहायक माना है। जातियों का निर्माण उनका अपना भौगोलिक वातावरण निश्चित परिस्थितियों में घनिष्ठतापूर्वक होता है। उनके चारों ओर बिखरी प्रकृति की प्रतिक्रिया जिस रूप में भी उनके मस्तिष्क में होती है उसी को वे अपने आचार विचार में ढालते हैं। जब प्रतिक्रिया के विकास की धारा में व्यवधान उपस्थित होता है तभी वह लोकवार्ता बन जाती है। अतः लोकवार्ता का अध्ययन जाति विज्ञान के अध्ययन में बड़ा महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। आधुनिक भाषा-वैज्ञानिक लोक-साहित्य को भाषा अध्ययन का मेरुदण्ड मानते हैं। संस्कृति धर्म और साहित्य के अध्ययन के लिए भी लोक-साहित्य का अध्ययन नितान्त उपयोगी है। इस तथ्य को अस्वीकार नहीं किया जा सकता कि लोक-साहित्य नाना रूपों में परिनिष्ठित साहित्य को प्रभावित व प्रेरित करता रहता है।

लोक साहित्य एक गतिशील (डायनामिक) विधान है। इसमें व्यक्त परम्पराएँ काल प्रवाह में बह नहीं जातीं वे नए-नए रूपों में प्रकट होती हैं। समय विशेष में लोक साहित्य का जन्म अवश्य होता है पर उसके पश्चात् वह सार्वकालिक सार्वदेशिक एवं सार्वजनीन बन जाता है। लोक-साहित्य को हम उस वट-वृक्ष के समान मान सकते हैं जिसकी जड़ें बहुत गहरी धँसी हुई हैं पर वह निरन्तर रूप से नई शाखाएँ नई टहनियाँ और नए पत्ते प्रसूत किया करता है। विश्व और मानव की रहस्यमयी पहेली को सुलझाने के लिए तथा समाज के आन्तरिक विधान के तन्तुओं की व्याख्या करने के लिए लोक-साहित्य का सांगोपांग अध्ययन परमावश्यक है।

लोक साहित्य के भेद

लोक साहित्य लोक जीवन की सहज भावाभिव्यक्ति है। अतः उसमें लोक हर्षोल्लास हास-परिहास विषाद-पीड़ा सुख दुःख जय-पराजय ज्ञान विज्ञान चिन्तन मनन—सभी कुछ अभिव्यक्त हुआ है। इन सभी स्थितियों और मनोदशाओं को वाणी

१ डा० सत्येन्द्र—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भण्डार, आगरा १९४९ पृ० २६

देने के लिए जिन विधाओं को अपनाया गया है, उन्हें लोक साहित्य के भेद या प्रकार कहा जा सकता है। स्थूल रूप से इन भेदों को इन प्रधान भागों में बाँट सकते हैं—

१ लोक गीत
२ पँवारा (प्रबंध गीत)
३ लोककथा
४ लोक नाटय
५ कहावतें
६ पहेलियाँ

लोकगीत लोक-साहित्य का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण अंग है। लोक के ग्राम जीवन को अधिकाधिक प्रेरणा प्रदान करने वाला साधन लोकगीत ही है। सभी अवसरों पर गाई जाने वाली तथा सभी भावों से युक्त पद्यमयी अभिव्यक्ति इसी के अंतर्गत आती है।

पवारे वे प्रबंध गीत हैं जिनका आधार इतिहास होता है अथवा जिन्हें काल क्रम में लोक द्वारा ऐतिहासिक आधार से युक्त मान लिया जाता है। इनमें बड़े बड़े वीरों और प्रसिद्ध पुरुषों के चमत्कारों से पूर्ण जीवन का सविस्तार पद्यमय वर्णन होता है।

मनोरंजन, शिक्षा, व्रतों के अनुष्ठान, जातियों के स्वभाव बतलाने तथा पशु पक्षियों, भूतों प्रेतों तथा परियों से सम्बद्ध सभी प्रकार की गद्यमयी अभिव्यक्ति लोक कथा के अंतर्गत आती है।

लोक मनोरंजन के लिए जो नाटय रूप मिलते हैं उन्हें लोक नाटय (फोक ओपरा) कहा जा सकता है। स्थल भेद के अनुसार भगाई, माच, तमाशा, नौटंकी, रामलीला और रासलीला आदि रूपों में ये उपलब्ध होते हैं। हमारे देश ही में नहीं संसार के प्राय सभी देशों में ये लोक-नाट्य पाए जाते हैं। अंग्रेजी के नाटय तो जब शैशवावस्था में थे तब भी उन पर लोक नाट्य प्रभाव डालते रहे।[1]

कहावतें तो लोक जीवन का अंग होती ही हैं। सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का जैसा निदर्शन कहावतों में मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। अनुभूत ज्ञान की निधियाँ होने के कारण इन्हें 'सूक्ति' भी कहा जाता है।

लोक जीवन की अनुभूति और कल्पना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति पहेलियों के माध्यम से होती है। इनके द्वारा एक ओर तो बुद्धि विलास होता है दूसरी ओर मनोरंजन।

कनौजी लोक साहित्य का सामान्य परिचय एवं वर्गीकरण

कनौजी में परिनिष्ठित साहित्य का अभाव

कनौजी सदा से ही साहित्यकारों द्वारा उपेक्षित रही है। व्रज अवधी आदि

१ कैम्ब्रिज हिस्ट्री आव इंगलिश लिटरेचर खंड ५ पृ० २३

खड़ी बोली में साहित्य रचना हुई व 'बोली' से 'भाषा' के पद पर आसीन हुई और एक समय में व्रज ने और आज खड़ी बोली ने राष्ट्र भाषा का रूप धारण कर लिया है। परन्तु कनौजी अब भी विशुद्ध लोक भाषा ही है। इस प्रदेश के साहित्यकारों ने कभी व्रज को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया था और अब खड़ी बोली को उन्होंने अपना लिया है। अतः साहित्य के नाम पर जो कुछ कनौजी बोली के माध्यम से प्राप्त होता है वह लोक साहित्य ही है।

कनौजी लोक साहित्य

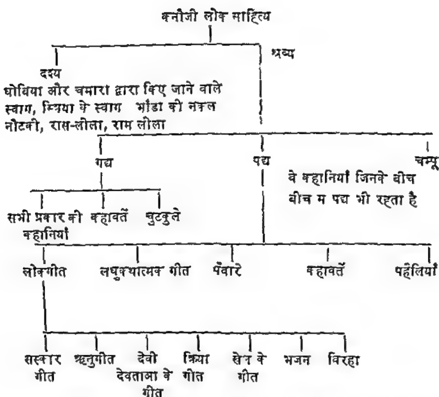
कनौजी वाणी में लोक-साहित्य की विपुल राशि भरी पड़ी है। उसका लोक-साहित्य सभी दृष्टियों से समृद्ध है। इसकी विविध विधाओं में सरसता, मृदुता, गम्भीरता और लोच सभी कुछ मिलती है पर न जाने अब तक लोक-साहित्य ममज्ञों का इधर ध्यान क्यों नहीं गया? प० रामनरेश त्रिपाठी गीतों की झोली लेकर सारे भारत से उस ओर लाए पर उन्होंने अपने ग्रामगीता के यशस्वी संग्रह में कनौजी प्रदेश के केवल ४५ गीत दिए हैं और वस्तुतः उन्हें भी कनौजी के लोकगीत नहीं कहा जा सकता क्योंकि उनमें ठेठ पूरबीपन है। देवेन्द्र सत्यार्थी की कृपा से भी बेचारी कनौजी वंचित ही रह गई। प्रस्तुत प्रबन्ध लेखक ने लखनऊ विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित पुस्तक 'कनौजी लोकगीत' में कनौजी लोकगीतों के संग्रह और उनका विवेचन करने का साधारण प्रयास किया है। उसने गाँव-गाँव घूमकर कनौजी लोक-साहित्य की पर्याप्त सामग्री एकत्र की है। आशा है इधर अन्य लोगों का भी ध्यान जाएगा।

कनौजी लोक साहित्य की जो सामग्री प्राप्त हो सकी है उसी के आधार पर उसका आगे वर्गीकरण प्रस्तुत किया जाएगा।

साहित्य के वर्गीकरण की कई पद्धतियाँ होती हैं। कहीं तो उसका विभाजन आस्वाद की पद्धति की दृष्टि से किया जाता है जैसे दृश्य और श्रव्य। कहीं रचना के रूप के आधार पर किया जाता है जैसे—गद्य, पद्य और चम्पू। कहीं आश्रय के आधार पर भी किया जाता है जैसे बाल-साहित्य, युवक-साहित्य और वृद्ध-साहित्य और कहीं इसका विभाजन लिंगभेद के अनुसार किया जाता है जैसे—स्त्री-साहित्य, पुरुष साहित्य। यहाँ कतिपय पद्धतियों के आधार पर कनौजी लोक साहित्य का वर्गीकरण कर उनका संक्षेप में परिचय दिया जाएगा।

आस्वाद की पद्धति से कनौजी लोक-साहित्य का निम्न प्रकार से वर्गीकरण हो सकता है—





यदि रचना के रूपो की दृष्टि से कनौजी लाक साहित्य का वर्गीकरण किया जाय तो उसके तीन वग बन सकते हैं—

१ गद्य

इसके अतगत सभी कहानियाँ और चुटकुले आ जाते ह।

२ पद्य

इसके अतगत सभी प्रकार क गीत, पँवारे, कहावतें और लोकोक्तियाँ आ जाती हैं।

३ चम्पू

इसके अतगत व कहानियाँ आती हैं जिनम गद्य के साथ बीच बीच मे पद्य भी रहता है। स्वाँग, भाडा की नकल और नौटकी म गद्य और पद्य साथ साथ चलते हैं। अत इन्हें भी इस वग म रखा जा सकता है।

आश्रय के आधार पर कनौजी लाक साहित्य के तीन वग बनाए जा सकत हैं—

१ बाल-साहित्य।
२ युवक-साहित्य।

३ [illegible]-साहित्य।

प्रथम वर्ग में मनोरंजन से सम्बन्धित पद, पहेलियाँ [illegible], झोंका निकलना निकलना आदि खेलों के गीत नाना-नानी द्वारा कही जाने वाली कहानियाँ आदि सम्मिलित की जाती हैं।

द्वितीय वर्ग में वह समस्त साहित्य आता जो यौवन की उल्लास भावनाओं से ओत प्रोत है। संयोग वियोग और सरस झाँकियाँ इस वर्ग के लिए अधिक प्रिय होती हैं। बारह मासा, स्वांग नौटंकी मनचला उमंग का गीत—ये सब युवक-युवतियों के लिए [illegible] हैं। नवयुवकों और युवतियों के [illegible] में [illegible] की उमंग बढ़ाने वाले प्रेम और शृंगार रस के गीत पुरुषों के सहज अनुभवों का वर्णन वाली कहानियाँ स्वास्थ्य के लिए [illegible] और धनोपार्जन के लिए [illegible] की कहानियाँ आदि [illegible] पाठ इस साहित्य में सदा विद्यमान रहते हैं।[1]

तृतीय वर्ग में भजन [illegible] [illegible] [illegible] आदि गान और गायन आता है। इस साहित्य में संसार के सुख [illegible] के पश्चात शान्ति और पवित्रता के लिए जो लिप्सा होती है उसको अभिव्यक्त किया जाता है। नीति और उपदेशात्मक कहानियों तथा कहावतों का अपार कोष वृद्ध और वृद्धाओं के द्वारा सभी को निरन्तर रूप से सुनाया जाता है।

लिंग भेद के अनुसार यदि लोक-साहित्य का वर्गीकरण किया जाए तो इसके दो वर्ग बन सकते हैं—

१ पुरुषों का साहित्य (बालकों का साहित्य भी इसमें आ जाएगा)।

२ स्त्रियों का साहित्य (बालिकाओं का साहित्य भी इसी वर्ग में आएगा)।

प्रथम वर्ग के साहित्य में यह विशेषता होती है कि इसमें [illegible] गानों का प्राधान्य सा रहता है। [illegible] [illegible] हो सकता है। पुरुषों का साहित्य [illegible] [illegible] आदि [illegible] सम्मिलित रहता है। [illegible] में भजन [illegible] सम्मिलित रहता है, [illegible] तो [illegible] हैं। [illegible] आदि [illegible] के द्वारा अपना मनोरंजन करते हैं।

द्वितीय वर्ग के साहित्य में गानों की विविधता मिलती है। [illegible] के साथ [illegible] [illegible] [illegible] है। [illegible] श्रृंगार और करुणा को अधिक स्थान मिलता है। स्त्रियों के साहित्य में [illegible] गानों में करुणा का समुद्र उमड़ता है। [illegible] झोंका निकलना [illegible] और सावन के गानों में अपना मन [illegible] है।

उपर्युक्त लोक-साहित्य के विभिन्न वर्गीकरणों में से [illegible] किया जा सकता है।

---

१ [illegible] विद्या—लोक साहित्य (भूमिका) [illegible] [illegible] [illegible] पृ० [illegible]

अब इस साहित्य को संक्षेप में ऐसा रूपरेखा देने का प्रयत्न किया जाएगा जिससे कि पाठक इस पर दृष्टि डालकर कनौजी लोक साहित्य के स्वरूप का कुछ आकलन कर सकें।

कनौजी लोक साहित्य को अध्ययन की सुविधा के लिए छः वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—

१ लोकगीत
२ पँवारे
३ लोक कथाएँ
४ लोक नाट्य
५ कहावतें
६ पहेलियाँ

१ लोक गीत

१ संस्कार सम्बन्धी गीत
(अ) जन्म के गीत
(आ) अन्नप्राशन के गीत
(इ) मुण्डन के गीत
(ई) कनछेदन के गीत
(उ) जनेऊ के गीत
(ऊ) विवाह के गीत
(ए) मृत्यु-सम्बन्धी गीत

२ ऋतु गीत
(अ) फाग
(आ) चैता
(इ) कजली
(ई) बारहमासा

३ देवी-देवताओं के गीत
(अ) जात (यात्रा) के गीत
(आ) 'रतजगे' के गीत
(इ) व्रतगीत

४ भक्ति-सम्बन्धी गीत
(अ) भजन
(आ) जस (हरि यश)
(इ) 'निरगुन'

५ काम करते समय गाये जाने वाले गीत

(अ) चक्की के गीत

(आ) निरवाही के गीत

(इ) साहनी रोपनी के गीत

(ई) मेड़ के गीत (गन्ना पेरते समय गाए जाने वाले)

६ खेल के गीत

(अ) टेसू के गीत

(आ) झाँझी के गीत

(इ) निवरता निवरनी के गीत

(ई) फुँदरा के गीत

७ जाति-गीत

(अ) धोबियों के गीत

(आ) चमारों के गीत

(इ) कहारों के गीत

(ई) अहीरों के गीत

२ पँवारे

यों तो कनौजी में अनेकानेक पवारे मिलते हैं पर आल्हा सभी पर छा गया है। आल्हा तो इस क्षेत्र में बहुत अधिक प्रिय है। कुछ अन्य प्रचलित पँवारे भी हैं पर वे थोड़े लोगों के गायन और श्रवण से सम्बन्ध रखते हैं। कुछ पँवारों के नाम नीचे दिये जा रहे हैं—

१ आल्हा

२ ढोला

३ चन्दया

४ रुक्मन का गौना

५ गोपीचन्द भरथरी

३ लोक कथाएँ

कनौजी में लोक-कथाओं का अक्षय भंडार उपलब्ध होता है। यदि उनको वर्गों में बाँटा जाए तो निम्नप्रकार के वर्ग बन सकते हैं—

१ धर्म-भक्ति से सम्बद्ध कथाएँ—

(अ) व्रत कथाएँ

(आ) देव विषयक कथाएँ

(इ) कारण निर्देशक कथाएँ

२ शिक्षा प्रधान कथाएँ

(अ) पंचतंत्रीय

(आ) सूत्र-कथाएं (ड्रामस ऐंड क्युमुलेटिव ट्राल्स)
(इ) समस्या या प्रश्नमूलक कथाएँ

३ मनोरंजन प्रधान कथाएँ

(अ) हास परिहास पूर्ण कथाएँ—
(१) मूर्खों की कथाएँ
(२) चालाकी से पूर्ण कथाएँ
(३) जाति स्वभाव चित्रण की कथाएँ
(४) ठगों की कथाए

(आ) अलौकिक तत्त्वों से युक्त कथाएं
(१) परियों की कथाएँ
(२) दानवों की कथाएँ
(३) भूत प्रेत एवं चुड़ैलों की कथाएँ
(४) जादू की कथाएँ
(५) शौर्य एवं विक्रम की कथाएँ
(६) इतिहासाश्रित महापुरुषों अथवा साधु संतों की कथाएँ।

४ लोक-नाट्य

हमारे देश के विभिन्न भागों में 'भवाई', 'नाच', 'तमाशा', रासलीला', 'रामलीला', 'जात्रा' आदि विविध लोक नाट्य उपलब्ध होते हैं। यद्यपि न तो कला में ही और न अभिनय की दृष्टि से ही इनका साहित्यिक नाटकों जैसा उत्कृष्ट रूप मिलता है, फिर भी इनको सर्वथा कला विहीन और अभिनेयता हीन भी नहीं कहा जा सकता। वस्तुतः इन्हीं लोक-नाटकों का परिष्कार करके साहित्यिक नाटक की आधारशिला रखी गई है।

कनौजी में भी ये लोक नाट्य पाए तो जाते हैं पर वे इतने अधिक विकृत और शिथिल हैं कि उन्हें लोक-नाट्य कहने में भी एक बार सोचना विचारना पड़ता है। जब पुरुष-वर्ग बारातों में चला जाता है तो स्त्रियाँ एक प्रकार का अभिनय करती हैं जिन्हें नकटौरा कहा जाता है। इसमें विवाह का अभिनय होता है। एक स्त्री वर और दूसरी वधू बनती है। अनेक अनुष्ठानों को पूरा किया जाता है। बीच-बीच में गीत गाए जाते हैं जो या तो विवाह के गीतों से सम्बद्ध होते हैं या आधुनिक प्रचलित गीतों को प्रयुक्त किया जाता है। शेष कार्य कलाप गद्य में ही होता है और उसमें अभिनय करने वाले पात्र अपनी प्रत्युत्पन्न मति और वाणी का प्रयोग करते हैं, पहले से कोई निश्चित शब्दावली नहीं होती। अतः केवल अभिनय के आधार पर इस लोक-नाट्य नहीं कहा जा सकता और उसे लोक-नाट्य कह भी दिया तो भी उसका लोक साहित्य की दृष्टि से अध्ययन नहीं हो सकता, क्योंकि उसमें नाट्य का अंश तो रहता

है पर इस विषय में अत्यधिक अनिश्चितता एवं अस्पष्टता होती है। नाटक क्या होता है मानो मानसिकता का पुतला उठाए जाता है।

आदिवासी और चमारों के स्वांग का भी लगभग ऊपर जैसी ही स्थिति है। इनमें वृन्द नाच, हंसी मजाक के फव्वारे छूटते हैं पर न तो गद्य का ही और न पद्य का ही कोई ऐसा अंश होता है जो मानस को आह्लादित कर सके। केवल नौटंकी ही है जिसमें साहित्यिकता और कला का कुछ स्तर-सा स्पष्ट होता है। पर वहाँ भी लोक साहित्य अन्यता का निराश ही होना पड़ता है क्योंकि नौटंकी के प्राय सभी गान या तो सिनेमा के होते हैं या किसी अप्रचलित कवि के। कन्नौजी प्रदेश में जो नौटंकियाँ होती हैं वे सब छपी हुई पुस्तकों का आश्रय लेकर चलती हैं। ये छपी हुई पुस्तकें कनौजी और खड़ी बोली के बीच की कड़ियाँ हैं। इसका कारण यह है कि इनकी रचना अर्द्धशिक्षित लोगों द्वारा हुई है। इस प्रसंग में निष्कर्ष रूप में यह अवश्य कहा जा सकता है कि इन स्वांगों और नौटंकी को देखकर हम यह अनुमान अवश्य लगा सकते हैं कि इस प्रदेश में भी कभी एक विकसित लोक-नाट्य-परम्परा रही होगी जो कालक्रम से नष्टप्राय हो गई है। अब कोई सामग्री प्राप्त नहीं होती जिसका लोक-साहित्य की दृष्टि से अध्ययन किया जा सके।

५ कहावतें

कहावतों की दृष्टि से भी कनौजी लोक-साहित्य समृद्ध है। इन कहावतों को इन वर्गों में बाँटा जा सकता है—

१ जाति-स्वभाव चित्रण करने वाली
२ देश व काल-संबंधी
३ ऐतिहासिक वृत्त-संबंधी
४ धर्म भावना-संबंधी
५ नीति-संबंधी
६ कृषि व मौसम-संबंधी

६ पहेलियाँ

कनौजी लोक-साहित्य में जो पहेलियाँ उपलब्ध होती हैं उनका वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

१ मनो-संबंधी
२ भोजन-संबंधी
३ घरेलू वस्तुओं से सम्बद्ध
४ प्राणि-संबंधी
५ प्रकृति-संबंधी
६ अंग प्रत्यंग-संबंधी

कनौजी लोक-साहित्य के अनुशीलन करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है

कि इसमें लोकगीत साहित्य सर्वाधिक समृद्ध है। केवल संस्कारों से ही सम्बन्ध रखने वाले गीतों का बहुत बड़ा भण्डार है और इनके अतिरिक्त और भी अनेक प्रकार के गीत बहुत बड़ी संख्या में पाए जाते हैं। लोक साहित्य के अन्य रूपों की अपेक्षा लोक-गीतों की इस समृद्धि का सबसे बड़ा कारण व्यावहारिक जीवन में इनकी व्यापकता है। बिना गीतों के कोई संस्कार सम्पन्न नहीं होता। इसके अतिरिक्त चक्की पीसते समय जुताई बुवाई निराई रोपाई मड़ाइ करते समय गीतों के द्वारा श्रम परिहार किया जाता है तथा अवकाश के समय इनसे मनोरंजन भी किया जाता है। गीतों की इस व्यापकता का कारण उनकी सगीतात्मकता है और इसके अतिरिक्त गीतों को उपयुक्त सभी अवसरों पर गाने में किसी प्रकार की बाधा भी उत्पन्न नहीं होती, जब कि कथाओं के कहने सुनने के लिए केवल अवकाश का समय ही उपयुक्त हो सकता है—काम करते समय कथा का कथन श्रवण हो भी कम सकता है? अतः गीतों की अपेक्षा कथाएँ व्यापकता की दृष्टि से कम महत्त्व की हैं। पवारों या अन्य कथात्मक गीतों के लिए भी अवकाश का समय ही उपयोगी हो सकता है। अतः इनकी भी व्यापकता गीतों जैसी नहीं है। विशेष आयोजनों में ही इनका गायन होता है। कहावतें और पहेलियाँ भी कनौजी में व्यापक हैं परन्तु वे तो व्यावहारिक-जीवन की अंगीभूत है गीतों और कथाओं की भाँति उनका कथन श्रवण नहीं होता। बात-चीत करते समय जब कोई अनुकूल अवसर आता है तभी कहावत का प्रयोग किया जाता है। लोक-नाट्य का तो कनौजी में प्रायः अभाव ही है। इसका कारण यह है कि लोक नाट्यों का स्थान रास मंडलियों या नौटंकी ने ले लिया है और इसमें जिस कथानक का अभिनय होता है उसकी भाषा खड़ी बोली मिश्रित होती है और उसमें या तो सिनेमा की तर्ज को अपनाया जाता है या आधुनिकता का अत्यधिक समावेश कर दिया जाता है। इनमें लोक-तत्त्वों का नितांत अभाव रहता है।

गीतों का अन्य विधाओं की अपेक्षा अधिक समृद्ध होने की व्यापकता के अति-रिक्त एक कारण यह भी है कि गीत साहित्य का अधिकाधिक अंश स्त्रियों के हाथ में है। स्त्रियों में इस क्षेत्र में शिक्षा का प्रसार न के बराबर हुआ है। अतः वे अपने परम्परागत गीतों से पूर्णरूप से बंधी हुई हैं और इसीलिए गीत साहित्य उनके द्वारा सुरक्षित है जब कि पुरुषों का गीत साहित्य ही नहीं, अन्य साहित्यिक विधाएँ भी लुप्त होती चली जा रही हैं। पवारों साहित्य पर तो पुरुषों का ही एकमात्र अधिकार है। प्रकाशकों द्वारा छपी हुई 'आल्हा' 'ढोला' आदि पुस्तकों द्वारा लोक प्रचलित पँवारे तो समाप्त से ही हो गए हैं इनके गाने वाले बहुत कम मिलते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि कनौजी-लोक-साहित्य की सभी विधाओं में लोकगीत ही अधिक समृद्ध है। इस समृद्धि के कारण हैं—उनकी व्यावहारिक जीवन में व्यापकता गेयता एवं स्त्रियों द्वारा संरक्षण। कथाओं का संरक्षण भी स्त्रियों द्वारा होता है, परन्तु उनकी व्यापकता अपेक्षाकृत कम है। अतः गीतों की तुलना में उनका स्थान गौण हो जाता है। गीतों की इसी समृद्धि के कारण इस प्रबन्ध में उनका अपेक्षाकृत अधिक विस्तार से अध्ययन किया गया है।

कहा जा सकता है कि वह न तो पुराना होता है न नया। यह तो नगर के उस वट-वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें तो गहरी धँसी हुई हैं परन्तु जिसमें निरन्तर नई शाखाएं नए पत्ते और नए फूल निकलते रहते हैं।[1]

लोकगीतों में जन-जीवन में हर्ष और विषाद आशा और निराशा, सुख और दुःख सभी की अभिव्यक्ति होती है। इनमें कल्पना भी अपना काम करती है, रस-वृत्ति और भावना भी और तत्व की हिलोर भी, पर ये सब स्वाभाविक हैं। लोकगीत हृदय के गीत होते हैं। सुख के गीत उमंग के जोर से नाच उठते हैं और दुःख के गीत मन मसोसते हुए लहू से भरते हैं और आँसुओं के साथी रहते हैं।[2] इनमें हृदय का स्पन्दन इस प्रकार व्याप्त रहता है जैसे प्रेम में आकर्षण, श्रद्धा में विश्वास और करुणा में कोमलता। प्रकृति के गानों में मनुष्य इस प्रकार प्रतिबिम्बित होता है जैसे कविता में कवि, क्षमा में महानता और तपस्या में त्याग। प्रकृति संगीतमय है। ग्रह नक्षत्र नियति-क्रम से फिर कर उसी संगीत का कोई स्वर सिद्ध कर रहे हैं। झरनों का अविराम नाद, पत्तों का मर्मर ध्वनि, जंगल जन्तुओं का कल-रव, मेघ का गर्जन, पानी का झमाझम बरसना, आँधी का हाहाकार, कलियों का चटकना, विक्षुब्ध समुद्र का महारव, मनुष्य की भिन्न भिन्न भाषाएं और विचित्र उच्चारण, नाना पशु, कीट पतंग आदि की बोलियाँ यह सब उसी संगीत के मधुर स्वर और लय हैं। वज्रपात थाप है और नदियों का प्रवाह मूर्च्छना। ग्रामगीत प्रकृति के उसी महासंगीत के अंग हैं।[3]

जीवन का कोई ऐसा पहलू नहीं, ऐसा दृष्टिकोण नहीं, ऐसा स्पन्दन नहीं जो लोकगीतों की सीमा का स्पर्श न करता हो। लोकगीत परम्पराओं के उस महानद के समान है जिसे अनेक छोटी मोटी धाराओं ने मिल कर महासमुद्र बना दिया है। सदियों के घात प्रतिघातों ने इसमें आश्रय पाया है। मन की विभिन्न स्थितियों ने इसमें अपने ताने बाने बुने हैं। स्त्री-पुरुष ने गा कर इसकी मधुर धुन में अपनी थकान मिटाई है। इसकी ध्वनि में बालक सोए हैं, जवानों ने प्रेम की मस्ती पाई है, बूढ़ों ने मन बहलाए हैं, बैरागियों ने उपदेश का पान कराया है, विरही युवकों ने मन की कसक मिटाई है, विधवाओं ने अपने एकाकी जीवन में रस पाया है, पथिकों ने रास्ते की थकावटें दूर की हैं, किसानों ने अपने बड़े बड़े खेत जोते हैं, मजदूरों ने विशाल भवनों पर पत्थर चढ़ाए हैं।[4]

---

१ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका वाल्यूम ९ संस्करण १४ पृ० ४४८
२ देवेन्द्र सत्यार्थी—धरती गाती है राजकमल प्रकाशन, दिल्ली पृ० १३
३ रामनरेश त्रिपाठी—कविताकौमुदी (ग्रामगीत) नवनीत प्रकाशन लिमिटेड बम्बई १९५५ पृ० ६६
४ श्याम परमार—भारतीय लोक साहित्य राजकमल प्रकाशन लिमिटेड दिल्ली १९५४ पृ० ५३

और कोई 'व्यक्ति'[1] को देता है। इन सभी वादों को दो प्रमुख मतों स्वीकार किया जा सकता है। प्रथम वह जिसमें समष्टि के विविध रूपों (फोक कम्युनिटी और जाति) द्वारा लोकगीत की रचना मानी जाती है और द्वितीय वह जिसमें किसी व्यक्ति को इसका रचयिता माना जाता है, परन्तु इस मत में भी व्यक्ति की व्यक्तित्वहीनता और लोकगीत एवं लोकगाथा पर सम्पूर्ण समाज का अधिकार स्वीकार किया जाता है। प्रथम मत के मानने वाले जेकबग्रिम एफ० बी० गुमेर तथा स्टेंथल हैं और कुछ हेर-फेर के साथ द्वितीय मत एफ० जे० चाइल्ड विशप पर्सी और ए० डब्ल्यू० श्लेगल का है।

ग्रिम के अनुसार किसी देश के समस्त निवासी (फोक) लोकगीतों की सामूहिक रचना करते हैं।[2] उनका आशय है कि सामूहिक आनन्द के उच्छ्वास में किसी आनन्द दायी विगत घटना या विजय इत्यादि का वर्णन प्रस्फुटित हो उठता है। धीरे धीरे यह लोकगीत (बैलेड) के रूप में निर्मित हो जाता है। ग्रिम के आलोचक उनके मत के विरोध में सर्वप्रमुख यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि जब समूह एकत्र हुआ तो उसमें प्रथम पंक्ति का आरम्भ किसने किया? इस भावना का उद्भव किस प्रकार हुआ? इन प्रश्नों का ग्रिम के पास कोई उत्तर नहीं है। कालान्तर में ग्रिम के इस 'मत' को अनेक विद्वानों ने हास्यास्पद बतलाया है।[3]

एफ० बी० गुमेर का समुदायवाद ग्रिम के मत से मिलता-जुलता है। अंतर केवल इतना ही है कि 'गुमेर' को लोक बहुत बड़ा प्रतीत हुआ।[4] उन्होंने लोक के स्थान पर एक विशिष्ट समुदाय को रचयिता बतलाया। इनके सिद्धान्त को भी विद्वानों द्वारा मान्यता न मिल सकी।

स्टेंथल का मत है कि समस्त जाति (रेस) ही लोकगीतों की रचना करती है। उनका कहना है कि 'व्यक्ति' तो उन्नत संस्कृति एवं सभ्यता की एक इकाई है पर आदिम अवस्था में व्यक्ति का कुछ भी मूल्य नहीं था—समस्त जाति ही एक इकाई थी। अतः लोकगीत की उत्पत्ति एक जाति के सामूहिक प्रयास का ही परिणाम है। स्टेंथल का मत भी लोकवार्ताकारों को तथ्यपूर्ण नहीं प्रतीत हुआ।

इंग्लैंड के सुप्रसिद्ध गीत-संग्रह-कर्ता विशप पर्सी का मत है कि प्राचीन काल में चारण लोग ढोल या सारंगी बजाकर गीतों की रचना करते हुए गाते जाते थे।

---

१ इसके अन्तर्गत दो वाद—व्यक्तित्वहीन व्यक्तिवाद, चारणवाद।

२ एफ० जी० चाइल्ड—दी इंगलिश ऐंड स्काटिश पोपुलर बैलेड्स जार्ज जी० एच० ऐंड को० लन्दन १९१४ पृ० १८

३ जी० एच० किटज—दी इंगलिश ऐंड स्काटिश पोपुलर बलेड्स (इंट्रोडक्शन), जार्ज जी० एच० एंड को० १९१४, पृ० १८

४ वही पृ० ६८

संग्रहीत गीतों में जो सामग्री मिली है उसका लगभग आधा भाग ले लिया है। अतः इस संग्रह की वैज्ञानिकता अथवा अवैज्ञानिकता पर विचार करने की कोई आवश्यकता भी नहीं है।

पं० सूर्यकरण पारीक का वर्गीकरण

पं० सूर्यकरण पारीक ने भी गीतों को अपने विस्तार या विषयानुसार २८ वर्गों में विभक्त किया है।[1] पारीक जी का वर्गीकरण भी वैज्ञानिक नहीं है क्योंकि उन्होंने उसमें किसी क्रम या पद्धति को नहीं अपनाया है। उदाहरण के लिए वर्ग ४ में उन्होंने सम्बन्धों के गीत रखे हैं और वर्ग ६ में विवाह के गीत। वस्तुतः सम्बन्ध गीतों में भी विवाह-गीत ही आ जाते हैं। अतः इनका पृथक् वर्ग अनावश्यक है। इसी प्रकार वर्ग १५ में प्रभाती गीत रखे गए हैं और उनके सम्बन्ध में उनका कहना है कि इनमें हरजस (हरिकीर्तन) अधिक होते हैं। १६वें वर्ग में हरजस रख दिया है। जिनका स्थान प्रभाती-गीतों में अन्तर्भाव हो जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जितने गीत मिले हैं उन्हें यों ही अलग-अलग बद्ध कर दिया गया है।

डा० कृष्णदेव उपाध्याय का वर्गीकरण

त्रिपाठी तथा पारीक ने जो वर्गीकरण किया है उसमें उन्होंने वैज्ञानिकता का ध्यान नहीं दिया है। पर इधर डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने भोजपुरी गीतों का जो वर्गीकरण किया है उसके सम्बन्ध में स्वयं उन्होंने कहा है कि एक निश्चित सिद्धान्त के आधार पर इनका वर्गीकरण का प्रयत्न किया गया है।[2] वे आगे कहते हैं कि जब हम जो गीत उपलब्ध हैं उनकी समष्टि पर पूर्णरूप से विचार करते हैं तब निम्नांकित दृष्टि से इन्हें पाँच प्रधान भागों में विभक्त किया है[3]—

1. संस्कारों की दृष्टि से।
2. रसानुभूति की प्रणाली से।
3. ऋतुओं और व्रतों के क्रम से।

नही। इसका कारण यह है कि 'रसानुभूति' किसी वर्ग विशेष के लोकगीतों की विशेषता नही, रस तो सभी लोकगीतो म मिलता है और रस को दृष्टिकोण म रखकर समस्त लोकगीतो का विभाजन किया जा सकता है। इसी वर्गीकरण के प्रथम वर्ग म सस्कारगीतो म ही रस दृष्टि से अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए जा सकते है। इस प्रकार हम देखते है कि उपयुक्त वर्गो के गीतो मे अतिछादन का दोष आ जाता है और वर्गीकरण की वैज्ञानिकता समाप्त हो जाती है।

यो तो लोकगीतो के वर्गीकरण की अनेक प्रणालिया हो सकती है पर उनम से चार को प्रमुखता दी जा सकती है, वे इस प्रकार है—

१ रस के आधार पर।
२ रागो के आधार पर।
३ कथा ततु के आधार पर (मुक्तक और लघु कथात्मक)।
४ अवसर की अनुकूलता के आधार पर।

१ रसानुभूति के आधार पर

लोकगीतो की सवप्रमुख विशेषता उनकी रसात्मकता है। उनम प्रवाहित होने वाली रस की अविरल धारा श्रोता और गायक दोनो को साधारणीकरण की अवस्था म पहुँचा देती है। रस की प्रधानता को दृष्टि म रखकर विभिन्न रसो के अनुसार लोकगीतो के वर्ग बनाए जा सकते ह और इस प्रकार इस वर्गीकरण मे समस्त लोक गीत अन्तर्भुक्त हो जाते ह।

२ रागों के आधार पर

सभी लोकगीत गेय होते है और किसी न किसी राग म गाए जाते हैं। हो सकता ह कि स्वय गायक ही न जानता हो कि वह किसी राग म गाता है या नही। कारण यह है कि इन गीतो का गान की एक परम्परा है। उसी परम्परा का गायक अनुकरण करते है। अत रागो के आधार पर सभी लोकगीतो के वर्ग बनाए जा सकते हैं।

३ कथा ततु के आधार पर

इस आधार पर लोकगीतो के दो वग बन सकते है—एक मुक्तक और दूसरा कथात्मक। जिन लोकगीतो म कथा ततु नितात क्षीण एव लघु होता है और जिनका आकार भी बहुत छोटा होता है उन्ह मुक्तक श्रेणी म रखा जा सकता है और जिनम कथा ततु अपेक्षाकृत कुछ दृढ होता है और जिनका आकार भी कुछ बडा होता है उन्ह भी अँग्रेजी म लोकगीत या बलेड ही कहा जाता है। लघु कथाओ के आधार पर जो रचनाए होती ह उनको हमारे यहाँ कोई प्रचलित नाम नही है। हम उन्हे लघु कथात्मक गीत कह सकते हैं। इन्ह कथात्मक गीत भी कहा जा सकता है। 'चन्द्रावली', 'लचिया' की कथा को लेकर चलने वाले गीत तथा इसी प्रकार के अन्य गीतो को इस श्रेणी म रखा जा सकता है।

४ अवसर की अनुकूलता के आधार पर

सभी लोकगीत सभी अवसरों पर नहीं गाए जाते। किसी निश्चित अवसर पर उसी के अनुकूल गीत गाने की प्रथा सभी स्थानों में प्रचलित है। जब कोई संस्कार सम्पादित किया जाता है तो उस अवसर पर केवल उसी संस्कार से सम्बद्ध गीत गाये जाते हैं। किसी व्रत या पर्व पर भी उसी व्रत या पर्व के गीत गाए जाते हैं। विविध जातियों के गीत भी किन्हीं विशिष्ट समारोहों में ही सुनाई पड़ते हैं। इसी भाँति चक्की पीसते, रोपनी करते, सोता बीनते के गीत भी अपने अपने अनुकूल अवसरों पर छेड़े जाते हैं। अतः अवसर की अनुकूलता के आधार पर गीतों का विभाजन किया जा सकता है।

लोकगीत लोक के जीवन में इतने अधिक घुल मिल गए हैं कि इनका लोक की सभी गतिविधियों में साक्षात्कार किया जा सकता है। लोकगीतों का संग्रहकर्ता इनको सही विविध अनुष्ठानों के अवसर पर ही सुन सकता है। यदि वह ऐसा न कर पाए तो उसे संग्रह करने में बड़ी कठिनाई होगी। लोक-गीतों के गायकों की वाणी अवसर आने पर ही स्वाभाविक रूप में मुखरित होती है। अनुरोध करने पर भी वे अपने गीतों का संग्रह करने योग्य नहीं सुना पाते। विशेष रूप से स्त्रियाँ तो बिना अवसर के गीत गाने के लिए तैयार ही नहीं होतीं। उनका तर्क रहता है कि जब विवाह या जन्म संस्कार के समय ही तत्सम्बन्धित गीत गाए जा सकते हैं तब तो उनका गाया जाना विचित्र बात है—हास्यास्पद है। इस प्रकार इन बातों को दृष्टि में रखते हुए कहा जा सकता है कि अवसर की अनुकूलता का लोकगीतों से घनिष्ठ सम्बन्ध है और इसीलिए इस आधार पर जो वर्गीकरण किए जाते हैं उनमें यह वर्गीकरण अधिक उपयुक्त है। इस वर्गीकरण से लोकगीत के अध्येता को लोकगीतों के विषय में लोक द्वारा भी कुछ अनुमान हो जाता है। यह तो इस वर्गीकरण से पूर्ण होता है पर पाठक को लोकगीतों का परिचय कराने के लिए भी सबसे अधिक सुविधाजनक है।

कन्नौजी लोक गीतों का वर्गीकरण

जिन चार प्रणालियों का उल्लेख किया जा चुका है उन सभी के आधार पर कन्नौजी लोकगीतों का वर्गीकरण हो सकता है। पर यहाँ इन सबका परिचयात्मक विवरण होगा। अतः अवसर की अनुकूलता के आधार पर ही इनका वर्गीकरण किया जायगा। अवसर की अनुकूलता की दृष्टि से कन्नौजी लोकगीतों को निम्नांकित वर्गों में विभक्त किया जाता है—

१ संस्कार-गीत
२ ऋतु-पर्व गीत
३ व्रत-गीत
४ क्रिया-गीत

५ जाति गीत (विशेष समारोहो म गाए जाने वाले)
इन वर्गों के गीता पर आगे विस्तारपूवक विचार किया जायेगा।

कनौजी लोकगीतो का परिचयात्मक विवरण

सस्कार गीत

कनौजी लोकगीता का परिचय देने के लिए सस्कार गीतों को प्रथम वग मे रखा गया है। इन गीता का इसलिए प्राथमिकता दी गई है क्योकि अय भारतीय भाषाओ के लोकगीतो की भाँति कनौजी म भी सस्कार गीता की सख्या अय अवसरो या विषया के गीतो से बहुत अधिक है। कवित्व की दष्टि स भी य ही गीत सर्वाधिक महत्वपूण हैं यह बात अनुष्ठान के समय गाये जाने वाले औपचारिक गीता के सम्बध म नही कही जासकती। औपचारिक गीतो क अतिरिक्त अय समस्त सस्कार गीत रस, लय ममस्पर्शिता—सभी दष्टिया स बहुत समद्ध हैं।

सस्कारा का महत्त्व प्रत्यक जाति म होता है क्योकि इन्ही क साथ ही मनुष्य का समुचित विकास होता है। भारतीय लागा क लिए इन सस्कारा का महत्त्व और भी अधिक है। धम भारत का प्राण है और सस्कारा को धम का ही अग माना जाता है। लोकगीता का सस्कार स अनिवाय सम्बध है। गीतो क विना कोई सस्कार सम्पन्न ही नही होता।

शास्त्रा म सस्कारा की सख्या १६ बतलाइ गई है पर कनौजी प्रदश मे ये सभी १६ सस्कार सम्पन नही होत। जम के पूव एक ही सस्कार सम्पन होता है जिसे शास्त्रीय दष्टि स तो सीमतोनयन कह सकत हैं पर लोक' म उसे 'साधपूजना कहत हैं। जो जो सस्कार सम्पन किए जात हैं उनस सम्बद्ध गीत भी प्राप्त होते हैं।

सस्कार-गीता के स्थूल रूप से नीचे दिए गए भेद हो सकत हैं। आगे उनके सूक्ष्म भेदा का उल्लेख किया जाएगा।

सस्कार गीता के प्रकार—
१ जम के गीत
२ मुडन के गीत
३ जनेऊ के गीत
४ गन्ड़ के गीत
५ विवाह के गीत
६ मत्यु सम्बन्धी गीत

जम क गीत

जम के समय गाये जाने वाले गीतो का 'सोहर'[1] कहा जाता है। सोहर

१ बाजे अनद बधाये उठन लगे सोहर हो।

की कुछ गानों में मंगलाचार भी कहा गया है।[1] साहित्यिक हिन्दी में भी सोहरों की रचना हुई है। तुलसीदास जी ने 'रामलला नहछू' नामक ग्रंथ की रचना इसी सोहर छन्द में की है। वस्तुतः जन्म सम्बन्धी इन लोकगीतों में सोहर छन्द के प्रयोग के कारण ही इनका नाम सोहर पड़ गया है। यह छन्द साहित्य-स्रष्टा द्वारा प्रयुक्त न होकर लोक-कथा की सृष्टि है। तुलसीदास जी ने तो इसका परिष्कार किया है। उन्होंने जो सोहर लिखे हैं वे तुकान्त हैं और उनमें मात्राओं का भी निश्चित क्रम है।[2] लोकगीतों के सोहर छन्द के नियमों से मुक्त होते हैं और उनकी कमी की पूर्ति लय द्वारा की जाती है। कनौजी में पद प्रायः अनुकान्त होते हैं। कुछ लोक कवि ने छन्दशास्त्र की अवहेलना की है पर इसकी एक रागात्मिका वृत्ति में बात प्राप्त होता है। सोहरों की रचना किसी राग में हुई होगी और सम्भवतः इसीलिए इनमें स्वर-सुलभ कोमलता भरी पड़ी है और इनका स्वर भी सौन्दर्यमयी व्यंजना से अनुप्राणित है।

कनौजी के सोहरों का वर्ण्य विषय

इन सोहरों का वर्ण्य विषय साधारणतया शृंगार से युक्त होता है। इनमें दम्पति की रति क्रीड़ा, गर्भिणी स्त्री की स्थिति, ननद भाभी की नोंक, गर्भिणी की इच्छा दोहद की पूर्ति, प्रसव-वेदना, दाई को बुलाया जाना, सद्योजात पुत्र को देखना, माता का आनन्दित होना, सास ननद-तथा पुत्र के पिता आदि का उल्लास, अवसर गीतों का गाया जाना और दिया जाना आदि विषयों का वर्णन प्रचुर मात्रा में मिलता है। इसके अतिरिक्त इन सोहरों में कृष्ण का जन्म भी यत्र-तत्र दिखाई पड़ता है। कुछ सोहरों में माता के वनवास, वीर के हाथ से हरिण का मारा जाना और उसकी अपने पति को मारना आदि विषय भी आते हैं। इनमें शोक और कारुणिक स्थिति का भाव व्यंजना द्वारा व्यक्त होते हैं।

सोहरों में वर्णित विविध विषयों और भावों की दृष्टि से देखकर इनका विभाजन निम्नलिखित प्रकार से किया जाता है

१ कामना गीत।　　३ जन्मोत्सव।
२ गर्भिणी की इच्छा के गीत।　　४ प्रसव-पीड़ा के गीत।

---

१ सखि गावें मंगलचार आज नगर भए रचना।
२ मोचिनि बदन सकोचिनि हीरा माँगन हो
पनहि लिहे कर सोभित सुन्दर आँगन हो।
नैन बिसाल नउनियाँ भौं चमकावइ हो
देइ गारि रनिवासहि प्रमुदित गावइ हो॥

रामलला नहछू (तुलसी ग्रन्थावली)

५ ननद और भाभी के वदन के गीत। ६ नेग गीत।
७ जच्चा के नखर म सबधित गीत। ८ आनन्द बधाव के गीत।

१ कामना गीत

इन गीता म स्त्री की पुत्र प्राप्त करन की कामना और उमक उद्योग का वणन मिलता है। स्त्री की चरम आकाक्षा मातत्व की भावना म ही हानी है। अत पुत्र प्राप्ति की इच्छा का हाना स्वाभाविक ही है। इस कामना और उद्योग को लेकर अनक गीता की रचना लोक कवि न की है। अन्य बोलियो म प्राप्त होने वाले इस प्रकार के गीता तथा कनौजी म प्राप्त होन वाल गीता म कुछ अन्तर अवश्य है। इन कामना-गीता म दो गीत महत्त्वपूर्ण हैं। एक गीत म पुत्रहीन स्त्री पुत्र क अभाव म गगा म डूबन के लिए एक लहर माग रही है। पर गगा उसके दुःख से द्रवित होकर उसे पुत्र का वरदान देती है। घर जाकर पुत्र प्राप्ति का उसे इतना उत्साह होना ह कि वह नौ मास तक पुत्र की प्रतीक्षा करन म अपन को असमथ पाती है और बढ़ई स काष्ठ का पुत्र बनवाती है और सूय से प्राथना करती हुई कहती है कि ह सूय देवता! काष्ठ के पुत्र म प्राण प्रतिष्ठा कर दो, जिसम कि मैं उस लेकर उठू बठू और उसी को साथ सुलाऊँ। नौ मास बीतन पर पुत्र की प्राप्ति होती ह और पति सास ननद, देवर जेठ ससुर आदि परिवार क सभी सदस्य जो उसका निरादर करत थ आदर करन लगत हैं। इन्ही भावा को लकर अवधी और भोजपुरी बोलिया म भी गीत प्रचलित हैं। पर उनम ऊपर जो कथानक दिया गया है उसका लकर दो गीत पाए जाते हैं। कविता कौमुदी (ग्रामगीत) म सगहीत सोहर सख्या १ हमार गीत के आधे अश तक अथात वरदान प्राप्त करने तक मिलता है और उसके पश्चात इन दो चरणो को लेकर समाप्त हो जाता ह—

> गगा गहबरि पियरी चढ़इब होरिल जब होइहैं रे।
> गगा देहु भगीरथ पूत जगत जस गावहि हो॥

कनौजी और अवधी के गीत का विषय किस प्रकार साम्य लिए हुए ह इसे दिखाने के लिए दानों गीतो को उद्धत किया जाता ह—

अवधी गीत—

> गगा जमुनवा के बिचवा तेवइया एक तप कर हो।
> गगा अपनी लहर हमे देतिउ मे मझधार डूबित हो॥
> की तोहि सास ससुर दुख की नइहर दूरि बस।
> तेवइ की तोरे हरि परदेस कवन दुख डूबहु हो॥
> गगा ना मोरे सास ससुर दुख नाहीं नइहर दूरि बस।
> गगा ना मोरे हरि परदेस कोख दुख डूबहुँ हो॥
> जाहु तेवइया घर आपन हम ना लहर देवइँ हो।
> तेवई आज क नवऐं महिनवां होरिल तोरे होइहैं हो॥

गंगा गहबरि जियरी घड़न्थ होगिन जब हारे हो ।
गंगा दहु भगीरथ पूत जगत जस गावहि हो ॥

कनौजी गीत (पुरबीन)—

धरि गंगा किनारे एक तिरिया सो ठाढ़ी अरज कर हो ।
गंगा एक लहर हमें दउ ता जी मैं बूड़ि मरौं हो ॥
को दुख तुम सास ससुर को को ननदा परदेस धन ।
को दुख है तुम माया बाप को को सग जाए बीर को ॥
ना दुख री हमें माया बाप को ना सग जाए बीर हो ।
सासू तौ मोरी बहू ना कहै न कहै ननदौ भउजाई हो ॥
मोरे सजना बाँझ कहि टेर सोई दुख बखिऐं हो ।
ई दुख बिसरो जु ई दुख बिसरो तो सोहि क रतियाँ ।
घर जाय गरभ तमर हुइहै हो ॥

जैसा कि कहा जा चुका है बाँझ का आदर करनेवाला इसमें कोई गीत में भी पाया जाता है पर यह स्थान दूसरे गीत में और इसका आरम्भ दूसरे ढंग से होता है। इस गीत का आरम्भ इस प्रकार होता है कि रानी जिन्हें मैं कहा गई है। राजा इसके पास जाते हैं और कहते हैं कि मेरे सन्तान नहीं है। अतः मेरे लिए यह आवश्यक है कि मैं योग धारण कर लूँ। रानी कहती है कि मैं तो आपके साथ रहूँगी और दोनों भिक्षावृत्ति से उदरपूर्ति करेंगे। कहने के बाद राजा बाहर चलता है। रानी सास से कहती है कि आपने किसी को नौ और किसी को चार पुत्र दिए हैं मुझे ही क्यों विस्मरण कर दिया? सास कहती है कि पूर्व जन्म में राजा बनिया और तुम बनिनि थीं अतः तुम्हें पुत्र नहीं मिल सकता। तुम सास-ससुर तथा ननद का आदर नहीं करती जेठ को पहचान में पसन्द नहीं करती। रानी कहती है कि अब मैं यह सब कुछ करूँगी। इसके बाद ये पंक्तियाँ आती हैं जो ऊपर कहे कनौजी गीत में मिलता है। नीचे दोनों को दिया जा रहा है—

अवधी—

मोरे पिछरवाँ बढ़इया बसिहि चलि आवहु हो ।
बढ़ई गढ़ि देहु काठ के बालकवा मैं जिया
बुझावहुँ मन समझावहु हो ॥
काठक बालक गढ़ि दिहेन अगन धरि दिहेन हो ।
बाबुल मोर अगन राइ ना सुनावहु मैं बाँझिनि कहावहुँ हो ॥
देव गढ़ल जो मैं होतेउँ तो राइ सुनवतेउँ हो ।
रानी बन्ई के गढ़ल होरिलवा रोवन नहिं जानहिं हो ॥

कनौजी (नतगान)—

धरि आई धना बढ़ई के तीर औ सबन सुनाम हो ।

बढ़ई तुम मेरे देउर जेठ कहो मेरो करि देउ रे ॥
काठ को पूत गढ़ि देउ तो उहका खिलइऐं हो।
अरि हनाय धोय के ठाडी भी सुरज मनामैं हो ॥
सुज काठ पूत जिउ डारो तो एई को खिलामैं हो।
अरि बीते जो नौ दस मास तो होरिल सबद सुनामैं हो ॥
बाजन लागे बाजा उठन लगे सोहर हा।
धनि धनि मगा तुमैं हो तुम मेरो मान बढाय दओ हो ॥
अब तो सास बहू कहि बोल ननदो कहै भउजी हो।
अरि सजना जच्चा कहि बोल छतियाँ जुड़ाइ गई हो ॥

इस कनौजी गीत की अवधी गाता से तुलना करने पर ऐसा प्रतीत होता ह कि कनौजी म गीत म दो गीत एक री म जुड गए है। बाह्य दृष्टि स माना भी जा सकता ह कि इसम दो सूत्र जाने गए हैं पर आन्तरिक रूप स वे एक ही है। प्रारम्भ स अत तक एक समान भावधारा प्रवाहित हाती रहती ह। कनौजी गीत विषय की दृष्टि से ब्रज गीत से मिलता जुलता ह। इसम इस प्रदेश के कोमल भावो और कोमल कल्पना का आभास मिलता ह और इसी कारण इस सुखा त बना दिया गया ह। अवधी गीत दु खात ह जो कि भारतीय चितन धारा का एक अपव द कहा जा सकता ह।

दूसरा कामना गात राजा दशरथ और उनको रानिया स सबधित ह। चौकी पर राजा दशरथ विराजमान हैं पास ही कौशल्या बठी हैं। वे राजा दशरथ से कहती है। हम पुत्र रूपी सपत्ति स वचित हैं। अपन राज्य के ज्योतिषियो को बुलवा कर भाग्य पढ़वाइए। पडित आत ह और कहते हैं कि यदि पुत्र लिखा हो तो हम पढकर सुना दें। भाग्य हमसे पढा नही जाता। तत्पश्चात मालिया द्वारा दी गई औषधि का सिल पर पीस कर पिया गया पहल कौशल्या तत्पश्चात सुमित्रा ने। ककेयी न सिल धोकर पी। कौशल्या ने राम, सुमित्रा न लक्ष्मण और ककेयी न चरत भरत का जम दिया।[1] जम हानेपर जब राजा दशरथ घर लुटान लगतो ककेयी कहती ह कि हे राजा! धीरे धीर धन बाटो, क्याकि राम बन को जाएँगे। राजा यह सुनकर दु खी होते है और कौशल्या को धन लुटाता देखकर उन्हें रोकते हैं। पर कौशल्या उत्तर देती ह कि राम वन को चल भी जाएगे फिर भी बहुत बडी प्रसन्नता की बात ता यह है कि मेरा बाझ पन तो दूर हो गया ह। इस प्रकार कौशल्या की पुत्र प्राप्ति की कामना पूर्ण हो जाती है। ब्रज और अवधी म भी यह गीत मिलता है, भाषा और भाव म थोडा अन्तर अवश्य रहता है। इन दो गाता क अतिरिक्त कनौजी म और भी बहुत स कामना गीत मिलत हैं, जिनम स्त्री के पुत्र प्राप्त करने की भावना ही प्रधान विषय होता है।

---

१ ध्यान देने की बात यहाँ पर यह है कि इस गीत म की कथा रामायण की कथा से भिन्न है। रामायण म न तो माली न औषधि दी थी और न ककयी से चरत अर्थात् शत्रुघ्न उत्पन्न हुए थे। उसम तो शत्रुघ्न की माता सुमित्रा ही है

२ दोहद-गीत

अनेक ऐसे गीत मिलते हैं जिनमें स्त्री के गर्भवती होने पर उसको अनेक वस्तुओं के खाने की अभिलाषा होती है। इस अभिलाषा को ही 'दोहद' कहा जाता है। यह अभिलाषा इतनी तीव्र होती है कि पत्नी अपने पति से दुष्प्राप्य वस्तुओं को भी मांगकर अपनी इच्छा पूरी करना चाहती है। पति उसकी अभिलाषा को पूरा करने के लिए कठिन से कठिन परिस्थितियों का सामना करता है। वस्तुतः दोहद को बहुत प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखा जाता है। दोहद का अर्थ है गर्भावस्था में स्त्री के दो हृदयों का होना। आशय यह है कि गर्भस्थ शिशु और माता—इन दोनों के मन में अनेक इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं। लोकगीतों में विश्वास किया जाता है कि दोहद को अवश्य ही पूरा करना चाहिए क्योंकि ऐसा न करने से आगे चलकर शिशु सत्व के लिए खान-पान से असन्तुष्ट रहता है। दोहद की इच्छा को इतना अधिक आदर की दृष्टि से देखा जाता है कि जब पति अपनी पत्नी द्वारा वाञ्छित वस्तु को कहीं से चुराता है और पकड़ा जाता है तो पकड़ने वाले यह जान लेते हैं कि इसने अपनी पत्नी की इच्छा पूरी करने के लिए यह चोरी की है और छोड़ देते हैं और इस प्रकार अपनी पत्नी की इच्छा-पूर्ति कर लेता है—

मइया वस्त मेरे घर में एको नहिं भाव रे।
मारे नौरंगिया की साध नौरंगिया नइ आवा रे॥
राजन भए घाइल असवार नौरंगिया लेन गए हैं रे।
एक नौरंगिया टोरी नौरंगिया पेंड़ चाँपा है रे॥
कहाँ को के हो तुम कौन कौन घर नाती हो रे।
कौन छल बज नारि नौरंगिया लेन आए हो रे॥
अपने दादुल के बेटा अमुलि मेरे नाती हैं रे।
अपनी धना बज नारि नौरंगिया लेन आए हैं रे॥
सासु हमारी चोरें बाल-चोर जाने हैं रे।
बहुअरि अइस पलन मन लागो का पूना बँधाए हैं रे॥
(इसी प्रकार जेठानी ननद आदि भी कहता है।)
मोर मया पी फारी चिरइयाँ चार खाती हैं रे।
जन्हीं खाती तो चोन किचरियाँ हाँस मुँह पावौ
नौरंगिया की चोरो रे॥
पहिले खिआवौ अपनी मइया औ सगी बहिनो को रे।
राजा तिनकी जूठन हम लाँय मचन मुँह देत हैं रे॥

३ गर्भिणी की अवस्था के गीत

इस वर्ग में वे गीत आते हैं जिनमें गर्भ के नौ महीनों में गर्भिणी की विभिन्न दशाओं का वर्णन होता है। इन गीतों में स्त्री की अंगयष्टि में किस प्रकार का परि-

वतन होता है इसका बडा सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है। एक गीत म वणन किया गया है कि स्वामी न जो पड लगाया ह[1] 'वह रस रस' डोल रहा ह। जब उस नौरगिया के दो पत्ते लगत हैं तो धन्या को 'उबकाई' आती ह। चार पत्ते लगन पर धन्या मुर्झा जाती ह। छ पत्ते लगने पर 'अनमनी' हो जाती ह और आठ पत्तो के आते ही उसका शरीर पीला पड जाता ह। पति का चिता होता ह। वह 'दिल्ली' से वद्य बुलाता ह पर स्त्री वद्य से कहती ह कि हे वद्य, हम मत छूना। हमारे स्वामी तो बावले हो गए हैं। स्त्री क कहने का आशय यह है कि उसके पति को इस बात का नान ही नही ह कि गर्भावस्था के कारण वह पीली हो गई ह। पति तो समझता ह कि उसकी पत्नी अस्वस्थ ह। गीत इस प्रकार ह—

सइयाँ लगाई नौरगिया रस रस डोल।
जब नौरगिया मे दुइ दुइ पतउम्रा आए धना उबकानी
रस रस डोल।
जब नौरगिया मे चर चर पतउम्रा आए धना मुरझानी
रस रस डोल।
जब नौरगिया मे छा छा पतउम्रा आए धना अनमानी
रस रस डोल।
जब नौरगिया मे अठ अठ पतउम्रा आए धना पिअरानी
रस रस डोल।
दिल्ली सहर ते बदा बुलाओ धना नबज दिखबाई
रस रस डोल।
दूरि रहो बदा हमे जनि छुइओ सामी तौ है बौराने
रस रस डोल।

४ प्रसव-पीडा के गीत

अनेक लोकगीतो म वणन मिलता है कि सन्तान उत्पन्न होन के समय स्त्री असह्य प्रसव पीडा स छटपटान लगती है। इस समय पीडा स व्याकुल होकर क्या कहती है किस किस का स्मरण करती है आदि विषयो का वणन प्रसव पीडा के गीतो म मिलता है। इस समय स्त्री भगवान का भी स्मरण करती है। ऐसे समय भी भगवान का स्मरण न आया तो फिर कब आएगा? एक गीत म जब पीडा होती है तो स्त्री सास जिठानी देवर की गोद म शरण लकर पीडा से मुक्त होना चाहती है। क्रमश वह एक एक की गोद म जाती है और पीडा के शात न होन पर दूसरे की गोद म इस गीत म स्त्री की लज्जा का पूर्ण रूप स ध्यान रखा गया है। पहले वह सास आदि की गोद म जाती है पर पीडा स मुक्ति नही मिलती। पीडा से जब किसी

---

१ गर्भाधान का प्रतीक।

प्रकार में उसे शान्ति नहीं मिलती तब अपने पति की गोद में जाती है। वह ज्योंही उसे गले लगाता है त्योंही बालक जन्म लेता है। स्त्री पीड़ा को भूलकर आनन्द एवं उत्साह से फूली नहीं समाती। इस गीत में लोककवि ने पति की गोद में पीड़ा के शान्त होने और पुत्र के तत्काल उत्पन्न हो जाने के प्रसंग को लेकर माधुर्य की सृष्टि कर दी है। गीत इस प्रकार है—

मैं मरोरी पीर की मारी।
पहिलो पीर जब आई मैंने अंगना में बैठि बुझाई।
सुमिरि भगवान पीर की मारी।
दूसरी पीर जब आई मैंने सास की गोद बुझाई मींचि के आँखी
सुमिरि भगवान ०
तिसरी पीर जब आई मैंने जिठनी की गोद बुझाई
सुमिरि भगवान ०
चउथी पीर जब आई मैंने ननदिया की गोद बुझाई बाँधि के मूँठी
सुमिरि भगवान ०
पचई पीर जब आई मैंने सजना की गोद बुझाई
लगाय लिया गर में ०
गर लगाओ सजन ने होरिलया ने खबर सुनाओ खुसी भयो जिअरा
सुमिरि भगवान ०

प्रसव से सम्बन्ध रखने वाले गीतों में यह भी वर्णन होता है कि जब गर्भवती स्त्री पीड़ा से व्याकुल होती है तो सास जिठानी-देवरानी-ननद—सभी से प्रार्थना करती है कि वे उसकी पीड़ा बाँट लें? इसके बदले में वह सास को झुमका, जिठानी को बाजूबन्द, देवरानी को माला, ननद को कंगना देने का वचन देती है। पुत्र-जन्म के उपरान्त जब वह स्वस्थ होती है तो कहती है कि मैंने किसी से पीड़ा नहीं बँटाई। मुझे पुत्र की प्राप्ति तो देव की कृपा से हुई है न कि तुम लोगों के कारण।[1] किसी किसी गीत में यह भी वर्णन मिलता है कि स्त्री पीड़ा से अत्यधिक व्याकुल है। वह स्वयं बालक से शीघ्र ही उत्पन्न होने का अनुरोध करती है। उत्तर में बालक कहता है कि मैं जन्म तब लूँगा जब मुझे वचन दिया जाय कि उत्पन्न होते ही मुझे सोने के कटोरे में स्नान कराया जायगा, रेशम के सुन्दर पलंग पर सुलाया जायगा और आसन बिछाने के लिए सुन्दर-सुन्दर वस्त्र दिए जायेंगे। गीत में ऐसा वचन दिया जाता है और तब बालक जन्म लेता है। ऐसे भी गीत पाए जाते हैं जिनमें उल्लेख मिलता है कि अधिक पीड़ा होने का कारण स्त्री का गुरुजनों के प्रति दुर्व्यवहार है। इसमें सास

---

१ तुमने सासू जी को कानों हम हारिल राम ने दीना।
तुमने जिठानी को बीरा हम होरिल राम ने दीना।
(इसी प्रकार अन्य लोगों से भी कहती है।)

ननद का आदर नही किया, ससुर जेठ की लाज नही की। इस समय तो ईश्वर की प्राथना करने पर ही उसे मुक्ति मिल सकती ह।

प्रसव-पीडा के कुछ एस भी गीत मिलत हैं जिनम आसन्नप्रसवा की पीडा के कारण उसके केश छिटकान और क्षण क्षण म इधर उधर व्याकुल घूमने का चित्रण होता है। पहाड जैसी पीडा का पार करके वह पुत्र उपन्न करती ह और जन्म के समय की अय क्रियाएँ सम्पादित की जाती है। इस प्रकार क गीता म से एक गीत नीचे प्रस्तुत किया जाता ह—

काए अनमनी हो प्रभु नार तुम काए अनमनी।
चोली चीर अरगनी टागो केस लए छिटकाय सुनो जिया।
खन आँगन खन भीतर डोलो पीर पहार सुनो जिया।
भोर होत पौ फाटन लागी केस्न लए औतार सुनो जिया।
काए की छरिअन नार छिनाओ काए के खप्पर हनवाओ सुनो जिया।
सोने छुरन ते नार छिनाओ रुपे खपर हनयाओ सुनो जिया।
गइया के गुबर आगन लिपवाओ तिल ते चौक पुराओ सुनो जिया।
कौन जिआए कौन खिलाए कौके रे लाल कहाए सुनो जिया।
ननदा जिआए देवकी खिलाए जसुदा के लाल कहाए सुनो जिया।

५ ननद भाभी की 'बदन' (शत) के गीत

इस वग के गीतो का वण्य विषय ननद और भाभी की बदन (शत लगाना) होता ह। गभवती स्त्री के पुत्र होगा या पुत्री ? यह बहुत बडी समस्या रहती ह। ननद अनुमान लगाती ह और निणय देती ह कि पुत्र ही उत्पन्न होगा। गीत म भाभी पुत्र का नाम सुनकर हर्षोत्फुल्ल हो जाती ह और वचन देती ह कि यदि ननद की बात सच निकली तो वह अपन मायके के कगन उसे द दगी—

दीबो दीबो ननद रानी कगना लालन के भये।

समय आन पर पुत्र होता ह। भाभी अपने मायके क कगना पर इतना मोह रखती ह कि उन्हे ननद को देना ही नही चाहती। ननद भी बिना कगना लिए सतुष्ट ही नही होती। क्रोध म आकर भाभी से कहती ह कि भविष्य म अब तुम्हारे पुत्रिया ही पुत्रिया होगी। जब भाई को वस्तुस्थिति का ज्ञान होता ह तो वह अपनी पत्नी को कगन देने के लिए विवश कर देता ह। भाभी कगना द तो देती ह पर फिर भी अपना रोष प्रकट करके ननद को सौत कह कर सम्बोधित करती हुई कहती ह—

लइ जाव लइ जाय सउति रानी कगना लालन के भय।

इन्ही गीतो के अन्तगत ननद भाभी क कटु सम्बन्ध के गीत भी आत हैं। एक गीत म ननद अपने भाइ राम को भाभी स रुष्ट करवा देने के लिए भाभी से रावण के चित्र बनान का अनुरोध करती है। वचन देती है कि राम को नही बतलायेगी पर

धाम में राम से पूछती रहती है। राम लक्ष्मण को आता देखते हैं कि वे सीता को वन में छोड़ आये। इस गीत का पहुँच जो पद होता है कि ... क्रिया और परम्परा के अनुयायी प्रामाणिक लोगों ने विष्णु राम-कथा में अपनी मौलिक कल्पना को प्रस्तुत किया है। महाराष्ट्र में सीता के वनवास का कारण नारायण या पर नार पति ने चित्र के प्रसंग का स्वर गाता वनवास बताया है। इस गीत का ब्रज और बुन्देली गीत से तुलना करने पर पता चलता है कि कनौजी गीत ब्रज के गीत की भाँति लक्ष्मण द्वारा सीता के आत्मघात होने तक ही समाप्त है। हाँ, ज़रा वर्णन उसमें संयुक्त हो जाने से, रावण ... राम के सामने के पास आते और सीता से पूछने में गया ... कर की कथा भी आ जाती है। कनौजी गीत बुन्देली गीत से अधिक साम्य रखता है। कनौजी गीत का जो कथानक ऊपर दिया गया है उसके आधार पर डा० सत्येन्द्र द्वारा दिये गये बुन्देली गीत से साम्य देखा जा सकता है।[1]

१. नेग के गीत

लोकगीतों में विविध नेगों का वर्णन होता है। कोई भी संस्कार क्यों न हो नेग के बिना काम नहीं चलता। गीतों में ... तथा ... बिना नेग के कोई काम करने को तैयार होते हैं। ... बिछिया ... पाहुन (पाय) ... आदि के नेग माँगने के इन गीतों में अनेक प्रसंग आते हैं। पुत्र के उत्पन्न होने पर ननद काजल के लिए भाव नेग माँगती है उसे मनचाहा नेग मिलता है। इसी प्रकार अन्य लोगों का भी। पर ... अपने पति को लोगों का नेग न देने का अनुरोध करती है और विविध नेगों (नेग के नामों) का अपनी माता, भाभी, बहिन और भाई द्वारा सम्पन्न करवा कर ... में बचना चाहती है—

हम तो पचन्ना सइयाँ सबना सुनाय दीजो।
सास जो मांगे सइयाँ द्वार ते लुढ़काय दीजो।
सास को नेग मोरी अम्मा ते कराय लीजो।
जिठनी जो मांगे सइयाँ द्वार ते लुढ़काय दीजो।
जिठनी को नेग मोरी भउजी ते कराय लीजो।
ननदी जो मांगे सइयाँ द्वारे ते लुढ़काय दीजो।
ननदी को नेग मोरी बहिनी ते कराय लीजो।
दिउरा जो मांगे सइयाँ द्वार ते लुढ़काय दीजो।
दिउरा को नेग मोरे भइया ते कराय लीजो॥

इसके अतिरिक्त इन गीतों में यह भी वर्णन मिलता है कि नेगों के लिए राजा दशरथ वस्त्र लुटाते हैं और कौशल्या विविध आभरण। बाई नेग माँगने आती ...

---

१ तुलना के लिए—डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भंडार आगरा, १९४९ पृष्ठ १३७-४०

हाथ नही जाता। एक गीत म एक स्त्री मुक्त-हस्त होकर नग पाने वालो को दान देती दिखाई पडती है—

> धिम्रा न जनमी जनमे हैं हीरालाल।
> मेरी दाई जू क क रुठना लेव।
> मेरो मइके की चुनरी सो ओढि घर जाव।
> मेरी अम्मा जु क क रुठना लेव।
> मेरे मइके को कगना सो पहिरि घर जाव।
> मेरी जिठनी बडी जू क क रुठना लेव।
> मेरे मइके को कगना सो पहिरि घर जाव।
> मेरी ननद जू क क रुठना लेव।
> मेरे मइके की तिलरी सो पहिरि घर जाव।
> मेरे मइके की पहुची सो पहिरि घर जाव॥

नग के एक अय गीत म दाई के नाल न काटने पर परिवार के विविध लोग उसे पृथक-पृथक नग देत हैं—

> अइसी दाई हरजाइ लाल को नारा न छीन।
> नारा छिनाइ अजुध्या माग मथुरा माग हनवाइ।
> द्वारे ते ससुरा हथिग्रा पठग्रो हथिग्रो न लेय वह दाइ।
> लाल को नारा न छीन।
> द्वारे ते जेठा उटिला पठग्रो उँटिलो न लेय वह दाइ।
> लाल को नारा न छीन।
> द्वारे ते देउरा घोडिला पठग्रो घोडिलो न लेय वह दाइ लाल०
> द्वारे ते सेंइयाँ ने मोहरें पठइ मोहरें म लेय वह दाइ लाल०

७ 'जच्चा' के नखरे के गीत

पुत्र के जन्म म स्त्री हप और उत्साह म फूली नही समाती। उसे इस बात का बहुत बडा गव है कि उसने जाए हैं नन्दलाल धिआ नहिं जाई है। अत लोक गीतो म स्थान स्थान पर वणन मिलता है कि जच्चा बात बात पर रूठती है और उसे मनाया जाता है। उसे इस बात पर बडी ईर्ष्या होती है कि असह्य पीडा तो उसने सही है पर पुत्र उसके पति का कहलाएगा। अत वह सास-ननद आदि से इस बात का दावा करती है कि 'दरद तो हमने सही पिआ के लाल कइसे कहाये'। इस प्रकार पुत्र का नाम माता के नाम पर चले यह सब लोगो स मनवाना चाहती है। गीतो म इस बात का उल्लेख भी मिलता है कि जब उसे 'चरुग्रा' का पानी तथा 'पीपर' पीने को दी जाती है तो वह कहती है कि कडवी पीपल को वह न पी सकेगी। उसकी कपूर के समान धवल जिह्वा उस पय से पीली हो जाएगी, उसके सौदय पर

और पड़ेगा। सब लोग उसे मनाते हैं पर वह नहीं निकारा है। इस विषय का एक गीत नीचे उद्धृत किया जाता है—

घर आसी अगना मे बबरँ ठोंठ घनौचा पियरी ललना।
काहे गिल को गिलौरा काहे लाड़ो ललना।
सान की गिल को मिलौटा रूप को लाड़ो ललना।
बाहर से आए ससुर राजा अरज बहुत कर रे।
पियो बहुघरि रानी पीपर हारिल दूध पिय रे।
पीपर करई कमला बहुत बकटला ललना।
गहुँओं बरन भागी दही जरद हुइ जइय।
कपुरा बरन भागी जिभिया नरद हुइ जइय।
बाहर से आए जेठ राजा अरज बहुत कर रे।
पियो बहूरानी पीपर हारिल दूध पिय रे।
बाहर से आए देवरा अरज बहुत कर रे।
पियो न भउजा पीपर हारिल दूध पिय रे।
बाहर से आए लाला राजा हाथ चबुक लए हो।
पाओ हरामजादी पीपर हारिल दूध पिय रे।
एक कटुरवा को पिय दस भरि लाओ जा रे॥

कुछ ऐसे गीत भी मिलते हैं जिनमें जच्चा पर हास्य-व्यंग्य की बौछार की जाती है। एक उदाहरण दिया जाता है—

जच्चा मोरी बहुत भोरी है रे।
सांझ को मारि बासन धरि सोवे चौका पर सिरिहान।
जच्चा मोरी मच्छर से डरि गई रे।

८. आनन्द बधाए के गीत

पुत्रोत्पत्ति पर परिवार के विविध सदस्य एवं सम्बन्धी जच्चा को बधाई देने आते हैं और ऐसी बधाई के विषय को लेकर जो गीत गाए जाते हैं उन्हें आनन्द बधाए के गीत कहा जाता है। इन गीतों के बीच अथवा अन्त में कहीं कहीं आनन्द बधाए या बधाई शब्द भी आ जाता है जैसे और सब 'आनन्द बधाए' ही आता। या बधाई देने को आती। ऐसी ही बधाई में यह कहा जाता है कि तुम कुल को तारने वाले हो। कुल तारने से हमारे शास्त्रीय विधान की ओर संकेत मिलता है जिसमें माना गया है कि पुत नाम के नरक से त्राण करने के लिए पुत्र ही समर्थ होता है। अतः पुत्र का जन्म होने पर कुल-तारना क्यों न कहलाए? एक अन्य गीत में उल्लेख है कि भाई के पुत्र होने पर बहन बधाई लेने आ गई। भाई अपनी बहन का आदर करता है और अपनी पत्नी से मेल पर द्वन्द्व भी करता है पर बहन को कुछ देना नहीं चाहता। वह बहाना करता है कि यहाँ पर तात-सामर सब गुम गए

हैं कुओं में रेत हो गई है अन्न खेती में कुछ पैदा नहीं हुआ। बहन को पान बीड़ा देता हुआ वह कहता है वह अपने घर जाए। बहन रोष में आकर कहती है कि तुम पत्नी के 'असल गुलाम' हो—

बधइया राजा बीर की।
उठो-उठो धना कुल तरनी बधइया राजा बीर की।
मेरी बहिनी के चरन छुइलेव बधइया राजा बीर की।
ताल पुखरिया सूखि गईं बधइया राजा बीर की।
मेरी बहिनी को बिरिया लगावो बधइया राजा बीर की।
जाव-जाव बहिनी घर आपने बधइया राजा बीर की।
बइठी बइठी बिरन घर आपने बधइया राजा बीर की।
तुम जोइ के असिल गुलाम बधइआ राजा बीर की॥

अन्य 'बधाव' गीतों में कहीं तो बधाई देने के लिए आने वाली ननद की भाभी उपेक्षा करती है और कहीं तो उसके आने पर किवाड़ बन्द कर लेती है। पर कुछ गीत ऐसे भी हैं जिनमें भाभी अपनी ननद का बहुत आदर सत्कार करती है, उसे अच्छी सी भेंट देती है तथा आग्रह करती है कि वह बार बार उसे अपने आगमन से कृतार्थ करे।

जन्म के अन्य गीत

जन्म सम्बन्धी उपर्युक्त गीतों के अतिरिक्त कुछ और भी गीत हैं जो औपचारिक गीत कहे जा सकते हैं। नाल काटने, चरुआ रखने, सतिया रखने, सन्तति-स्नान, छठी, तीर साधन, नामकरण तथा अन्नप्राशन के अवसर पर किस व्यक्ति का क्या हाथ रहता है, विशेष रूप में इन्हीं या इनमें वर्णन रहता है। रस तथा संगीत की दृष्टि से तो इन औपचारिक गीतों का कोई महत्त्व नहीं है पर विविध आचारों के अनुष्ठान के तो ये शास्त्र स्वरूप हैं। इनकी सहायता के बिना उन लोकाचारों के सम्पादन में बड़ी कठिनाई उपस्थित होती है। इन गीतों में संस्कार की तैयारी का सजीव चित्रण मिलता है। नीचे के गीत में सजीवता की परीक्षा की जा सकती है—

अनदा बधाये री माई।
जब गउआ को गुबर मँगाओ अँगना लिपाओ री माई।
जब गोबर अँगना लिपाओ चौक पुराव री माई।
जब मुतियन चौक पुराई कलस धराव री माई।
जब सोने को कलस धराओ दियना जराव री माई।
जब मानिक दियना जराओ पटुलि धराव री माई।
जब चन्दन पटुला धराई जसुदा बुलाव री माई।
जब जसुदा चौक आई ललनिआ हीरालाल हैं माई।
जब ललनिआं हीरालाल लाई सूरज अलोप हैं माई॥

जन्म के गीतों का समग्र रूप से यदि मूल्यांकन किया जाए तो कुछ बातें स्पष्ट रूप से कही जा सकती हैं। पहला वर्ग है जिसमें औपचारिक गीत आते हैं। इनमें न तो कुछ भाव ही होते हैं और न कुछ प्रभावोत्पादकता। दूसरे वर्ग के गीतों में भाव गाम्भीर्य एवं मर्मस्पर्शिता स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। यौन की स्थानीय दशा, गीतों का सामान्य रूप तथा संस्कार से सम्बन्ध—इन सभी विषयों पर जो 'सोहर' मिलते हैं वे काव्य के उत्कृष्ट रूप हैं। अधिकांश सोहरों में सुहागिन भावना भी मिलती है पर कुछ ऐसे भी हैं जिनमें अपने विवाह की मधुरी स्मृति पाई जाती है। इन्हीं द्वारा कौतूहल में सोहर गीत विलापपरक भी हो जाते हैं। गीतों का वह भाग जिसमें कि वे पुत्र्या में गाली गई हैं दुःखान्त भी है। मथिनी लाल गौड़ ने सम्पादन न किया है कि सोहर गाया न जाता है और इसमें आनो की निश्चित निमित्त ... गीता हुई भा गई है।[1] इस कथन से स्पष्ट है कि इनके मत में सोहर गाया न जाता था। पर यह मत तथ्यपूर्ण नहीं है क्योंकि ऊपर बताया जा चुका है कि सोहर दुःखान्त भी होते हैं।

मुण्डन के गीत

मुण्डन संस्कार के समय गाये जाने वाले गीतों को मुण्डन के गीत कहा जाता है। इस संस्कार में बालक का प्रथम बार केश-कर्तन किया जाता है और कन्नौजी प्रदेश में यह महत्त्वपूर्ण संस्कार माना जाता है। इसी कारण इस प्रसंग के गीतों की संख्या बहुत कम होने पर भी इनका यहाँ स्वतन्त्र रूप से परिचय दिया गया है। इन गीतों के गाते समय शायद आदि वाद्य नहीं बजाये जाते। इसका कारण यह है कि यह संस्कार प्रायः घर से दूर किसी नदी या मन्दिर में होता है और वहाँ बाजों का ले जाना असुविधा होता है।

इन गीतों से पता चलता है कि बुआ-फूफा आदि निमन्त्रित होते थे पर उत्सव में सम्मिलित होने के लिए आते हैं और उत्सव में भावना करते हैं कि वे बच्चे के उत्सव में सम्मिलित होकर उसको आशीष देंगी। कुछ गीतों में यह भी पता चलता है कि बाबा, दादी, चाचा-चाची, माता-पिता, भाभी आदि सभी बालक की ओर प्यार जताते हैं और बालक मुण्डन कराने के लिए आग्रह कर रहा है—

> सहब हैं बाबा अमिलिया बहुत अमिलिया बहुत जतन कै सब
> अपनो बाबा पाउतो है।
> अवहूँ कन्हे बाबा ननद मुड़ावन एक बाबा आज मुण्डन करवा
> मुड़ाबो आज बाबनि है।
> नहीं उनको जाँत बदलाने अपनो मुड़ानी है।

(इसी प्रकार अन्य नाम भी जोड़े जाते रहते हैं।)

---

[1] रामनरेश त्रिपाठी — कविता कौमुदी, भारतीय साहित्य सम्मेलन प्रयाग सं० १९९६ वि०, पृ० १०

'झलरी मुडाने' के समय बुआ और बहिन का काम बालो को एकत्र करके अचल मे रखना होता है। 'गीतो' मे य लोग नेग मागते हुए दिखलाए जाते हैं और वे मनोवाछित भेंट भी पाते हैं। इन गीतो म कुछ ऐसे गीत भी प्राप्त होते हैं जिनम ननद भाभी की कटुता पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है। ननद को भाभी मुण्डन-सस्कार पर नही बुलाती पर उस आन की बडी साध' है। वह आती है पर भाभी विवाद लगा लेती है और पूछे जाने पर उत्तर देती है कि बिना निमत्रण मिले वह यहा क्या आई है ? इसीलिए उसको घर म स्थान नही मिलेगा —

असी कोस की ननदिया बबइया लड़के आई हो।
मारी भउजी न हनी हैं किवरिआ हिआं यहां आई हो रे।
की भउजी हम जागिनि की हम भाटिनि हो।
की हम होयँ पतुरिया दुआरे तुमरे नाच हो।
नाहीं ननदी तुम जागिन नाहीं तो भाटिनि हो।
ननदी बडो री छयल की बहिनियाँ आदर बिन आयी हो रे।

'जनेऊ के गीत

यज्ञोपवीत सस्कार म प्रचलित गीता को 'जनेऊ के गीत' या 'बरुआ' कहते हैं। यह सस्कार प्रधानतया ब्राह्मणा क यहाँ और सामान्यतया क्षत्रिया और वश्यो के यहाँ सम्पन्न होता है। अत इन गीता का इ ही तीन वर्णों म प्रचलन है। इतना होते हुए भी आश्चय की बात यह है कि इसके पर्याप्त मात्रा म गीत उपलब्ध होते हैं। जनेऊ संस्कार के सम्पन्न होने के कारण माता पिता आदि सम्बन्धियो की प्रसन्नता, स्वय 'ब्रह्मचारी की प्रसन्नता तथा सस्कार के विविध विधि विधाना एव कृत्यो का वणन इन गीतो म मिलता है। कही वणन मिलता है कि दशरथ राम के जनेऊ के लिए चिंतित हैं और वशिष्ठ जी से प्राथना करते हैं कि राम आठ वष क हो गए हैं। उन्ह जनेऊ पहनन की बहुत बडी साध है। जनेऊ पहनन की उत्सुकता प्रबलता धारण कर लेती है और राम रूठ जाते है—

रामचन्द्र बरुआ भुई लोटि जाँय जनेउआ के कारन।

जनेऊ के विविध विधि विधानो म सभी लोग व्यस्त भी दिखलाए जाते हैं। कही कोई मूज चीरता हुआ तो कोई कही जनऊ के लिए सूत कातता हुआ कही कोई पलाश दण्ड काटता हुआ तो कहीं कोई लगोटा तयार करता हुआ दिखाई देता है। किसी गीत म जनेऊ क समय क्या-क्या होता है इसको बतलाने के लिए एक ऐसे पात्र की योजना की जाती है जो पूछता है कि अमुक का जनेऊ कहाँ हो रहा है ? इसका उत्तर दूसरा पात्र देता है कि 'अमुक अमुक काय जहाँ होता हो वही समझ लो कि 'जनऊ हो रहा है—

गलिन गलिन पडित घूमे हाथ मे पोथी लए।
कौन बखरी राजा जसरथ राम को जनेउआ।

आँगन पोता मुक्तन हुइय कलसा जँडन हुइयँ ।
पहिल यह पड़ रे अँगना में ढोल धमाका दई जइग गरज रे ।
गलिन-गलिन नाऊ घूम हाथ छुहारी लए ।
कौन बगरो राजा जसरथ राम का जनउआ ।
आँगन पानी गुप्त हुइय कलसा जँडन हुइय ।
पहिल येव पड़ अँगना में ढोल धमाका दइ जइग गरज रे ।
(इसी प्रकार अन्य लोग पूछते हैं और उन्हें उत्तर भी मिलता है।)

इस गीत में कनौज में बान, ओढ़न, कलसा सजाने, सूत कातने और जनेऊ बनाने की प्रक्रिया का एक साथ ही वर्णन मिलता है। जनेऊ के समय सभी सम्बन्धी बुलाए जाते हैं। बहन-बहनोई, बुआ-फूफा सब आते हैं। वे लोग जब संस्कार में भाग लेने के लिए चलते हैं तो मार्ग में बड़ा हास्य रहता है और इन बेचारों के भी गीत सिगार जनेऊ में सम्मिलित होने को मार्ग के कारण गाए जाते हैं।

जनेऊ हो जाने पर ब्रह्मचारी भिक्षा-याचना करता है क्योंकि वेदाध्ययन करने के लिए उसे काशी जाना है। वह अपनी आजी, माता, चाची, मामी आदि से कहता है कि मुझे सत्तू और लड्डू दे दो मैं काशी को पढ़ने के लिए जाऊँगा।[1] जिनसे भिक्षा माँगी जाती है वे निर्धनता के कारण अपनी असमर्थता प्रकट करते हुए कहते हैं कि 'हम सत्तू और लड्डू कहाँ से लाएँ। तुम घर में ही रहकर पढ़ो।' एक ब्रह्मचारी से प्रश्न किया जाता है कि इसे बनाया और जनेऊ किसने दिया है—

किन जा दई है पोरी सँगुम्पिया किन इउ जनम्रा कराम्रा ।
आजा मेरे दइ है पोरी सँगम्पिया आजी ने जनम्रा कराम्रो ।
किन जा दइ है पीरी सँगुम्पिया किन इउ जनम्रा करामो ।
बाप ने दई मोरी पीरा सगम्पिया माया ने जनम्रा करामो ।
(इसी प्रकार अन्य सम्बन्धी प्रश्न करते हैं और उत्तर पाते हैं।)

अवधी, भोजपुरी, राजस्थानी, गुजराती आदि के जनेऊ के गीतों से कनौजी के गीतों की तुलना करने पर हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि इनके वर्ण्य विषय में बहुत अधिक समानता है। रीति-प्रथाओं में तो बहुत अन्तर मिलता है पर जनेऊ की प्रथाएँ सब प्रान्तों में प्रायः एक सी ही प्रचलित हैं।

नहछू के गीत

कनौजी क्षेत्र में नाखुरा (नहछू या नख-छेदन) विवाह के पहले होता है। इस दिन वर के नाखून प्रथम बार काटे जाते हैं। इस प्रथा को भी बड़ी धूम धाम से मनाया जाता है पर इसे स्वतन्त्र संस्कार नहीं कहा जा सकता। वास्तव में यह विवाह

१ लावो न आजी मोरी सतुआ औ लड्डुआ ।
काशी बनारस जइहैं वह पढ़ि आय ।

सस्कार का एक अग मात्र ही है। 'नागुरे' के गीतो म वणन मिलता है कि इसमे सभी सम्बधी सम्मिलित होते हैं। माता पिता जी भर कर धन धान्य लुटाते हैं। 'नागुर होने के समय का वणन गीतो म इस प्रकार मिलता है—

पतरी अँगुरिमाँ नउनिग्राँ गोरी
करत राम जी को नाखुर हो घूँघट खोलो
नउम्रा तो कहे नउनियाँ ते इ सब थोरी
राम लखन केरो नाखुर ली हैं हम थोडी

कही कही नहछू विवाह के बाद भी होता है।[1] परिनिष्ठित काव्य म भी 'नहछू' का वणन मिलता है। इस विषय का तुलसीदास का 'रामलला नहछू' उत्कृष्ट कोटि का काव्य है।

विवाह के गीत

विवाह के सास्कृतिक पक्ष तथा उसम विविध लोकचारो का वणन तो आगे एक स्वतत्र अध्याय म किया जाएगा। यहाँ तो उन प्रथाओ म गाए जाने वाले गीतो का परिचय मात्र कराना ही अपेक्षित है। इनमे सकडो गीत गाए जाते हैं और उनका वण्य विषय बडी ही विविधता लिए होता है। बाल विवाह, वद्ध विवाह विषम विवाह और दहेज की विकट समस्याओ तथा उनके परिणामो की ओर लोक कवियो की दृष्टि गई है। वर को खोजने के लिए पिता की कठिनाइयो के जो चित्र इन गीतो म खीचे गए हैं व बडे ही मार्मिक होते हैं। इन गीतो म एक ऐसी प्रथा का उल्लेख मिलता है जो आजकल यूरोप म प्रचलित है अर्थात वर द्वारा कन्या की खोज करना तथा कुटुम्बियो से विवाह का प्रस्ताव करना। कनौजी मे ऐसे गीत भी पाए जाते हैं जिनम वर तपस्वी का वेश धारण करके कन्या के आँगन मे बठकर तपस्या करता है और उसके माता पिता भाइयो आदि के पूछने पर कहता है कि मैं तुम्हारी कन्या का वरण करना चाहता हूँ। कही कही कन्या अपने पिता से अपने अनुरूप सुन्दर वर खोजने का अनुरोध करती है तो कही माता ही उसे अपनी कन्या के लिए वर खोजने को प्रेरित करती है। कही बारात के आने और बाजो के बजने का वणन होता है तो कही माता अपने जामाता को समझाती हुई कहती है कि वह उसकी पुत्री को किसी प्रकार का कष्ट न दे। कुछ गीतो म माता अपनी पुत्री को शिक्षा देती कहती है कि यदि सास ननद गाली भी दें तो उन्हे अचल फना कर ले लेना। विवाह गीतो म विवाह की सज धज और ज्योनार का अतिशयोक्तिपूण वणन मिलता है।

विवाह गीतों के भेद

विवाह गीतो को हम दो वर्गों म बाट सकते हैं। एक वग के गीत वे जो

---

१ रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी (ग्रामगीत), नवनीत प्रकाशन, लिमिटेड, बम्बई सन १९५५, पृ० ३४१

वधू' के घर में गाए जाते हैं और दूसरे वे जिन्हें वर के यहाँ गाया जाता है। वधू पक्ष के गीत करुण रस से पूर्ण होते हैं इसका कारण यह है कि माता पिता इस बात के लिए चिंतित होते हैं कि उनकी कन्या, जिसे उन्होंने लाड़-प्यार से पाल-पोस कर बड़ा किया है, एक अपरिचित व्यक्ति के पास चली जाएगी। उन्हें उसके जाने का शोक तो है ही पर यह सोचकर कि वह सुखी रहेगी या नहीं, उनका दुःख द्विगुणित हो जाता है। दूसरी ओर वर-पक्ष के गीतों में शोभा सजावट और धूम धाम का वर्णन मिलता है। इसका कारण यह है कि वर, उसके पिता तथा माता आदि को इस बात की प्रसन्नता है कि उनके घर में एक नए सदस्य की वृद्धि होगी, जो उनकी वंश बेलि को पुष्पित, पल्लवित और फलित बनाएगी। नीचे दोनों पक्षों का वर्ण्य विषय के अनुसार विभाजन किया जाता है—

कन्या-पक्ष के गीत

१ पीरी चिट्ठी के गीत	२ फलदान के गीत
३ भात माँगन के गीत	४ पना' के गीत
५ मढ़ए-गाड़न के गीत	६ तेल-चढ़न के गीत
७ पित-तथा दई-देवता निमंत्रण' के गीत	८ माय मघरा' के गीत
९ मढ़ए छाए जान के गीत	१० द्वारचार' के गीत
११ चढ़ाए के गीत (वस्त्राभूषण माँगन और पहनन के गीत)	१२ कन्यादान के गीत
१३ भाँवरन के गीत	१४ द्वार रोकन के गीत
१५ वाली मिलान के गीत	१६ 'ज्यानार' के गीत
१७ बनवा के गीत	१८ 'गारी'
१९ बन्नी	२० बन्ना
२१ धान्नी	२२ नकटा

वर पक्ष के गीत

१ वरीच्छा के गीत	२ फलदान के गीत
३ भात माँगन के गीत	४ पना के गीत
५ मढ़ए गाड़न के गीत	६ तेल-चढ़ान के गीत
७ पित तथा दई-देवता निमंत्रण के गीत	८ माय मघरा' के गीत
९ पुरइन-पूरन के गीत	१० मौर-मन्नन के गीत
११ वस्त्र-पहनन के गीत	१२ निकरौसी के गीत
१३ नून राई उतारन के गीत	१४ उबटन के गीत
१५ कंगन-छुड़ाई के गीत	१६ मौर सिरान के गीत

१७ बन्ना १८ गारी

१६ सुहाग रात के गीत

विवाह गीतों की उपयुक्त तालिका पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट हो जाता है कि अधिकांश गीतों का सम्बन्ध विविध लोकाचारों में है। ये गीत प्रायः औपचारिक ही होते हैं और इनमें यह बतलाया जाता है कि विविध आचारों के समय कौन व्यक्ति क्या करता है। शास्त्रीय विधान के साथ लोक प्रथाएँ भी चलती रहती हैं और इन प्रथाओं के लिए ये लोकगीत शास्त्र स्वरूप होते हैं। आगे एक स्वतन्त्र अध्याय में 'लोकाचारों' का विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा और वहाँ इन्हीं औपचारिक गीतों को देना पड़ेगा अतः पुनरावृत्ति को बचने के लिए उन गीतों को यहाँ नहीं दिया जा रहा है। इस प्रसंग में केवल उन्हीं गीतों को प्रस्तुत किया जाएगा जिनमें हास्य-व्यंग्य का चित्रण है अथवा गंभीर एवं मर्मस्पर्शी भावाभिव्यक्ति है।

गारी

वास्तविकता तो यह है कि विवाह गीतों में 'गारी' का ही साम्राज्य रहता है। ये 'गालियाँ' विवाह के प्रायः सभी लोकाचारों में गाई जाती हैं पर भोजन के समय इन्हें विशेष रूप से महत्त्व दिया जाता है। ये गारी गीत एक ओर सुरुचिपूर्ण हास्य-व्यंग्य से युक्त होते हैं तो दूसरी ओर कुरुचिपूर्ण और अश्लील भी। कहीं कहीं तो ये गीत अश्लीलता और अशिष्टता की पराकाष्ठा पर पहुँच जाते हैं। कनौजी में ही नहीं अन्य बोलियों में भी गालियों की संख्या बहुत अधिक होती है। यों तो कनौजी में लोक-साहित्य के अन्य रूपों में भी अश्लील साहित्य मिलता है, पर इन गीतों में अश्लीलता सबसे अधिक पाई जाती है। इनमें पुरुष स्त्री की गुप्तेन्द्रियों का नामोल्लेख तथा रति क्रीड़ा, विशेष रूप से अवधानिक सम्बन्धों का निर्लज्ज वर्णन होता है। हम उन गालियों का विवेचन न करके केवल उन्हीं का वर्णन करेंगे जिनमें शिष्टता-पूर्ण तथा अर्थ गाम्भीर्य से युक्त व्यंग्य मिलता है। इन गालियों का व्यंग्य-रूप हमें वहाँ मिलता है जहाँ पर अभिप्राय तो प्रशंसा करना होता है परन्तु बाह्य रूप से ऐसा प्रतीत होता है कि वर के विविध सम्बन्धियों की निन्दा की जाती है। इन गीतों को एक प्रकार की व्याजस्तुति कहा जा सकता है। नीचे एक उदाहरण से यह बात स्पष्ट करने का प्रयत्न किया जाएगा—

अरे तुम सुनो केसन बलराम हमारी गारी प्रेम भरी।
बुआ तुम्हारी कुंती कहामें रूप मे हैं सिरमौरि।
कुँआरे ही में लड़िका जाओ निकरी सउति छिनारि।
हमारी गारी प्रेम भरी।
बहिनि तुम्हारी सुहृदरा कहामें रूप मे हैं, सिरमौरि।
कुआरे मे अरजुन संग भाजी निकरी सउति छिनारि।
हमारी गारी प्रेम भरी।

ज्योनार

ज्योनार' गीत भोजन करते समय गाये जाते हैं। सारी गीतों से इनमें अन्तर यह है कि इनमें पूर्ण रूप से शिष्टता का निर्वाह किया जाता है। इनका वर्ण्य विषय भोजन में परोसे जाने वाले विविध व्यंजनों का नामोल्लेख होना है। खाद्य, चव्य, लेह्य और पेय—सभी प्रकार के खाद्य पदार्थों के नाम इनमें गिनाए जाते हैं। इस श्रेणी में आने वाले गीतों में किसी किसी में खाद्य पदार्थों की संख्या ७०-८० से भी ऊपर निकल जाती है। ऐसा प्रतीत होता है कि गाने वाली स्त्रियाँ इस विषय के जितने भी नाम जानती हैं, वे सभी की गणना करना चाहती हैं। कुछ गीतों में जहाँ भोजन कराया जाता है, उस स्थान की शोभा तथा वातावरण की भव्यता का भी वर्णन मिलता है। नीचे इसका एक उदाहरण दिया जाता है—

हरि जेंउत है ज्योनार गावें सजनी सारी।
कुंडनपुर की सोभा भाली हम ते कही न जाय।
छार छार लछिमी जहँ जलमी वरन को तेहि आय
चली हैं सखियाँ सारी।
चन्दन की चौकी बिछवाइ सोने ते मढ़वाय
मनि मानिक पायन में लगि रहे नजर नाहिं ठहराय
जगमगे तहँ सारी।
मलमल के जहँ बिछु बिछौना तकिया दई लगवाय
हरखु बाढ़ जिउ भारी।
कंचन थार कटोरा कंचन भोई को लोटा मँगाय
गंगा जल को परसि दओ तहँ बाँहगिनि ते भरवाय
है सीतल अति भारी।

बन्नी

विवाह गीतों में 'बन्नी' भी एक प्रमुख प्रकार का गीत है। इस प्रकार के गीतों की संख्या कनौजी में पर्याप्त है। इनका प्रधान विषय होता है विवाह के लिए सजाई गई 'वधू' की शोभा का वर्णन। किसी गीत में वर्णन मिलता है कि कन्या सुन्दर रेशमी वस्त्र पहने है और अनेक प्रकार के आभूषणों को पहन कर 'रुनुक झुनुक' चल रही है। किसी किसी गीत में कन्या के अनुरूप वर न होने के कारण उस माता तथा अन्य सम्बन्धी लौटा देना चाहते हैं पर 'बन्नी' इसका विरोध करती है और कहती है कि यदि ऐसा किया गया तो वह विषपान करके मर जाएगी—

मेरी लाड़ो रूप सरूप सांवरो वर पाओ।
छज्जा ऊपर आजी बोलीं वर दीजौ लौटाय।
परदा भीतर लाड़ो बोली खाय जहर मरि जाँय
भँवरी डारों में ही वर ते।

छज्जा ऊपर माया बोली वर दोजो लौटाय
परदा भीतर लाडो बोली लाय जहर मरि जांय
भंजरी डारो ये हो वर ते।

एक गीत म सीता सूय से प्राथना करती है कि 'हे सूय ! धनुष बहुत भारी है और रघुनन्दन कृशकाय हैं। कहीं एमा न हो कि धनुष उठान म उनकी भुजा म पटका लग जाए।' राम सीता को आश्वासन दते हैं कि वे धनुष को तोड कर सीता से विवाह करने मे पूण समय हैं। सीता इस बात को सुनकर आनन्दित हो उठती है—

नदिया किनारे इक सारस बोल इक महुआ इक आम रे।
नग्र अजुध्या मे दुइ वर सुन्दर इक लछिमन इक राम रे।
सोपो ओ पोतो छिड़को धनुस परो उठकाय रे।
जो यह धनुष उठामैं रघुनन्दन सोता ब्याहि लइ जाँय रे।
हलाय धोय सीता सुरज मनामैं सुरज बिनती हमारि रे।
भारी धनुष पतरे रघुनन्दन बहियाँ मुरि नहि जाँय रे।
काए को सीता सुरज मनाबो काए को बिनती तुम्हारि रे।
धनुस टोरि हम खड मनामैं ब्याहि तुमे लइ जाय रे।
इतनो सुनि सीता मगन भइ हैं सीता रे जियरा भ्राइ रे।
अब जइय हम राजा जसरथ घर करिय अजुध्या को राज रे।

कुछ गीतो म वणन होता है कि वर नदी के उस पार है और इस पार आन के लिए नाव चाहता है। उत्तर म कहा जाता है कि न तो यहाँ नाव है और न नाविक। यदि 'लाडली की चाह हो तो वर महोदय अपने-आप चले आए—

नदिया किनारे दूल्हा ऐसो असवार है रे।
डारो नाव नवइया दूल्हा चले आमैं रे।
ना मोरे नाव नवइया ओ नाहीं खिवइया है रे।
होय लाडिली चाह दूल्हे चले आमैं रे।

इन बन्नी गीतो मे वर वधू के पूर्वानुराग की भाकी भी मिलती है पर वह प्रेम सयम से पूण है। एक गीत म जब प्रेमी अपनी प्रेमिका का स्पश करना चाहता है तो वह कहती है—

ना छुइओ दूल्हा ना छइओ दूल्हा अबै तो हम हैं कुमारि।
जब हमरे दादुल सँकलप तबहीं हुइबो तुम्हारि।

घोडी

यह गीत भी कन्या-पक्ष का होता है। इस कोटि के गीतों की सख्या बहुत कम है। इस 'वर की घोडी को सज धज, बनाव शृगार तथा उसकी मनोहारिणी चाल का वणन होता है। वस्तुत य गीत वर की प्रशसा की भूमिका प्रस्तुत करते हैं।

वर विवाह करने के लिए यात्रा करता हुआ आ रहा है, उसकी घोड़ी की शोभा इस प्रकार है—

बन्ना की घोड़ी तेज बन में अड़ती ठाड़ी ।
गरे तुम्हारे सोने को तोड़ा चमक सम्हार तेरी ठाड़ी ।
अंग तुम्हारे मखमल की चलिया झगा सम्हार तेरी ठाड़ी ।

'बनरा

बनरा या बन्ना सामान्यतया वर पक्ष का गीत है पर कन्या पक्ष में भी गा लिया जाता है। इस प्रकार के गीतों में वर की शोभा का वर्णन रहता है। उसके रूप रंग, नाज-नखरे, वस्त्राभूषणों का इनमें आकर्षक चित्रण किया जाता है। उसके सिर पर मौर, कान में मोती लटकती हुई बालियाँ, गले में सोने की जंजीर, अंग में केसरिया जामा, पैरों में मखमली जूते, घोड़े पर चढ़ा हुआ तथा साथियों की जोड़ी साथ में—यह है उसकी एक झाँकी। किसी गीत में वर भागा जा रहा है और लोगों से पुकार कर कहा जा रहा है कि पकड़ो-पकड़ो। इस गीत में हास्य का पुट रहता है। इन गीतों के भावों में विविधता मिलती है। एक गीत में वर विवाह के उत्साह में फूला नहीं समाता। उसकी शोभा अजब बहार रही है—

रघुनन्दन फूले न समाँय लगुन मेरी हरे-हरे ।
लगुन मेरी आई गई
सिर सोहै झालरि को मौरा कलगी अजब बहार । लगुन०
माथ उनके तिलक बिराजै सिर सोने को लौरा । लगुन०
अँग सोहै अतलस को जामा फैंटा अजब बहार । लगुन०

कुछ आधुनिक गीतों में गांधी का नाम भी आता है जिसमें कि चरखा कातने और कपड़ा बुनने का उल्लेख मिलता है—

दिल्ली में सोर भयो भारी बन्ना मेरो गांधी भयो है ।
आजा तो उहको चरखा चलावै आजी बिन गजी गाढ़ा
बन्ना मेरो गांधी भयो है ।
बाप तो उहको चरखा चलावै अम्मा बिन गजी गाढ़ा
बन्ना मेरो गांधी भयो है ।

पियरी

इस कोटि में वे गीत आते हैं जिनमें यह वर्णन मिलता है कि बहिन के भात माँगने के उत्तर में उसका भाई अपनी बहिन के घर उत्सव में सम्मिलित होता है और पीला वस्त्र (पियरी) भेंट करता है। बहिन को इस वस्त्र के पहनने की तीव्र लालसा रहती है। भाई यथाशक्ति भेंट करके बहिन को प्रसन्न करता है। इस प्रसंग के गीतों में भी ननद भाभी की कटुता का आभास मिलता है। पत्नी अपने पति को ननद के यहाँ कुछ भी भेंट में न ले जाने के लिए बाध्य करना चाहती है। पर वह

उसका कहना नही मानता। कही-कही तो यह दिखलाया गया है कि अर्थाभाव के कारण वह अपनी ढाल-तलवार बच डालता है और बहिन को सतुष्ट करता है। एक गीत म बहिन अपने भाई की प्रतीक्षा करती है, उसे उसकी अनुपस्थिति म मडप अच्छा ही नहीं लगता। भाई आता है पर परिवार के अनेक सदस्यो को पृथक्-पृथक भेंट देन म असमर्थता प्रकट करता है, पर बहिन चुपके स अपन पास स वह धन जो उसने सास से चुरा कर रख लिया था, दे देती है और भाई सभी को सुन्दर-सुदर भेंटें अर्पित करता है —

तुम्हरो मड़ओ पिया हमे न सुहाय हमरे बिरन नहिं आये।
लावो न रतिया मोरी कलमदवायत चिठिया लिखौं तुम्हरे बीर को।
रानी के बिरन चले आमें।

उहि रे देस राजा गगा बहत हैं हमरे बिरन नहिं आमें।
उहि रे देस राजा जमना बहत हैं हमरे बिरन कसे आमें।
उहि रे देस राजा ठगवा बसत हैं हमरे बिरन कसे आमें।
उहि रे देस राजा घूपा बहुत है हमरे बिरन कसे आमें।
केवट बुलाय रानी नइया चलावो रानी के बिरन चले आमें रे।
बढ़ई बुलाय रानी ढववा कटावो रानी के बिरन चले आमें रे।
मलिया बुलाय रानी बगिया लगावो रानी के बिरन चले आमें रे।
भइया जो पूछ अपनी बहिन ते कितनो खरच तोरे माडए रे।
सासु का चहिय राजा लहर-पटोरा ननदी नवरग चूनरी।
अने का चहिए बिरना पाचो कपडा हमको तौ पियरी धोति रे।
बहनोई का भइया असिल घोडा इत्तो खरच मोरे माडए रे।
जो के न होय बहिनो इतनो खरच हाँप पीरे फरि आवई।
सासु की चोरी ननद की चोरी खरच चलावो राजा वीर को।
लके बर्चुका भइया मडए बठे जानो बजाज के पूत हैं।
लके चली भइया मडए जो बठे मानो सराफ के पूत हैं।
लक डब्बा भइया ऐसे बठें मानो सुनार के पूत है।

नकटा

विवाह दाम्पत्य-जीवन की भूमिका है। अत इस समय गाए जाने वाले गीतो म वर-वधू के भावी दाम्पत्य जीवन की चर्चा होनी स्वाभाविक ही है। इस दृष्टि से दाम्पत्य जीवन के सभी गीतों का अतर्भाव विवाह गीतों म ही हो जाता है। पति पत्नी के प्रेम का सयोग वियोग का तथा अन्य विषयो का वर्णन करने वाले गीतो को नकटा' कहा जाता है। एक गीत म पत्नी पति को उपालम्भ देती हुई कहती है—

सइयाँ सांझ के निकरे आए हैं भोर भए।
कउने बिलमाए कउने के बस मे परे।

सँउगन बिलमाए अइयर घर में करे।
सँउगन करवइयौं अइयर कलस करे।
महलन ऊपर रतियाँ ... धरे।
रतियाँ ... बलमा घर में करे।
पतियाँ लिखि भेजीं नगर खबर करे।
भइया घोड़ आमें बलमा ... मार परे।

एक भी अन्य गीत है जिसमें पति से पत्नी प्रार्थना करती हुई कहती है कि वह परदेश न जाए। वह सदैव उसके साथ ही रहना चाहती है। वह कहती है—

आगरो मति जइयो पिया प्यारे।
पाँच रुपइया की तुमरी नौकरी हम रोंयी बलदार।
घरई में परे रहियो प्यारे।

कभी-कभी ऐसा वर्णन भी मिलता है जिसमें पत्नी कहती है कि पति परदेश न जाए। वह स्वयं चक्की पीस कर और चरखा चला कर गुजर कर लेगी पर रहेगी अपने पति के साथ ही। परदेश जाने में बहुत दुख है। जब पति परदेश चला जाता है तो पत्नी के लिए जीवन भार-स्वरूप हो जाता है। वैभव और समृद्धि होने पर भी प्रिय पति के बिना उसे सब कुछ महत्त्वहीन है। महल भी उसको भीषण सा ... करते हुए प्रतीत होते हैं—

ढाक महल महलाय अबल राजा आप बिना।

विरहिणी की पति के वियोग में ऐसी हो बुरी स्थिति हो जाती है। उसे खाना पीना भी वियोग के कारण नहीं सुहाता—

ननन जल ढरि जाय सुधि आय पिया की।
सोने के थारन भुजना परोसे भुजना परे अनखाय रे। जब०
सोने के गडुआ गंगा जल पानी गडुआ परे अनखाय रे। जब०
पाना पचासी को बिरिया लगाई बिरिया परी अनखाय रे। जब०
चुनि चुनि कलियन सेजा बिछाई सेजा परी बिलखाय रे। जब०

पत्नी पति से वियुक्त है। वह प्रियतम की प्रतीक्षा में सारी रात जागती है, उसके साथ ही दीपक भी जलता है। सन्ध्या से प्रतीक्षा करना प्रारम्भ करती है और इसी में प्रातःकाल हो जाता है फिर भी निर्मोही नहीं आता। उसके भाव इस प्रकार मुखरित हो उठते हैं—

निर्मोहिया मोरी स्याम नहिं आये।
हरे-हरे रेशमा दीप जराये निगरी राति
स्याम नहिं आए।
पूरब तरइयाँ पच्छिम गइ चन्दा गये भिनुसारे
स्याम नहिं आए।

ऊपर के गीत म स्त्री न तो आह भरती है न कराहती ह। वह सीधा सादा वणन करती है, पर इसी म उसकी वेदना चरमोत्कष पर पहुँच जाती है।

विदा-गीत

जब कन्या की विवाह के पश्चात विदा होती है तो उस पर गाए जान वाले गीता को कनौजी म 'विदा के' गीत कहा जाता है। इस अवसर के राजस्थानी गीतो को ओलू' भोजपुरी गीता को गवना और मथिली गीतो को समदाउनि कहा जाता है। इन गीतो म पुत्री के प्रति माता पिता का प्रेम उमडा पडता है। दूसरी ओर पुत्री भी अपने 'नइहर' के छूटने के मोह से आक्रान्त रहती है और वह अपने को विचित्र स्थिति म पाती है। विवाह के अन्य गीतो मे आनन्द उल्लास एव परिहास का बोलबाला रहता है पर विदा के गीतो म घोर विषाद की छाया पडी होती है। विदा के गीतो म कही तो माता के आसू छलछलाते हैं और कही पिता पुत्री को जाते हुए देखकर धीरज' खो बठता है और कही भाई बहिन को जाते हुए देखकर उसकी पालकी रोकता है। इन गीतो के वणन मे पर्याप्त विविधता रहती है।

एक गीत म ससुराल जाती हुई लडकी अपनी बाल्यावस्था स लेकर अब तक की करुण दशा का वणन करती है। उसके जन्म स लेकर आज तक परिवार के सभी सदस्य दुखी रहे हैं। 'नइहर' के छूट जान का उस बहुत दुख हो रहा है। उधर म ई, माता पिता भी उसके अभाव म अपने घर का सूना सूना पाते है—

हम को लिखो है बिदेस रे सुन बाबुल मोरे।
जा दिन भइया तुम्हरो जलम भयो है भइ है सोने केरी राति रे।
आजिहु बेम भाइउ बस दद्दुलि बैस चउपारि रे।
जा दिन भइया मेरो जलम भओ है भइहै बजुर की राति रे।
आजिहु रोमैं बाबुलि रोमैं अजुलि रोमैं चउपारि रे।
तुम को तो बिरना मोरे दद्दुलि चउपरिया हम को तो लिखो है बिदेस रे
हम तो बद्दुलि मोरी गगरी घेलना डुबत डुबत डुबि जाय रे।
हम तो बद्दुलि मोरे सार की गइआँ जहँ बांधो तहँ जाँय रे।
बगिआ के ज्योरे-ज्योरे निक्सो पलकिया कोयल सबद सुनाय रे।
अब का बोलो सउति कोइलिया छूटो बबुलि को देस रे।
लहुरे बिरन मोरी पकरी पलकिया हमरो बहिनि कहा जाय रे।
धिआ पठ बबुलि घर को लउटे घर देखो अँधियार रे।
घर मेरो बासो अगन लिवासो गुयर सुख मेरो सार रे।

एक गीत म दिखलाया गया है कि माता विदा के समय अपनी पुत्री के रुदन को सहन न कर सकेगी और सम्भवत उधर पुत्री भी अपनी स्नेहमयी माता को छोड कर न जाए अंत''माता सोत ही म पुत्री को विदा कर दती है। माग म वह जागती

है तो 'नइहर' के लोगों को न देखकर आत्मघात करना चाहती है। इस गीत में उसके 'नइहर' के प्रति मोह को व्यंजित किया गया है—

धाम नीम तर ठाड़ी बरी माया कलेवा लए ठाढ़ि हैं रे।
खाय न लय मेरी बेटा परदेसिन तुम्हरो कलेवा बड़ो दूरि है रे।
सोवत बटी की डलिया फदाम साउत घर धमयार है रे।
इक बन नाघी दुसरो बन नाघो तिसर में पहुँची जाय है रे।
परदा खोलि जब बेटी जू देखो इतो महर को बस है रे।
महल को कोई नाह बाप को कोई नाह है रे।
मारि कटारि मरि जाउ तो महल का कोई नाह रे।

विदा गीत में भाई अपनी बहन की पालकी के डंडे को पकड़ कर रोता हुआ दिखाई पड़ता है तो यहाँ बहिन अपने भाई, माता, पिता और सखियों के वियोग के दुःख से दुःखी होकर रोती कलपती और सिसकती हुई पाई जाती है। एक गीत में लड़की, उसके भाई और उसकी माता के दुःख की सम्मिश्र अभिव्यक्ति हुई है। माता को इस बात का खेद है कि उसने व्यर्थ ही पुत्री को जन्म दिया क्योंकि विवाह होने पर आज वह जामाता के घर जा रही है। गीत का सारांश यह है। 'बाल अवस्था में गुड़ियों को तथा सखियों को मैंने छोड़ दिया। अपने पिता के घर को छोड़ कर ससुर के घर जा रही हूँ। छोटे भाई ने पालकी का डंडा पकड़कर कहा कि बहन कहाँ जा रही हो? अपने पराये और पराये अपने होते हैं यही कलियुग का व्यवहार है, बहन यह उत्तर देती है। पुत्री को भेजकर पिता वापस आए हैं। सारा घर तथा आँगन रोता हुआ दिखाई पड़ता है। क्या-क्या हृदय फटता क्या नहीं? मेरा पुत्र तो वह ले आया है अतः मैं पुत्री को जन्म नहीं दूँगी क्योंकि उसे जामाता ले जाता है मैं तो 'नित उठि' पुत्र को जन्म दूँगी, वह वधू लाकर मेरे हृदय को शीतल करेगा।

सुहागरात के गीत

विवाह के पश्चात वधू ससुराल पहुँचती है और वहाँ पर 'सुहाग रात' मनाई जाती है। इस प्रसंग के भी अनेक गीत उपलब्ध होते हैं। इन गीतों में पति-पत्नी यही कामना करते हैं कि मिलन की यह रात्रि बहुत बड़ी हो जाय। एक गीत में सूर्य से प्रार्थना की गई है कि वे उदित शीघ्र न हों, चन्द्रमा से अनुरोध किया जाता है कि वे अस्त न हों और रात्रि को बहुत बड़ा बना दें—

आज की सुहाग की राति चन्दा तुम उइयो।
चन्दा तुम उइयो सूरज जिनि उइयो।
मोरे हिरद बिरस जिनि करियो।
सूरज जिनि बुलिया आज चन्दा करो बड़ी राति
चन्दा तुम उइयो।

सुहाग रात विवाह संस्कार की चरम परिणति है। अतः इसके साथ ही विवाह के गीत भी समाप्त हो जाते हैं।

मृत्यु-सम्बन्धी गीत

इस क्षेत्र में मनाए जाने वाले सभी संस्कारों के अवसर पर गाए जाने वाले गीत कनौजी में उपलब्ध होते हैं, पर अंतिम संस्कार 'मृत्यु' अपवाद स्वरूप है। जब किसी की मृत्यु हो जाती है तो सगे और सम्बन्धी बहुत दुःखी होते हैं और मृत व्यक्ति के गुणों का उल्लेख करते हैं। पति की मृत्यु पर पत्नी अपनी विविध समस्याओं का रो रोकर बखान करती है और पुत्र की मृत्यु पर माता भी अपने दुःख को व्यक्त करती है। पर इस अवसर पर कोई गीत नहीं गाया जाता। यह बात अवश्य है कि रोने में कुछ लयात्मकता आ जाती है पर उसे गीत का नाम नहीं दिया जा सकता। डा० सत्येन्द्र[1] और डा० कृष्णदेव उपाध्याय[2] ने ब्रज और भोजपुरी में मृत्युगीतों के होने की बात कही है पर कनौजी में यह स्थिति नहीं है। संस्कार के अवसर पर गाए जाने वाले गीत कनौजी में नहीं मिलते।

मृत्यु संस्कार के अवसर पर गाए जाने वाले तो गीत नहीं मिलते पर कनौजी में ऐसे अनेक गीत हैं जिनमें मृत्यु का उल्लेख अवश्य होता है। एक सावन के गीत में भाई द्वारा पति के मारे जाने पर बहिन विलाप करती हुई कहती है कि—

> की-की पहिरौं हरी-पीरी चुरिआ की प करौं सिंगार।
> को अब छइय रांड की मड़इया कौन कर पतिपाल।
> की की देहरिया ल बइठइयो की के सहइयो बोल।

कनौजी में शान्त रस के गीतों में मृत्यु के विविध रूपों का उल्लेख मिलता है। एक गीत में तो दिखलाया गया है कि मरणासन्न व्यक्ति के सगे सम्बन्धी एकत्र होते हैं। वैद्य बुलाया जाता है पर वह प्राणों की रक्षा नहीं कर पाता। सभी लोग विशेष रूप से माता और पत्नी रोती हैं। शव को चिता पर रखकर भस्म कर दिया जाता है और अन्त में पत्नी से कहा जाता है कि जिस भगवान ने सम्बन्ध जोड़ा था उसी ने तोड़ भी दिया है। अब रोने से क्या लाभ है—

> नगरी अजुध्या आज भई सूनी।
> कोटे ऊपर कोट उठाय दए किला उठाए असमानी।

---

१ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भंडार आगरा, १९४९ पृ० २३२

२ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक साहित्य की भूमिका, साहित्य भवन लिमिटेड, इलाहाबाद १९५७, पृ० ५९

सीस महल त नाता छूटो छूटि गई बाकी नौनी नारी ।
घर बाहर के सब बुलाय लय ससुर बाप महतारी ।
छोटा भइया हाल बुलाय दय लइ साथ बद दिखाय मोरी नारी ।
दुपटा धारे दुपटा पी गए बद छाँड़ि गए नारी ।
हंसा में स प्रान निकरि गए सूनि गई फुलवारी ।
लाट पछरि बाकी तिरिया रोवै जा विधि गति मोरी राम ने बिगारी ।
चारि जने मिलि लाट उठाई ऊपर चादर ताना ।
गंग किनारे लाट उतारी फूँकि दयो जइस होरा ।
हाड़ जरे जइसे चन्दन लकड़ी केस जरे जइसे घास ।
जारि फूँकि परिकमा कीन्हीं औ घर घाट नहाई ।
चलो राम तिरिया समझायें अब का रोवो तिरिया विचारी ।
अब का रोवो तिरिया बावरी जिन जोरी तिन तोरी ।

ज्ञान रस के इन गीतों में लोककवि ने मृत्यु की वियोगपूर्ण स्थिति का इस उद्देश्य से वर्णन किया है जिससे कि जीवन की निस्सारता को मनुष्य समझ सके और अपना ध्यान ईश्वर की ओर लगाए। पर मृत्यु के विरह वर्णन करने वाले इन गीतों को मृत्यु संस्कार के समय नहीं गाया जाता है। यही कारण है कि इन्हें मृत्यु सम्बन्धी गीत ज्ञापक के अन्तर्गत रखा गया है मृत्यु गीत के रूप में नहीं।

ऋतु तथा पर्व गीत

भारतीय जनता प्रकृति की पुजारिन है। प्रकृति के प्रति जो स्नेह भारत में देखने को मिलता है वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। ऋतु और त्योहारों में जो परिवर्तन हुआ करते हैं उनसे जो उल्लास मन में होता है उसकी अभिव्यक्ति कनौजी लोकगीतों में उपलब्ध होती है। विभिन्न ऋतुओं और मासों में जो गीत गाए जाते हैं उन्हें ऋतु गीत कहा जा सकता है। इन्हीं ऋतुओं में हमारे विविध पर्व जैसे होली दीपावली आदि भी आते हैं। अतः इनसे सम्बद्ध गीतों का अन्तर्भाव भी इसी वर्ग में किया जा सकता है। बारहमासा का तो सीधा सम्बन्ध इनसे है ही। आगे इन गीतों का क्रमशः वर्णन किया जाता है।

फागुन मास में गाये जाने वाले गीत

फागुन मास में गाए जाने वाले गीतों को 'फाग' और 'होरी' कहा जाता है। जिस प्रकार सावन के गीतों में स्त्रियों के कंठ से स्वर-लहरी प्रवाहित होकर वातावरण

की आद्रता को और भी आद्र बना देती हैं उसी प्रकार 'फाग और होरी' वसन्त ऋतु के उन्माद को द्विगुणित कर देते हैं। कनौजी प्रदेश म वसन्त ऋतु म गीत स्वत फूट पडते हैं। रात और दिन लोगो को फाग और होरी गान की धुन सवार हो जाती है। इन गीतो का प्रधान विषय राधा कृष्ण की प्रम क्रीडा तथा रग अबीर खेलने से सम्बद्ध होता है। कुछ गीतो म शिव का नाम भी आता है। सम्भवत होली के समय भग का प्रयोग शिव क होली के साथ सम्बन्ध होने के कारण ही आया है। इस अवसर पर राधा कृष्ण और शिव का स्मरण अस्वाभाविक नही है क्योकि तीनो ही प्रजनन एव यौन पक्ष के प्रतीक हैं। राधा कृष्ण ने प्रजनन को मूत रूप दिया है और शिव ने दाशनिक रूप। होली फसल का पव है। इसम सृजन का तत्त्व-दशन होता है। यही कारण है कि होली म नग्नता और अश्लीलता का प्रदशन होता है।

होली के समय गाए जाने वाले गीतों का दो श्रेणिया म रखा जा सकता है। एक म तो इस अवसर का क्रीडा विलास और दूसरे म ओजपूण गीत। इस श्रेणी के गीतो म महाभारत तथा रामायण के विविध युद्धो की कथा का लघु पर प्रभावपूर्ण वणन होता है। इनम सीता बनवास और 'लक्ष्मण शक्ति' आदि मार्मिक स्थलो का अभाव नही होता। कुछ म उपदेश भी रहता है।

होली के गीतो में सबसे बडी विशेषता यह होती है कि इनका एक स्वतन्त्र राग होता है। इनके गाने की पद्धतियाँ अन्य गीतो से भिन्न होती है। गीत म सभी सम्मिलित होकर गाते हैं और इसके लिए ढोलक झाँका वाद्य-यन्त्र पर्याप्त होते हैं। इन गीतो को सामूहिक गान (कोरस) कहा जा सकता है।

क्रीडा विलास की अनेक 'होलियो म से एक यहाँ दी जाती है—

होरी खेलि रहे नदलाल मथुरा की कुज गलिन मे।
अरे कहाँ ते आइ राधा प्यारी अरे कहाँ ते आए नदलाल
अरे कहाँ ते आए गोपी ग्वाल
मथुरा की कुज गलिन में।
अरे पूरब ते आईं राधा प्यारी अरे दक्षिन ते आए नदलाल
अरे पच्छिम ते आए गोपी ग्वाल
मथुरा की कुज गलिन मे।
अरे रग तो लाइ राधा प्यारी अरे पिचकारी नदलाल
अरे भरि भरि मार गोपी ग्वाल
मथुरा की कुज गलिन मे।
अरे अबिर तो लाइ राधा प्यारी गुलाल लाए नदलाल

घरे छूटि उहामें गोपी ग्वाल
मथुरा की कुंज गलिन में।

इसी वर्ग के होली गीतों में कहीं कहीं राधा कृष्ण के प्रेम का वर्णन भी मिलता है —

कौन रंग पिचकारी कर बाँसुरी बजावैं।
जमुन जल भरन गई सब बिरज नारी।
अपनो महिल भूली गलियन ठाढ़ी।
बन में बनमोर नाच नाचें बनचारी।
गोकुल में कान्ह नाच नाचें राधा प्यारी।
वेद पढ़त बिरमा भूल भूल बिरमचारी।
मुनियन के ध्यान छूट चालें जगकारी।

होली फाग में देवर भाभी आदि सम्बन्धों में रंग खेलन और हास-परिहास वर्णन का भी उल्लेख मिलता है।

ओजपूर्ण होलियों में विविध युद्धों के प्रसंगों का सजीव चित्रण होता है। भीम तथा अर्जुन की वीरता, लक्ष्मण मेघनाद का युद्ध, जटायु का युद्ध तथा हनुमान का 'संजीवनी' लाना—ये विषय इन गीतों में बहुलता से आते हैं। इन होलियों में वीर रस की सृष्टि की जाती है। भीम और कीचक के युद्ध का एक होली में इस प्रकार वर्णन मिलता है—

ताल बजाय भिम्म दहलानो ताल बजाय भिम्म दहलानो हरे।

ताल बजाय भिम्म दहलानो बादर गो घहरानो।
फूलो अंग भयो जब दूना तब कीचक घबड़ानो।
ताल बजाय हरे।
भिम्मा आयो तब उठि बोलो भेद न तुमने जानो।
लड़ि ले आज तू अधम अभिमानी तोरो काल नियरानो।
पटकी पकर मारी धरती में कढ़त प्रान कीचक टहलानो —
ताल हरे।
अरे मोयतराय कहैं कर जोरी भेद न काऊ जानो।
ताल बजाय भिम्म दहलानो हरे।

होली के अवसर पर गाए जाने वाले कुछ ऐसे गीत भी होते हैं जिन्हें कबीर कहते हैं। इनमें यौन-सम्बन्धों की स्पष्ट अश्लीलता का प्रदर्शन किया जाता है। स्त्रियाँ भी होली-गान गाती हैं पर इनके गीतों में अन्य गीतों की भाँति ही राग

होते हैं, होली का विशिष्ट राग उनमे नहीं मिलता। इनके गीतो मे भी राधा कृष्ण के प्रेम का वर्णन मिलता है। वीर रसात्मक होलिया इन्ही गीतो मे नहीं मिलती।

'फुलेरा

'होरी' और फाग के अतिरिक्त फाल्गुन मास मे एक प्रकार के और भी गीत गाये जाते हैं जिन्हे फुलेरा गीत कहते है। ये गीत फाल्गुन मास के शुक्लपक्ष की प्रतिपदा से लेकर पूर्णिमा तक गाये जाते हैं और इनको गाने वाली केवल बालिकाए ही होती हैं। सन्ध्या समय गौर पूरी जाती है और कई बालिकाए मिलकर ये गीत गाती है। इन गीतो मे किसी बाजे की आवश्यकता नहीं पड़ती। ये गीत गम्भीर भावों से परिपूर्ण होते है। इनमे बालिकाओ का माता पिता भाई बहिनो के प्रति प्रेम तथा माता पिता का उनके प्रति लाड़ प्यार ताड़ना ताडना की प्रतिक्रिया मायके का मोह—सभी कुछ सिमट कर व्यजित हो जाता है।

एक गीत मे उल्लेख है कि बालिका अपने पिता के यहाँ ग्राम सखियो के साथ 'फुलेरा' खेलने जाती है। खेलने मे इतनी तल्लीन हो जाती है कि सन्ध्या से प्रात काल तक खेलती ही रहती है। जब घर वापस जाती है तो पिता रुष्ट होते हैं तथा दण्ड देने के लिए छड़ी उठाते हैं माता भी फटकारती है। पुत्री हृदय द्रावक उत्तर देती है हे पिता! मुझे दण्ड देने के लिए आप छड़ी क्या उठाते हैं और माता भला बुरा क्या कहती हैं। मैं तो आप लोगो की आश्रित चिड़िया हूँ। चुनते बिनते किसी दिन उड़ जाऊगी। उड़ जाने का आशय विवाह हो जाने से है। गीत इस प्रकार है—

ऊचो चौतरा चौखुटो जहा बेटी खेलन जाय।
हो राधा भामिन बनवारी की।
खेलत खेलत भोर भयो है बाबुल के दरबार
हो राधा भामिन बनवारी की।
बाबुल काढ़ी साटुली हो माया ने बोले हैं बोल
हो राधा भामिन बनवारी की।
काए की काढी साटुली काए की बोले हैं बोल
हो राधा भामिन बनवारी की।
आज बसेरो नौघरे काल्ह बसेरो है दूरि
हो राधा भामिन बनवारी की।
हम तौ तुम्हरी चोरई चुनत बिनत उड़ि जायँ
हो राधा भामिन बनवारी की।

कुछ 'फुलेरा' गीतो मे बालिकाए ससुराल मे सास के व्यवहारो की तथा बहू पर उसकी प्रतिक्रिया की विचित्र कल्पना की गई है। एक गीत मे यह कहा गया

है कि माता पिता के घर में सब कुछ था, ससुराल में काम नहीं सधत रही। वह रात दिन काम करती और काम न करने पर डाँटी जाती था। एक स्त्री का नाम 'दुलहा' 'बनना' दूसरा आदि सारा जन मानता चाहती है पर सब अन्य प्रकार आते हैं। नो मन का हूँ पिसाव और उसका एक 'नौन' बनवाया। वह नौन ससुर के 'बड़ेआ' के सूखने जाने पर भी नहीं पकता। कुओं पर के दलान पर भी नहीं चढ़ा जाता। और और बट जाता है और बचा कि 'सत्तू' का मान भी मिलता भी नहीं। वह सिसिया कर रह जाता है। गीत इस प्रकार है—

हम इस होता डाटोगी टूटोरी देव
चलि नेवरी चलि रत री माई बाबुल के राज
फिरि हुरि जन्या सासुरे टूटोगी देव
फिरि हुरि जइयो सासुर सासु मिलन ना देय टूटोगी देव।
सानि पिसाव पीसना दिन सावर की टूटोगी देव।
गुवर की लिलिया टूटति परि टूटोगी देव।
भोगी इन्दन की मार इन्ना बिचार ना लग टूटोगी देव।
दोरा बिलना की मार बिलन बिचार ना लग टूटोगी देव।
दोगी पग्न की मार पग्न बिचार ना लग टूटोरी देव।
दोगी कगन की मार कगन बिचार ना लगे टूटोगी देव।
दोगी पनजाहन जाय पनजन्या बिचार ना मिल टूटोगी देव
नौ मन गहुआ पिसाय टूटोगी देव।
तीरा बनाश्रा एक सात टूटोगी देव।
पनियाँ भरन को पूनरि निकरी सागर में दावे हाल।
नार कुआ में गिरी परी टूटोगी देव।
सखिया ने पुर मचियाग्रा निकरत आव नाग।
तो फिरी पकवाआ लाग टूटोरी देव।
ससुर का बढेआ सुखानि गआ टूटोगी देव।
महिया को दरिया सुखी रहईं पाइनि आव सोन।
ससुर के कुप्पा कुरुहि गए तऊ न घुपन लाग।
महिया चुकरिया दुरकि गई सवगन आव लोन।
कटरा कडुरा भरि गए टूटोगी देव।
पुन्हरि रहि गई सिसियाय टूटोगी देव।

उपर्युक्त गीत में 'दूहर' का बड़ा ही व्यंग्य पूर्ण चित्र खींचा गया है। दूसरा में सम्बद्ध कुछ मनोरंजक गीत भी मिलते हैं जिनमें स्त्री अपने भाई के विवाह में

चन्द्रमा से प्रार्थना करती है कि वह प्रकाश वितरण करे पर देवर के विवाह में वही स्त्री चन्द्रमा से अनुरोध करती है कि अंधेरी रात कर दे। भाई के विवाह में वह साँप बिच्छू नदी, कुआँ तथा 'गुलरु' आदि के बाधक न बनने के लिए प्रार्थना करती है और देवर के विवाह में ठीक इसके विपरीत। इस प्रकार इन गीतों में स्त्री का अपने 'मायके' के लोगों के प्रति अनुराग तथा ससुराल के लोगों के लिए उपेक्षा का भाव व्यक्त होता है। इस प्रकार के गीतों में से एक गीत यहाँ दिया जाता है—

आजु जुन्हा उजियारो रहिओ सो बीरना चढि ब्याहन जइहैं।
सपवा तुम बाबीं मे रहिओ सो बीरना चढ़ि ब्याहन जइहैं।
बीछी तुम डक पसरिओ ।
नदिया तरि सूखत जइओ ।
कुअना तुम ओघत जइओ ।
गुलरु तुम रहा सिमिटिओ ।
बीरना तुमरी कइसी दुलइआ।
बहिनी री जइसे सोन चिरइआ।
बीरना तुमे पीसत कइसे।
बहिनी री जइसे चन्दन आटा।
बीरना तुमे पोवत कइसे।
बहिनी री जइसे पीपर पता।
बीरना तुमे परसत कइसे।
बहिनी री जइसे राजा के भोजन।
आज जुन्हा अंधियारो रहिओ देउरा चढि ब्याहन जइहैं।
सपवा तुम रहा में रहिओ देउरा चढि ब्याहन जइहैं।
बीछी तुम डक पसरिओ ।
नदिया तुम बाढत अइओ ।
गुलरु तुम रहा फइलिओ ।
देउरा तुमरी कइसी दुलइआ।
भउजी री जइसी कोने मुसरिआ।
देउरा तुमे पीसत कइसे।
भउजी री जइसे धोक्षा को दाना।
देउरा तुमे पोवत कइसे
भउजी री जइसे सरी धपरिआ।
देउरा तुमे परसत कइसे।
भउजी री जइसे भस को सानी।

इस प्रकार स्पष्ट है कि पुत्रजन्म गीतों में गम्भीर से गम्भीर भाव मिलते हैं। पर कुछ में हास्य व्यंग्य विनोदप्रियता तथा ईर्ष्या आदि का भी अभाव नहीं है।

सावन के गीत—

सावन मास बड़ा ही मनोरम होता है। श्याम मेघों का गर्जन सुनकर मोर कूजन करने लगता है। कभी घटा उमड़ती है तो कभी दामिनी दमकती है और कभी बूँदों की रिमझिम रिमझिम फुहार पड़ती है मानो संगीत की महफिल हो रही है। दादुर अपना राग अलापता है और झिल्ली झनकार करती है। चारों ओर हरियाली ही दृष्टिगोचर होती है। प्रकृति की इस सुन्दर पृष्ठभूमि में उपयुक्त रूप का ही स्वर सावन के गीतों में व्यक्त होता है। इन गीतों को कजरी कहते हैं। कजरी के अतिरिक्त कुछ अन्य गीत भी होते हैं जो सावन में ही गाये जाते हैं। ये गीत स्त्रियाँ ही गाती हैं। इनमें स्त्री के मायके जाने की लालसा की चर्चा होती है। स्त्री के नाना प्रकार के दुःखों का भी इनमें वर्णन मिलता है। इन गीतों को करुणापूर्ण गीत कहा जा सकता है।

कजली

सावन में जिस काल बादलों की घटा आदि का वर्णन करने के कारण ही इन गीतों को कजरी कहा जाता है। भारतेन्दु ने मध्य भारत के दादूराय राजा के वंश से सम्बन्धित होने के कारण इसका नाम कजरी बतलाया है। डा० ग्रियर्सन का मत है कि श्रावण तथा भाद्रपद के शुक्ल पक्ष की तृतीया ही का नाम—जिस दिन यह गीत गाया जाता है—कजली तीज है। इस नाम से भी इसकी उत्पत्ति मानी जा सकती है।[1] कजली को हिंडोला गीत भी कहते हैं। इन गीतों में ऋतु की शोभा का वर्णन मिलता है। एक गीत में ऋतु सौन्दर्य इस रूप में अभिव्यक्त हुआ है—

रिमझिम परत फुहार भौंर दिग टपकि रहीं।
झिलमिल बहै बयारि पवन झलि डालि रही।
डौल नीरिआ की डार कोइलिया कुहकि रही।
गरज घटा घनघोर मुरइला कूकि रहे।

कजली में प्रेम का भी वर्णन मिलता है। इसमें शृंगार के उभय पक्षों की झांकी मिलती है। एक गीत में उल्लेख है कि स्त्री पति को आदर भाव के साथ भोजन कराने तथा शय्या पर सुलाने का आग्रह करती है—

१ डा० ग्रियर्सन—जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसायटी बंगाल भाग ५३ खंड १ (सन १८८४) पृ० २

कि अरे रामा हीरा जड़ी सन्दूक मोतिन की माला है हारी।
कि अरे रामा सोने के थारन भुजना परोसो रामा हो रामा।
कि अरे रामा जेमों ननद जू के भइया तुम्हार पर पइया है हारी।
कि अरे रामा सोने के गडुअन गंगा जल पानी रामा हो रामा।
कि अरे रामा पीओ ननद जू क भइया तुम्हारे पर पइया है हारी।
कि अरे रामा पाना पचासो की बिरिया लगाई रामा हो रामा।
कि अरे रामा रचो ननद जू के भइया तुम्हारे पर पइया है हारी।
कि अरे रामा फूलन वारी की सेजा बिछाई रामा हो रामा।
कि अरे रामा सोबा ननद जू के भइया तुम्हारे पर पइया है हारी।

इन गीतों में प्रेम के वियोग पक्ष के भी अनेक वर्णन मिलते हैं। एक गीत में वियोगिनी स्त्री पति के आगमन की प्रतीक्षा करती है। वह सोचती है कि वर्षा के आगमन पर सभी घर वापस के परदेश गए पति वापस आ जाते हैं बदली उमड़ घुमड़ कर आ गई पर मेरे पति ही नहीं आए—स्याम नहिं आए छाई स्याम बदरिया।

एक वियुक्ता नायिका स्वप्न में अपने पति का दर्शन करती है। उसे ज्ञात होता है कि उसका पति योगी हो जाएगा। पति के संयोग सुख का लाभ उठाने के लिए वह भी योगिनी बन जाना चाहती है—

सपने में सखी सइयां जोगी भए हैं हमऊ जोगिन हुइ जाय।
जोगी के साले लाल कपड़ा हो जोगी के लम्बे लम्बे केस।
जुगिया बजाएं किंगिरी जोगिन गावें मल्हार।
हमऊ जोगिन हुइ जाय।

सावन के करुणा पूर्ण गीत

इस वर्ग के गीत स्त्री जीवन के दुःख और वेदना की अभिव्यक्ति करने वाले होते हैं। स्त्री को ससुराल में भांति भांति के कष्ट मिलते हैं और 'नइहर' की स्मृति उसके हृदय को कचोट जाती है। इन विषयों को लेकर भारत के सभी प्रदेशों में गीत मिलते हैं। नइहर की बार बार स्मृति आने के कारण गढ़वाल में इन गीतों को 'खुदेड़' गीत कहा जाता है। खुद का सामान्य अर्थ तो स्मृति ग्रहण किया जा सकता है पर खुद शब्द के भाव की पूर्ण व्यंजना करने में स्मृति शब्द अपर्याप्त है। कनौजी में इस प्रकार के गीत बहुत भावपूर्ण तथा प्रभावोत्पादक होते हैं।

ससुराल में अत्यधिक कष्ट के कारण एक गीत में स्त्री को मायके की याद आती है। वह अपनी माता के पास अपने बुलाने के लिए संदेश भेजती है। पहले माता पुत्री को बुलाने में असमर्थता प्रकट करती है। बाद में भाई बहन को लेने जाता है

और उस बड़े कष्ट न पाता है, और तब वह अपनी माता व अपनी बहिन की दुर्दशा का वर्णन करता है। पुत्री का इस स्थिति ता गुत कर मा ।। आत्राश म आकर कहती है कि उसका पुत्र कुपुत्र निकल गया—

जो तुम माता मोरी धरम की हुइयौ सावन धीर धरइयो ।
बाप तुम्हार बेटी देस क राजा आऊ गए परदस ।
जेठो बिरन बेटी धनिया का लाभी नित उठि जइय ससुरारि ।
लहुरा बिरन गयो निपट अनारी नदी नार दनि हिराय ।
ऊंचे चढ़ि चढ़ि बहिनी हेरत आज बिरन मरा आव ।
आइ गई डुलिया आइ गए कहरवा बन्टा मर अइया तनत बिछाय ।
पहि तय माया ज की बात ।
माया तो बहिनी मारी अन्न न पानी भउजा कहो पलास ।
बइठो न बहिनी मोरी मचिया जा डारी पहि नव सासु जी की बात ।
सासु तो बिरना मोर अइगो निरबइनि साउन बलना दय ।
माया अगार जनि कहिओ बिरना पट मारि मरि जाय ।
भउजो अगाए जनि कहिओ बिरना आऊ नइहर रहें जांय ।
बहिना अगाए जनि कहो बिरना ओऊ ससुर ना जांय ।
ऊंचे चढ़ि चढ़ि माया हर आज पिया मोरो आव ।
छूटी है डुलिया छूटे कहरवा छुइ है पत हमार ।
उनरी न डुलिया उतरी कहरवा बटो पून तनत बिछाय ।
पहि तय बेटा जू की बात ।
बहिनी तो माया मोरी अइस राय जनम मया क बूंद ।
रहीं तो माया मोरी अन्नो मइली जइस दिवाल का लस ।
कपड़ा तो माया मोरी अन्न मन्न जस तलिया का चोकट ।
निकर न पूता तुम निपट कपूता बहिनी राउन कइस छोड़ी ।
लानी न माया मोरी ढाल तरवरिया दस मारि पिआ दय ।

उपर्युक्त गीत म कथा कन्ना की गहरा म असना कुछ भी अपनी माता व बच्चों को आर पूरा ध्यान रखती है। उस गीत का निष्कर्ष है कि उनके दुःख की कहानी को सुनकर माता आत्मघात कर लेती। अब वह भाई को माता से उसके दुःख को न कहने के लिए कहती है। अपनी मया । । का भी उस चि ता है। अत वह भाई से इस बात का भी अनुरोध करती है कि वह आ ।। से जाकर कुछ न कहे अन्यथा उसका उपराम होगा।

कुछ गीतों म वर्णन मिलता है कि बहन के गहरों मात्री हाय आने पर भाई का सम्मान नहीं किया जाता और जब वह अनव पहुंचा को लेने के लिए आता है

तो आदर के साथ उसका स्वागत किया जाता है और उसकी बहिन की विदा भी कर दी जाती है। इस प्रकार के गीतों में से एक गीत नीचे प्रस्तुत किया जाता है—

हरो हरो गोबर पियरी है माटी रनियां महल लिपाए जी।
उड़ो न कागा जाव दखिनवा बीर खबर लइ आवो जी।
कागा बिचारे उड़न न पाए बीर ठाड दरबार जी।
बीर आए कुछौ न लाए सास ननद मुख मोरी जी।
हाथन मेहदी पायन बिछिया कइसे मिलैं राजा बीर जी।
धोय डारों मेहदी उतारि डारों बिछिया लिपटि मिलों राजा बीर जी।
ऊंचे चढ़ि चढ़ि माया हेरें मेरी धिया नेरे कि दूरि जी।
छूंछी डुलिया छूंछे कहरवा रूठे बहिनि जी के बीर जी।
आवो न पूता घुटुअन बइठो बोलो बहिनि जी की बात जी।
बहिनी को हाल न पूछो माया बहिनी को हाल सुनि छतिया फटै जी।
बहिनी के कपड़ा अइसे बने हैं जइसे चउका को पुतना जी।
बहिनी के केस अइसे बने हैं जइसे कुकुर की पूंछ जी।
बहिनी के असुआ अइसे गिरत हैं जइसे मघा के बूंद जी।
अइसे दुख पूता तुम्हरो बहिनो को रोउत कइसे ढोलो जी।
करो न माया मोरी गरुई गठरिआ बहिनी चलन हम जाय जी।
बीर आए सब कुछ लाए सासु ननद हंसि बोलीं जी।
हाथन मेहदी पायन बिछिया कइसे मिले राजा बीर जी।
धोय डारो मेहदी उतारि डारो बिछिया लिपटि मिलो राजा बीर जी।
राधो न बहू मोरी मोती छर भातु अउर गेहुन की रोटि जी।
सारे बहनोई मिलि जेंउन बइठे सारे बिदा की कही तो जी।
सजि गई डुलिया सजि गए कहरवा सजी मइया जी की बहिनी जी।
न हीं नहीं बु दियन मेघा बरस बहिनि कइस घर जायें जी।
डुलिया भीजै कहरवा भीजै भींजत बहिनि घर जाय जी।
ऊंचे चढ़ि चढ़ि माया जोहे र मोरी धिया नेरे कि दूर जी।
लाली लाली डुलिया उवार परे हैं हंसत पुता घर आए जी।
माया भेंटी बहिनिया भेंटी भेंटी सग सहेली जी।

इन गीतों में सास ननद द्वारा दिए जाने वाले दुःखों का भी मर्मस्पर्शी वर्णन मिलता है। जब पति 'परदेश' चला जाता है तब तो सास ननद और भी अधिक निर्दयता दिखलाती हैं और जब पति वापस आता है तो वे उस स्त्री पर चरित्र भ्रष्टता का आरोप लगाकर 'दिरिया' (चरित्र की परीक्षा) के लिए उसे विवश करती हैं। कनौजी लोकगीतों में जहां भी 'दिरिया' का प्रसंग आता है, उसका सूत्रपात सास

ननद द्वारा होता है तत्पश्चात पति अपनी पत्नी की परीक्षा लेता है। सावन के इन गीतों में कुछ में तो स्त्री को सास ननद सबका ही खलता है। एक गीत में उल्लेख मिलता है कि एक स्त्री जब सावन के महीने में झूला झूलने के लिए जाना चाहती है पर सास ननद उसे एक के बाद एक काम बतलाती जाती है और उसे जाने में देर लगती है। अन्त में जाता जानती ढूंढ़ कर को उसके ऊपर से मारा जाता है। जब पति परदेश से लौटता है और उसे अपनी पत्नी की दुःखद मृत्यु का पता चलता है तो वह बहुत दुःखी होता है। माता और बहिन उससे दूसरा विवाह करने के लिए कहती हैं पर वह दूसरा विवाह करना तो अलग रहा वह योगी हो जाना श्रेयस्कर समझता है। गीत इस प्रकार है—

डहवा पियर मचिया गढ़ै हैं टिगलना डिडोलना
अरे बा सासू हमऊ री जाय।
जो बहुआ मोरी भुलआ की साधिनी चकिया पीस धर जाय।
चकिया जो पीसि उठाय धरि दीनी कहा सासुन अब हम जाय।
जो तुम बहुआ मोरी भुलआ की साधिनी गुड़रा पाथ धर जाय।
अरु पनियां भर घर जाय।
पनिया भरि के धनउची धरि दीनी कही सासुन अब हम जाय।
जो तुम बहुआ मोरी भुलआ की साधिनी रसुई भचे घर जाय।
रसुई रचि सिकहर धरि दीनी कहीं अब सासू हम जाय।
जो बहुअरि मोरी झुलुआ की साधिनी गहना उतार धरि जाय।
गहनो उतारि डब्बा धरि दीनो कहीं सासू अब हम जायँ।
एक झक झूलि दुसरा झक झूला तिसर डिडरा डारा मारि।
बन तर मोरा पियर तर मोरा ऊपर जमी हरी दूब।
बरहें बरस दिया बनिजा ते लउटे बर तर तओ है धमर।
माया डउरी लरक सुजन की बहिनी लइ ठंडा पानि।
माया देवा बहिनिया इसी गोरा धना कहू न दिखाय।
तुमरी तो धना पूना चकिया मधाना हुअना लगाइ देर।
चकियन चकियन हम फिरि आए धना कहू न दिखाय।
तुमरा तौ गोरी धना मइके गई हैं जिन्ना का रचा है बिआह।
सार हम दसे सरउजें दसों गोरी धना कहू न दिखाय।
तुमरी तौ गोरी धना झुलुआ का मचिरा डिडरा ने डारा है मारि।
माया जो आइ बहिनिया आइ करी न पूना जिउनार।
काए की पूना मार अनमन धनमन रचिओ मैं दुसरा बिआव।
चन्ना सूरज अम्मा धनियां जो छोड़िन्या रतन ससुरारि।
लावो न माया मोरी जुगिया के कपड़ा हमऊ जुगिया हुई जाय।

सावन के इन करुणापूर्ण गीतों में स्त्री जीवन की यन्त्रणा मुखरित हुई है। कनौजी प्रदेश में पाए जाने वाले गीतों में ये गीत सबसे अधिक मार्मिक हैं। इन गीतों को उच्चकोटि के काव्यों में महत्वपूर्ण स्थान मिल सकता है।

टेसू और झुंझिया के गीत

सावन मास के पश्चात कार्तिक मास में टेसू और झुंझिया के गीत गाए जाते हैं। टेसू बालकों का एक प्रकार का खेल होता है और इसी प्रकार झुंझिया बालिकाओं का। ये खेल बालक बालिकाओं के अन्य खेलों से भिन्न होते हैं और इनके गीतों में कुछ विशदता एवं भाव व्यंजना भी होती है। यद्यपि इनकी बहुत बड़ी विशेषता मानी जाती है। अन्य खेल जैसे कबड्डी या और छोटे मोटे शिशुओं के खेलों में तो केवल वाणी विलास ही होता है। अतः हमने उन खेलों के साथ गाई जाने वाली पंक्तियों पर यहाँ विचार नहीं किया है, क्योंकि उनमें गीति तत्व का नितांत अभाव रहता है, साथ ही उनमें कुछ भाव वैशिष्ट्य भी नहीं मिलता। टेसू और झुंझिया के गीतों पर नीचे पृथक पृथक शीर्षकों में परिचय दिया जाएगा।

टेसू

टेसू एक प्रकार का किशोरों का खेल होता है। जवान भी इसमें सम्मिलित हो जाते हैं। इसमें सब लोग मिल कर कार्तिक मास के शुक्ल पक्ष में पूरे पन्द्रह दिन तक टेसू मांगने जाते हैं। भिक्षा मांगने के समय जो गीत गाए जाते हैं उन्हें टेसू के गीत कहा जाता है। इसमें सभी लोग मिलकर गाते हैं। अतः सामूहिक लय का ध्यान रखा जाता है। खेल खेलते हुए किसी के द्वार पर जाकर इस प्रकार गीत आरम्भ किया जाता है—

> टेसू आए श्राउन दीजौ खेलें पमर दुआर।
> बठक दीजौ रे ढाल की तरवारिन आदर लेय।

इन गीतों में विलक्षणता ही प्रमुख विशेषता है। विलक्षणता के साथ क्षीण कथावस्तु भी रहती है। इसी कारण अन्य खेल के पद्यों से इन्हें अलग श्रेणी में रखा गया है। उन खेलों में तो एक दो पंक्तियाँ ही रहा करती हैं। टेसू के एक गीत में कहा है—कोई कहाँ गुलैंद लाने गया। उसने कुछ तो खाए और कुछ को झोली में बांध लिया। रक्षकों के द्वारा पकड़े जाने पर उसने एक अहीर को बुलाया। अहीर की घोड़ी ने रक्षक को पछाड़ दिया और तब वह रक्षक फरियाद के लिए दिल्ली गया। पर दिल्ली तो बड़ी दूर है। अतः वह चूल्हे की आड़ में छुप गया।

इन गीतों में एक पद में एक बात का वर्णन रहता है और दूसरे में दूसरी बात का। इस प्रकार असम्बद्ध को सम्बद्ध करके इन गीतों की योजना की जाती है। अनेक गीतों

ये गीत लड़के के द्वार जब टेसू माँगने जाते थे। कुछ मिल जाता है तो लौटते समय वे इस प्रकार कहते हैं—

बड़ो दुआरो बड़ी अटरिया बड़ा जाति के टेसू माग ।
भइन भटन राता फन बन पूत फचनार ।
सदा अटरिया अम्मी पूत जा में हाथी झूमें दुआर ।

झुँझिया

जिस समय बालक और युवा टेसू गाते हैं उसी समय बालिकाएँ झुँझिया के साथ झुँझिया गीत गाती हैं। इन गीतों में टेसू गीतों की भाँति विलक्षणता तो रहती है पर इनकी शैली में एक विशेषता यह रहती है कि ये संवादात्मक होते हैं। एक गीत में उल्लेख है कि एक बालक लड़की के दुपट्टे को ताल ने पकड़ लिया। वह ताल से मनचाहा माँग कर छोड़ने के लिए अनुरोध करता है। वह उससे लाल बसिया और गुलरी का फूल माँगता है। इस पर लड़की उत्तर देती है कि इन वस्तुओं को देने में यह असमर्थ है—

उनर ससुर का सगर बिटना गुमना पकरो दुपटटा छोरि ।
छाड़ो छाड़ो हम सगर बिटना जो मांगो सो दय ।
मांग तो मांग लाल बसिअवा अउर गुलरि को फूल ।
लाल बसिअवा सरि गयो सुअना गुलर फूल आधिगत ।

इन गीतों में माता और पुत्री के संवादों द्वारा अनेक विषयों को प्रस्तुत किया जाता है। कभी पुत्री पूछती है—हे माता! भाई के विवाह में क्या क्या मिला? भाभी कैसी है? उसके गुण अवगुण क्या हैं? माता के उत्तर में कभी अद्भुत बातें रहती हैं।

विलक्षणता के साथ ही साथ कुछ ऐसे गीत भी मिलते हैं जिनमें स्त्री के साथ माता पिता, भाई भाभी सास ससुर ननद आदि विविध व्यवहारों का वर्णन रहता है। ये गीत किसी न किसी मन्त्र या कथा का आश्रय लेकर गाए जाते हैं। अतः इनमें हृदय का रस भी झलकता है और साथ ही साथ जिज्ञासा भाव भी रहता है। टेसू गीतों में और झुँझिया गीतों में विषय की दृष्टि से यही अन्तर है। ये गीत भी टेसू गीतों की *भाँति ही शरद पूर्णिमा तक गाए जाते हैं।*

बारहमासा

कनौजी प्रदेश के लोकगीतों में बारहमासा बड़ा लोकप्रिय है। यह ऋतु गीत प्रेम के वियोग पक्ष की अभिव्यक्ति से सम्बन्ध रखता है। इसमें वियोग दुःख से

दुखी नायिका पर रूप के विविध मासों की जो प्रतिक्रिया होती है, उसी का वर्णन किया जाता है। प्रत्येक ऋतु और मास संयोगियों के लिए तो सुख का संचार करता है पर वियोगियों के लिए वही दुःख का अतल सागर बन जाता है। इन गीतों में मासों अर्थात प्रकृति की नाना गतिविधियों का वर्णन होता है, पर वह वर्णन आलम्बन रूप में न होकर उद्दीपन का कार्य करता है। जिस प्रकार संस्कृत साहित्य में प्रवास कथन के लिए मंदाक्रान्ता छन्द का विशेष रूप से प्रयोग होता है उसी प्रकार से लोकगीतों में बारहमासा का बहुलता से प्रयोग होता है। परिनिष्ठित साहित्य में जो स्थान षट् ऋतु वर्णन का है वही स्थान लोकगीतों में बारहमासा का है। परिनिष्ठित साहित्य में भी कभी कभी बारहमासा का वर्णन उपलब्ध होता है। हिन्दी साहित्य में जायसी ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ पद्मावत में नागमती के वियोग के अन्तर्गत उसके बारहमासों की दशा का सजीव चित्रण किया है। उसी प्रकार की सजीवता लोक साहित्य के इन 'बारहमासों' में भी मिलती है। कनौजी में पर्याप्त संख्या में बारहमासे उपलब्ध होते हैं।

एक बारहमासे में स्त्री का पति परदेश गया है। अपने पति के वियोग के कारण वह सन्तप्त दुःखी रहती है। प्रत्येक मास अपने निजी ढंग से उसे पति का स्मरण कराता है। उसकी चिंता बढ़ती ही जाती है और किसी प्रकार भी धैर्य नहीं बंध पाता। वियोगिनी की बारहों मासों की दशा का दिग्दर्शन कराने के लिए यहाँ एक बारहमासा दिया जाता है—

चैत मास चिन्ता अति बाढ़ी प्रान रहे चित लेले।
कइसे धीर धरौं मोरी सजनी बिन हरि मोहन देले।
बइसाख मास रितु लागी री सजनी सब कोई मड़िल छाये।
हमरे तो केस्न बिदेस छाय रहे हमरो मड़िल को छाव।
जेठ मास रितु लागी री सजनी चौलित पवन झकोरे।
अइसी पवन चल निस वासर अंग अंग करि टौरे।
असाढ़ मास रितु लागी री सजनी चौलित बादर घेरे।
बिजली चमके कोई न संदरख रिमिकि झिमिकि जल बरसे।
सावन मास रितु लागी री सजनी सब मिलि झूला झूल।
हमरे तो केस्न बिदेस छाय रहे हम झुलुआ कइसे झूल।
भादों मास रितु लागी री सजनी चौनित अंधिरिया छाई।
मोर की बानि पपिहरा बोले दादुल बचन सुनाव।
क्वांर मास रितु लागी री सजनी सब कोई दान लुटाव।
हमरे तो केस्न बिदेस छाय रहे हमरे को दान लुटाव।
कातिक मास रितु लागी री सजनी सब कोई गंगा हनाय।
हमरे तो केस्न बिदेस छाय रहे हमरे को गंग हनाय।

अगहन मास रितु लागी री सजनी सब सखि गउन जायँ ।
हमरे तो परन पिउन होय रहे हमरो गउना को सय ।
पूस मास रितु लागी री सजनी जाड़ो बहुत सताय ।
हमरे तो परन बिरन होय रहे हमरो जाड़ो परन हुए ।
माह मास रितु लागी री सजनी बउर से आई ।
हमरे तो परन बिरन होय रहे हमरे बउर को नय ।
फागुन मास रितु लागी री सजनी सब सखि होरी खेलें ।
हमरे तो परन बिरन होय रहे हम होरी कइसे खेलें ।

इन बारहमासों में वियोगिनी स्त्रियाँ अपने पति के वियोग का वर्णन करती हैं । कभी वे परदेश गए हुए प्रियतम को संदेश भेजती हैं कि निष्ठुरता का परित्याग करके वे अपनी प्रियतमा के वियोग को शांत करें । एक बारहमासे में विरहिणी प्रियतम के पास उद्धव को भेजती है । उद्धव को इस बात का उत्तरदायित्व दिया गया है कि वे मथुरा जाकर कृष्ण को इस बात से विज्ञ करें कि वे विरहिणी नायिका की बाँह पकड़ कर ले जाएँ । बारह मास प्रतीक्षा में बीत जाते हैं और तेरहवें मास में स्वयं कृष्ण आते हैं और अपने दर्शन द्वारा सब सखियों के नेत्रों को तृप्त करते हैं—

ऊधो भोर ते मधुपुर जाय कन्हैया को ल्याय सजना ।
जब लगि ऊधो मधुपुर जहँ बालम मास असाढ़ ।
एक तो मोरा बोला बदरिया दूजे पिया परदेस ।
तीजे मेह झिमाझिम बरसें सावन अधिक अंदेस ।
भादों मास भयानिक सजना कारी निस अँधियरिया राति ।
दामिनि दमक कौंधा लपक झिंगिया पे झिंगुरा घबड़ाय ।
कुआँर मास माहि अधिक लगि रहो पिया न आये मोर ।
जो घर घर होत कन्हैया जइस रचता में छिन्द लगाय ।
कातिक पूरनमासी को सब सखि गंग नहाय ।
हाथ जोरि के कुम्हरा मारें जलम सुफल हुइ जाय ।
अगहन गोरी टाढ़ी अगनवा घर घर उपजे धान ।
चकई चकवा कहलि करत हैं जल सागर मझधार ।
पूस मास पुस बनिया पूर्नौं सुगना बाली काढ़ें ।
जा घर होत यार कन्हइया सुगना को डरत मारि ।
माह मास में जाड़ो परत है हमसे रहा न जाय ।
फागुन मास में उड़त अबीरा सखियाँ होरी खेल ।
जा घर होत बारे कन्हइया डरतीं मैं अबीर गुलाल ।

चैत मास में फूली चमेली भँवरा रहे लुभाय।
अब न भँवरा लोटी-पोटी जियरा की तपन बुझाय।
बइसाख मास म बँसवा कटउती बँसवा कटाय के बंगला छवौती।
बंगला छवाय के खिरकी कटउती झुकुअन आव बयार।
जेठ मास की खरी दुपहरी हम प चलो न जाय।
जाय पही वारे बलमा ते बहियाँ पकरि लइ जाय।
बरहेंते जब बिरहो लागो सखियन मिले क हइया लाल।

पहले ही कहा जा चुका है कि 'बारहमासे' ऋतुगीत होते हैं। कनौजी प्रदेश में इनका वर्षाऋतु में विशेष रूप से गाया जाना प्रचलित है। सामान्यतया ये प्रत्येक ऋतु में गाये जाते हैं।

'बिरहा'

वियोग का वर्णन करने के लिए बारहमासे अधिक लोकप्रिय हैं। इनमें बड़े विस्तार से विरह वेदना व्यंजित की जाती है। संक्षेप में विरह वर्णन के लिए कनौजी प्रदेश में अन्य प्रदेशों की भांति ही एक अन्य गीत का प्रयोग किया जाता है जिसे बिरहा कहते हैं। इसकी विशेषता यह है कि अत्यंत संक्षेप में ही इसमें गंभीर से गंभीर भाव की अभिव्यक्ति हो जाती है। कुछ बिरहे तो केवल दो पंक्ति के आकार के ही होते हैं परन्तु कुछ में अपेक्षाकृत दीर्घ आकार भी होता है।

एक बिरहे में कृष्ण की प्रतीक्षा में वियोगिनी राधा की जो दशा हो रही है उसका चित्रण इस प्रकार है—

स्याम नहिं आए आई स्याम बदरिया।
छाई चारिउ ओर देखो कारी अंधियरिया।
चमके रहि रहि बरिनि बिजुरिया।
सन सन सन सन चलत बयरिया।
तड़पत इत ब्रसभान दुलरिया।
अंसुअन भींजत धानी चुनरिया।

बिरहों में वियोग की दशा चित्रण तो रहता ही है इसके साथ ही स्त्री के सौन्दर्य उसकी कामोद्दीपक अंग यष्टि तथा विशेष रूप से यौवन के उभार का भी वर्णन रहता है। एक बिरहे में वर्णन किया गया है कि स्त्री का सौंदर्य तभी तक मोहक होता है। जब तक वह बच्चे वाली नहीं होती—

बड़ी नीकी लागे गाय बरवाई जो भुँइ परती होय।
बड़े नीके लागे गोरी जुबनवा जब लौं लड़िकवा न —

उसकी पिता के घर निवास करते करते पूर्ण युवती हो गई है। उसका विवाह तो हो गया है पर पति गौना लेने नहीं आया है। पति से मिलन की प्रतीक्षा में और वियोग में उसका शरीर दुर्बल पड़ गया है। पर घरवाले तथा गाँव वाले इस बात का मर्म ही नहीं जानते। वैद्य कहता है कि पिंड रोग हो गया। पर यह कोई नहीं कहता कि वह गौने के योग्य हो गई है। इस भाव को व्यक्त करने के लिए यह बिरहा गाया जाता है—

> पिया पिया रटत पियरि भई देहिया पर कहे पिंडरोग।
> गाँव के लोगवा मरम नहिं बूझें भई है गवनवा के जोग॥

एक किशोरी यौवनावस्था प्राप्त कर रही है। उसका यौवन उभरता जाता है और कपड़े तंग होते जाते हैं। उसे इस बात को कहने में लज्जा का अनुभव होता है। अंत में वह अपनी भाभी से अपनी कठिनाई का वर्णन करती हुई व्यक्त करती है—

> लजिया की बतिया मैं कइसे कहौं भउजी मोर कही ना जाय।
> परके फगुनवा की सिलि चोलिया में आमी न जुबना समाय॥

कहीं-कहीं इन बिरहों में अश्लीलता भी आ जाती है। इसके अतिरिक्त इन बिरहों के गीतों में सामयिक सामाजिक, राजनीतिक तथा आर्थिक प्रतिक्रिया की अभिव्यक्ति भी होती है। महँगाई के कारण बिरहे गाने वालों की स्थिति पर बिरहे में इस प्रकार कही जाती है—

> महँगी के मारे बिरहा बिसरि गया भूलि गई कजरी बयार।
> देखि के गोरी के गोर जुबनवाँ उठै ना करेजवा म पीर॥

व्रत गीत

व्रतों के अवसर पर गाए जाने वाले गीतों को व्रत गीत कहा जाता है। इन गीतों का सम्बन्ध विशेष रूप से स्त्रियों से है क्योंकि कनौजी प्रदेश में प्रायः स्त्रियाँ ही व्रत रखती हैं। तीज (हरितालिका व्रत) 'कजरी' करवा चौथ और विशेष रूप से नवरात्र आदि व्रतों में स्त्रियाँ गीत गा गाकर अपना मन वांछित फल प्राप्त करना चाहती हैं। इसके अतिरिक्त रात्रि में जागरण के व्रत शिवरात्रि को भी स्त्रियाँ अनुष्ठान करती हैं और देवी के मन्दिर में एकत्र होकर गीत गाती हुई रात्रि भर जागती हैं। रात्रि में वे शान्त होकर बैठें तो सम्भव जागना कठिन हो जाए। कुछ पुरुष भी देवी का व्रत रखते हैं और उन्हें भगत कहा जाता है। ये भगत लोग भी देवी के

गीत गाते हैं। व्रतगीतों में देवी के गीत महत्वपूर्ण स्थान रखते हैं। इनका आगे इन्हीं का परिचय दिया जाएगा।

देवी के गीत

देवी के गीतों को दो भागों में बांटा जा सकता है। एक वे जो स्त्रियां घर में तथा पास के मन्दिर में गाती हैं तथा भगत लोग गाते हैं। दूसरे गीत वे जो कि जात' (यात्रा) में गाये जाते हैं। स्त्रियां और पुरुष जात करने जाते हैं अर्थात् देवी के किसी एक मंदिर में मनौता के लिए जाते हैं जिसके लिए लम्बी यात्रा करनी पड़ती है। यात्रा की विविध कठिनाइयां तथा देवी के ऐश्वर्य का वर्णन ही इन गीतों का वर्ण्य विषय होता है।

ये गीत विशेष रूप से चैत्र तथा क्वार के नवरात्र में गाए जाते हैं। नवरात्र व्रत चैत्र तथा क्वार के शुक्ल पक्ष की प्रतिपदा से नवमी तक मनाया जाता है। कनौजी में इस व्रत को 'नौ दुर्गा' कहते हैं। इन दिनों रात्रि जागरण भी किया जाता है और स्त्रियाँ गीत गाती हैं तथा नाचती भी हैं। इस प्रदेश में सप्त मातृका (सात देवियों) की पूजा की जाती है। इन सात देवियों के अतिरिक्त शीतला देवी की भी पूजा तथा व्रत का अनुष्ठान किया जाता है।

शीतला देवी के गीत

चिकित्सा विज्ञान चेचक को एक रोग मानता है पर लोक विश्वास में उसे शीतला देवी' कहा जाता है। इतने भयंकर रोग का जिसमें शारीरिक तपन अपने चरमोत्कर्ष पर होती है शीतला नाम सुन कर आश्चर्य होता है। सम्भवतः इसके मूल में यह भाव है कि मनुष्य की प्रकृति होती है कि वह भयंकर से भयंकर वस्तु को सुन्दर नाम इसलिए देता है क्योंकि उसके वास्तविक नामोच्चारण से ही उसमें भय का संचार हो जाता है। इसी प्रकृति के परिणामस्वरूप इस भयंकर बीमारी को शीतला देवी कह कर पुकारा जाने लगा हो तो कोई आश्चर्य नहीं है। चेचक की भयंकरता ही ने इसे देवी का रूप दिला दिया है।

जब बच्चों के चेचक निकलती है तो स्त्रियाँ शीतला देवी से बच्चे की रक्षा की प्रार्थना करती हैं। उसकी वे प्रार्थना भी करती हैं जिससे कि वह प्रसन्न होकर उसके बच्चे को स्वस्थ तथा नीरोग कर दें। एक गीत में वे शीतला का बहुत सम्मान करती हैं। उनका वश चले तो वे उन्हें अपने देश में ले आएं और उसके भोजन आदि की सुंदर व्यवस्था भी करें—

पाओं तो लाओं यहि देस में सीतली को।
जो मेरी सीतली का भूखा लगत है भुजना जिमाऊँ

यहि देस में सीतलो की
जो मेरी सीतलो को प्यासा लगत है गड़ुआ पियामैं
यहि देस सीतलो की।
जो मेरी सीतलो को तलफा लगत है बिरिया रचामैं
यहि देस में सीतलो की।
जो मेरी सीतलो को नींद लगत है सिजिया सुआमैं
यहि देस में सीतलो की।

स्त्रियाँ शीतला देवी की जय-जयकार करती हैं। वे उन्हें शुद्ध वस्तु का सेवन कराना चाहती हैं पर कोई भी वस्तु शुद्ध रूप में उपलब्ध नहीं होती है। यदि वे उन्हें दूध पिलाना चाहती हैं तो उनके सम्बन्ध में उन्हें इस बात की चिन्ता है कि दूध को जन्म के पहले ही बछड़े ने गाय के स्तन को मुख में लेकर जूठा कर दिया है। इसी प्रकार अन्य वस्तुओं की भी स्थिति है। कोई न कोई उन्हें जूठा कर देता है—

सीतला महरानी की जइ जइ बोलो।
गउआ को दूध मइया कइसे पियामैं बछरा ने डारो है जुठारि
की जइ जइ बोलो।
साठी के चाउर मइया कइसे चढ़ामैं चिरइ ने डारे हैं जुठारि
की जइ जइ बोलो।
गंगा को नीर मइया कइसे चढ़ामैं मछरी ने डारो है जुठारि
की जइ जइ बोलो।
बारी को फूल मइया कइसे चढ़ामैं भउरा ने डारो है जुठारि
की जइ जइ बोलो।

अन्य देवियों के गीत

शीतला के अतिरिक्त अन्य देवियों की पूजा तथा प्रशस्ति के पर्याप्त गीत उपलब्ध होते हैं। एक गीत में अनेक देवियों का नाम एक साथ उल्लेख मिलता है—

अन्धे को फूलमती आइ गइ पहाड़मती
कालिका मोरी मइया यही बन।
सोने के थारन भोजना बनाए जेंवें को फूलमती
जेंइ गइ पहाड़मती कालिका महरानी यही बन।
सोने के गड़ुआ गंगाजल पानी पीवे को फूलमती
पी गइ पहाड़मती कालिका महरानी यही बन।

पाना पचासी की बिरिया लगाई रचिब फूलमती
रचि गई पहाडमती कालिका महँरानी यही बन।
फूलन बारी की सेजा बिछाई सुइबे को फूलमती
सोयगई पहाडमती कालिका महँरानी यही बन।

विभिन्न वस्तुओं की प्राप्त करने के लिए स्त्रियां इन गीतों म देवी को अनेक स्तुए अर्पित करती हैं। इन गीतों की प्रश्नोत्तर शली रहती है। उदाहरण के लिए क गीत दिया जाता है—

काए के काजे मइया धजर नारियर
काए के काजे मइया भरि भरि दोना।
दूधा के काजे मइया धजर नारियर
पूता के काजे मइया भरि भरि दोना।

(इसी प्रकार अन्य वस्तुओं का भी उल्लेख करती हैं।)

गीत म यह भी कहा जाता है कि देवी माता ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार र लिया और उन्ह वरदान देकर स तुष्ट कर दिया। उन्हें दूध और पूत दोनों की ाप्ति हो गई—

दूध तो दओ मइया भरि दुघाडो।
पूत दओ भरि गोदी मोरो मइया।

'भगतों द्वारा गाए जाने वाले देवी के गीतों म भी देवी की प्रशसा की जाती है। य लोग भी देवी से भांति भांति की सासारिक समृद्धियो के लिए याचना करते हैं। देवी के एश्वय का भी इन गीतों म वणन मिलता है। देवी के मन्दिर मे जलने वाले दीपक के प्रसग से सम्बद्ध एक गीत प्रस्तुत किया जाता है—

उजेरो री मइया दिअना का सांझ भई।
काए को दिअन काए केरी बाती काए के दिअना जरे।
सोने के दिअन कपुर केरी बाती सुरई के दिअना जरे।

देवी के ऐश्वय के साथ-साथ उसके पराक्रम के गीत भी पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं इन गीतों म देवी द्वारा अनेक असुरों का वध किया जाता है। देवी भक्तों पर सन्व कृपा करने वाली दिखाई जाती है। उसके लगूर' भक्तों के सकटों को दूर कर देते हैं। इन लगूरों की भी गीतों म प्रशसा मिलती है। देवी के अतिरिक्त अन्य देवताओं जसे सूय, शिव कृष्ण तथा राम का यशगान भी इन गीतों म मिलता है। धार्मिक भावना से सम्बद्ध जितने भी गीत हैं उनके सम्बन्ध म यदि समग्र रूप से कहा जाय तो ये सारे

देवता तथा देवियाँ स्वयं सुनने से अधिक मानव से सुनना चाहते हैं । संकट पड़ने पर प्रार्थना करने वाले पर वे सभी अपनी कृपा करते हैं प्रार्थना करने वाला कितना ही निम्न प्रवृत्ति का क्यों न हो । जाहर के गीतों में देवियाँ शंकर की भाँति 'आशुतोष' दिखलाई गई हैं ।

काम काज करते समय गाये जाने वाले गीत

काम-काज करते और रास्ता चलते हुए गाए जाने वाले गीतों को कामकाज के गीत या क्रिया गीत कहा जा सकता है । पश्चिमी लोक साहित्य मर्मज्ञों ने इस प्रकार के गीतों को 'लेबर सांग' कहा है । हिन्दी में इस प्रकार के गीतों का अभी कोई निश्चित नाम नहीं मिला है । इन लोकगीतों का प्रचार करने वाले बहुत बड़े मनोवैज्ञानिक रहे होंगे । यही कारण है कि उन्होंने काम करते समय गीतों के गाए जाने का प्रचार किया जिससे कि काम करने वाले गीत की उमंग में थकावट की ओर ध्यान ही न दें । यह मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि किसी वस्तु की ओर ध्यान देने से उसकी अधिकता का अनुभव होने लगता है और ध्यान न देने पर मानो उसकी अस्तित्व का ज्ञान ही नहीं होता । श्रम करने वाला श्रम का अधिक अनुभव न करे और अपना कार्य प्रसन्नतापूर्वक करे, इसी लिए ये गीत बहुत महत्त्वपूर्ण हैं । इन गीतों से श्रम का परिहार हो जाता है । कनौजी प्रदेश में पाये जाने वाले इस प्रकार के गीतों को चक्की के गीत, रोपा के गीत, पगत बटाई के गीत, माता आतन के गीत, निरवाही के गीत, कोल्हू के गीत, चरसे के गीत—वर्गों में रखा जा सकता है ।

काम काज करते समय गाए जाने वाले गीतों के वर्ण्य विषय में बहुत विविधता रहती है । इनमें रामायण महाभारत के अनेक धार्मिक प्रसंगों से सम्बद्ध विषयों को लेकर गीतों की रचना हुई है । विषय की दृष्टि से ऊपर कहे गए कार्यों से संबद्ध गीतों में परस्पर भेद की कोई सीमा रेखा नहीं खींची जा सकती, क्योंकि एक ही प्रकार के विषय को लेकर इन सभी अवसरों पर गाए जाने वाले गाने उपलब्ध होते हैं । केवल गीतों का संग्रहकर्त्ता इन गीतों के संबंध में केवल इतना ही कह सकता है कि उसने अमुक गीत अमुक अवसर पर गाते हुए सुना है । इस प्रकार के प्रायः सभी गीत एक जैसे ही होते हैं । इन गीतों में जिस कार्य से ये सम्बद्ध होते हैं उनका कोई उल्लेख नहीं होता । चरसे के गीत अवश्य ही इसके अपवाद हैं क्योंकि उनमें चरसा चलने की आवाज, सूत का आता जाना आदि का भी वर्णन होता है । इन गीतों की प्रकृति को स्पष्ट करने के साथ ही विषय विस्तार को बचाने के लिए पृथक पृथक वर्ग बना कर उनका विश्लेषण किया जाएगा । विषय विस्तार को बचाने के लिए सभी वर्गों का परिचय न देकर केवल दो वर्गों का परिचय नीचे दिया जाता है । यह तो कहा ही जा चुका है कि वर्ण्य विषय की दृष्टि से कोई विशेष अंतर विविध वर्गों के गीतों में नहीं है । अतः पृथक पृथक वर्गों का परिचय देना आवश्यक भी नहीं है ।

चक्की के गीत

चक्की को कनौजी तथा अन्य बोलियां, जैसे अवधी और भोजपुरी में 'जतसार' भी कहा जाता है। अतः इन गीतों को 'जाँत के गीत' भी कहा जा सकता है। चक्की के गीत श्रम निवारणार्थ गाए भी जाते हैं पर साथ ही साथ वे पीसने वाली स्त्रियों के मन को प्रेम, करुणा और उग्रता से भिगोकर कुटुम्बियों के असह्य व्यवहार से उत्पन्न मन के विकार को भी निकालते रहते हैं। जाँत के गीतों में एक एक शब्द स्त्री-सदाचार की नींव की एक एक ईंट। है।[1] इन गीतों में करुण रस की बड़ी ही मार्मिक अभिव्यंजना हुई है। इनमें कहीं तो वियोगिनी की कराह और कहीं वंध्या की असीम मनोवेदना का सागर उमड़ता है। और कहीं सास और ननद उसके जीवन को नरक से भी अधिक भयावह बनाती हुई दिखाई पड़ती हैं। स्त्री जीवन की इस करुणा के अतिरिक्त रामायण तथा महाभारत के कथानक को लेकर भी अनेक गीतों की रचना हुई है। चूंकि इन गीतों का स्त्रियों से ही सम्बन्ध है, वे ही इसे गाती हैं। अतः रामायण और महाभारत के करुण प्रसंगों को ही इनमें अधिक स्थान मिला है। सीता वनवास तथा सीताहरण तो चक्की गीतों का मानो अनिवार्य विषय है। कनौजी की एक कहावत में 'सीताहरण' विषय चक्की का श्रेष्ठ विषय माना गया है। इस विषय के अन्तर्गत पीसने वाली की पात्रता और वह कौनसा अनाज पीस रही है इस पर भी ध्यान रखा जाता है। साधारण अनाज पीसने वाली का 'सीताहरण' गाना हास्यास्पद ही है।[2]

'सीताहरण' प्रसंग को एक गीत में इस प्रकार दिखाया गया है—

रथ तो रोंक्त जात जटाई।
विप्र रूप धरि आयो रावन भिच्छा मांगन जाई।
कुटरी बाहर भई जानकी रथ प लेत चढ़ाई
रथ तो रोंक्त जात जटाई।
को को बिटिया काह नाव है कउन लिए है आई।
सुजबस निरपति राजा जसरथ तिन के सुत रघुराई
रथ तो रोंक्त जात जटाई।
तिनको तिरिया नाव जानकी हरे निसाचर जाई।
अस कोई होय रांवा दल मे हम को लेय छुड़ाई।
रथ तो रोंक्त जात जटाई।
अगिन बान जब छोड़ो रावन पख गिरे हहराई।

---

१ रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी (ग्रामगीत), नवनीत प्रकाशन लिमिटेड, बम्बई, १९५५, पृ० ४५५

२ पिसवे को कोदों औ गइवे को सीताहरन'

तुलसीदास[1] भजो भगवाना राम ते बलिभी जाई ।
रघु तो गोकुल जात अराई ।

एक गीत में सीता को लक्ष्मण वन में ले जाते हैं। वहाँ वे कहती हैं प्यास लगती है और वे लक्ष्मण से कहती हैं कि या तो मुझे पानी पिलाओ या मार डालो। लक्ष्मण पानी लेने जाते हैं और सीता सो जाती है। लक्ष्मण अवसर पाकर पानी के दोने को वृक्ष में लटका देते हैं और स्वयं अयोध्या लौट जाते हैं। जागने पर पानी की बूँद सीता के मुख स्तन पर गिरती है और वे जाग जाती हैं। लक्ष्मण को अनुपस्थित देख कर कहती हैं कि यदि वे बतला कर जाते तो मैं उन्हें अमर होने का आशीर्वाद देती। एक अन्य गीत में पुत्री तथा माता के वार्तालाप द्वारा स्त्री के दुःख का वर्णन किया गया है। पुत्री को ससुराल में स्वप्न में भी सुख प्राप्त नहीं होता। वन की लकड़ी की भाँति उसका शरीर घुन रहा है। जिस प्रकार पीपल का पत्ता कंपित होता रहता है उसी प्रकार भय के कारण वह भी सदैव काँपती रहती है—

कहिन राम जी की प्रीति लग न साईं जानन माइ ।
बाप को माया जनम दयो है बाप भाइ को दयो बिरान
लग न साईं जानन माइ ।
दुसन तिसन को जनम दयो है सुख को दयो बिरान
लग न साईं जानन माइ ।
सुख तो माया मोरा सपनेऊ नाँह दुख ते सूखा सरीर ।
लग न साईं जानन माइ ।
जइस बन की लकड़ी घुनत है तइस घुन सरीर
लग न साईं जानन माइ ।
जइसे पिपर को पता डुलत है तइस डुल सरीर
लग न साईं जानन माइ ।

यदि समग्र रूप से कनौजी के गीतों को देखा जाय तो यह निष्कर्ष निकलता है कि जीवन के लगभग सभी मार्मिक पहलुओं पर इनके द्वारा प्रकाश पड़ता है। इन गीतों में निश्चित कथात्मकता भी रहती है। कथानक तो नाममात्र का ही रहता है पर उनमें अभिव्यक्त भाव उसी प्रकार होता है जैसे मिट्टी के गमले में फूल। कनौजी के गीतों में दुःख और वेदना की अभिव्यक्ति होती है, वे करुणा को मूर्त करते हैं। कोमलता, मधुरता और चिरस्थायिनी प्रभविष्णुता—इनके गुण हैं। भावों की सरल धारा प्रवाहित होती है, दुरूहता तो इनमें भाषा पर भी नहीं मिलती है।

१ लोकगीतों में प्रायः तुलसी, सूर, कबीर आदि की छाप लगी होती है पर वास्तव में ये गीत इन कवियों के नहीं हैं।

'रोंपा' तथा 'निरवाही' के गीत

'रोंपा' तथा निराई' में समय गाए जाने वाले गीतों तथा चक्की के गीतों तथा अन्य कार्य करते समय गाए जाने वाले गीतों में भेदक रेखा नहीं खींची जा सकती। इन गीतों में भी वियोगिनी के दुःख तथा सास-ननद आदि द्वारा दिए गए कष्टों का वर्णन मिलता है। चक्की के गीतों की अपेक्षा इन गीतों में करुणा का भाव कम मिलता है। कुछ गीतों में हास्य व्यंग्य भी मिल जाता है। सम्भवतः इसका कारण यह है कि चक्की के गीत गाने में या तो स्त्री अकेली होती है और अधिक से अधिक दो। इससे इन गीतों में गम्भीरता अधिक मिलती है। रोंपा तथा निराई में पूरा समूह का समूह रहता है। अतः सामूहिक प्रवृत्ति में उल्लास का आ जाना स्वाभाविक ही है। इन गीतों में सीता वनवास के स्थान पर सीता विवाह को अधिक वर्णित किया जाता है। नीचे दिए गए गीत में सीता विवाह का संक्षेप में वर्णन कर दिया गया है—

कि एजी मांझ मांझ रुखवा हैं ठाड़े इक महुआ इक आम।
कि एजी उइतर ठाड़े दुइ परदेसिया इक लछिमन इक राम।
कि एजी सिउ की पूजन चलीं सितलदे सब सखियन के संग।
कि एजी को हो तुम कोई बाट बटोही की रे परदेसी लोग।
कि एजी ना हम हैं कोई बाट बटोही ना रे परदेसी लोग।
कि एजी हम दोऊ राम लछिमन राजा जसरथ जू के पूत।
कि एजी जो मन सुनवा जनक मगाओ धनिस धरो बनवाय।
कि एजी कोई धनिस को टोरि डिलाव सीता को ब्याहि लइ जाय।
कि एजी धनिस को टारन राम जो चले हैं लछिमन ठाड़े मुसक्याय।
कि एजी कोमल गात उमरि भइया थोरी बहियां मुरुकि ना जाय।
कि एजी बहिया रे बहियां जनि करो लछिमन फिरि पाछ पछिताव।
कि एजी धनिस टोरि जो खंड करे हैं सीता को ब्याहे लए जाय।
कि एजी सीता को ब्याहि अवध पुर लइ गए घर घर बजत बधाइ।
कि एजी मांझ मांझ रुखवा हैं ठाड़े इक महुआ इक आम।

इस गीत से ज्ञात होता है कि लोक कवि ने इसमें रामायण की प्रचलित कथा से पर्याप्त अन्तर रखा है। जनकवाटिका के स्थान पर आम और महुआ का वर्णन है। लोक जीवन के सुपरिचित वृक्ष आम और महुआ का उल्लेख स्वाभाविक ही है। अतः पुष्पवाटिका का वर्णन न करके लोक कवि ने आम महुआ को स्थान दिया है। शिव के धनुष के स्थान पर इसमें जनक ने सोने का धनुष बनवाया है। रामायण आदि ग्रंथों में लक्ष्मण राम के भक्त और सेवक के रूप में दिखाए गए हैं पर इसमें लक्ष्मण राम की शक्ति पर आस्था नहीं रखते और उनका परिहास भी करते हैं।

ग्राम काज के गीतों में मध्यकालीन तथा आधुनिक जीवन के चित्र भी मिल जाते हैं। लोकगीतों में कृषक जीवन को ही श्रेष्ठ बताया गया है। कहावतों में भी यही भाव मिलता है कि खेती उत्तम है और नौकरी निकृष्ट होती है। एक संवादात्मक गीत म किसान तथा सिपाही अपने अपने जीवन को अच्छा बतलाते हैं पर अन्त म सिपाही को हार खानी पड़ती है और वह सोचता है कि किसान ही हम स अच्छा है। गीत इस प्रकार है—

गुरु अपने को सुमिरि के धर सरसुती ध्यान।
जब उठि बोले सिपाही तब का कहै किसान।
देस बिदेस हम ना जांय
अपने घर उपजो जब धान
सब कुनबा मिलि बइठे खांय।
सांझ सकारे खींच चना।
ऊपर नार डुलाव घना।
इत्ती बात किसान ने कही
तब सिपाही प रही न गई।
खांयें कपूर लौंग को जोड़ा।
पहिरें सज गजौना घोरा।
घी लाई और नहि पायी।
तुम्हरे खेत की टोर ऊख।
बहैं धरामैं तुम्हरे मूड़।
धक्कन मारि आग लइ चल।
इत्ती बात सिपाही ने कही तब किसान प सही न गई।
जागा बेंचि के पइसा दीन।
तब ताजा तुरकी तुम लीन
जागा हारि बिसाही हाट।
कबहू न सोवो परि के खाट।
लरिका बार देख सपना।
को घर रह कि समिगार अपना।
मेहर अन्त तुम अन्त रहौ।
रोय धोय दोनों परि रहौ।
इत्ती बात किसान ने कही तब सिपाही प सही न गई।
माघौ मास बड़ बड़ सर्दी।
आधी रात परावौ वर्दी।

है। एक विशेष जाति के गीतों का एक विशेष राग भी होता है। नीचे कुछ जातियों के गीत दिए जाते हैं।

अहीरों के गीत

कनौजी प्रदेश के अहीर जखई (यक्ष) के उपासक होते हैं। कृष्ण, राम, शिव आदि की उपासना तो साथ ही साथ वे करते ही हैं। अन्य देवी देवताओं से सम्बद्ध गीतों पर तो उनका एकाधिकार नहीं होता पर 'जखई' के जसों पर उनका पूरा अधिकार होता है। जसों में 'जगता', 'महकू' के अनेक युद्धों की प्रशंसा उनकी उपासना तथा उनके गुणों का वर्णन रहता है। जगता और महकू जखई के सहायक हैं और वे प्रेत योनिक माने जाते हैं। एक 'जस' में बतलाया गया है कि जखई लौंग का लोभी है।[1] अतः उसी को लेकर वह प्रसन्न होता है। इन जसों में लघु कथानक भी रहते हैं। एक गीत में वर्णित है कि एक बार जगता ने 'लगर खगिया' से यज्ञ के लिए दही मँगाया। उसने दही के नाम पर एक छींट नहीं दी। उससे कहा गया कि उसकी भैंसें मार दी जाएंगी, वह फिर भी नहीं डरी। जगता ने कलुआ 'महरूपा' 'सुल्तान', 'मुल्तान तथा बलात'—पाँच वीरों को 'खगिया की दाढ़ में पीड़ा उत्पन्न करने के लिए भेजा। दाढ़ में पीड़ा उत्पन्न होते ही खगिया' बहुगियों में दही लम्बा कर लाती है और पैरों पड़ती है। जगता दही स्वीकार नहीं करता पर पीड़ा को हर लेता है। जगता की क्षमाशीलता का वर्णन निम्नांकित पंक्तियों में किया गया है—

> बहिंगी दहिआ भराय चली जगता से जाय लगर खगिया।
> जगता नेक हरौ दाढ़ की पीर बहिंगिनि दहिआ लेव उठाय।
> जा तौ ससुरो अब दहिआ छिन्क ना लेव।
> नटिनो क बीरा हरो डाढ़ की पीर।

जसों के अतिरिक्त अहीरों का एक बड़ा प्रसिद्ध गीत बिरहा भी है। पीछे बिरहों की ऋतु गीतों में चर्चा की जा चुकी है। पर ये बिरहे इन बिरहों से भिन्न हैं। इनमें अहीर एक मूर्ख के रूप में चित्रित किया जाता है।

अहीरों के एक बिरहे में दिखाया गया है कि अहीर-पत्नी के यौवन उभर रहे हैं। वह अपनी पत्नी से बहुत प्रेम करता है अतः उसके स्तनों को वह फोड़े समझता है। फोड़े की दवा वह जानता है। अतः नीम की छाल पीस कर उन पर लगाता है। इस बिरहे में अहीर की मूर्खता का परिचय दिया गया है—

> गोरी के जुबना हुमसन लागे जसे हिरनिया के सींग।
> मूरिख जाने कुछु रोग उठत है घिसि के लगावे नीम।

---

१ बिलमि रहा रे लउग को लोभी बिलमि रहो।

एक अहीर अपने बिरहे में वर्णन करता है कि राम को अपनी ससुराल से बहुत प्रेम है। अतः लक्ष्मण के रखवाली करने पर भी चुपके से वे अपनी ससुराल को नीबू भेज देते हैं जिससे कि वहाँ उनकी तरकारी बने। उन्हें इस बात का भी पता नहीं है कि नीबू की तरकारी बनती भी है या नहीं। बिरहा इस प्रकार है—

राम की बगिया सीता की फुलवारी।
लछिमन दिउरा कर रहे रखवारी।
फरि रहे निबुआ लटकि रहीं डारी।
टोरि टोरि पठामें सासुरारी।
उन निबुअन की बन तरकारी।

चमारों के गीत

कन्नौजी में चमारों में भी काफी गीत मिलते हैं। इन गीतों को जिस राग से गाया जाता है उसे चमरा राग कहा जाता है ये लोग नाचकर भी गीत गाते हैं। नाचने वाला स्त्री वेश धारण करता है। ये लोग गाते समय निशान, ढोलक और 'बेला" बजाते हैं। इनके गीतों में समाज की खरी आलोचना भी होती है। चमारों का एक मनोरंजक और रहस्यपूर्ण गीत यह है—

मारे डारें कटीली तोरी अँखियाँ।
बिरमा बस कीने विस्नु बस कीने।
रिसि मुनि बस कीने बजाय के बसुरियाँ।
काम बस कीनो क्रोध बस कीनो।
हरि बस कीनो लगाय के छतियाँ।

चमारों के गीतों में राम के मर्म को जानने को महत्वपूर्ण बतलाया जाता है। सांसारिक ऐश्वर्य राम भक्ति के बिना व्यर्थ है। कुछ गीतों में सामाजिक मर्यादाओं और पारिवारिक उत्तरदायित्व के निर्वाह करने पर जोर दिया जाता है। एक गीत में बतलाया गया है कि एक विशिष्ट क्षेत्र में ही वस्तु और व्यक्ति का महत्व होता है। यदि उस उद्देश्य की पूर्ति न हुई तो फिर उन वस्तुओं और व्यक्तियों का न होना ही श्रेयस्कर है—

राम ना जानो तो और जाने का होय।
फूल तो वहै जो राम जी को सोहै।
नाहीं तो बेला लगाए ते का होय।
कपड़ा तो ओई जो राम जी को सोहै।
नाहीं तो तेहमा रगाए ते का होय।

पूत तो वहै जो बाप की लेव ।
नाहीं कपून के जनमें ते का होय ।
तिरिया तो वहै जो दोनों कुल तार ।
नाहीं तो माया की बोम भए का होय ।

कनौजी प्रदेश के चमार कबीर पंथ से बहुत प्रभावित हैं। अतः कबीर की बानी में ब्राह्मण वर्ग की 'खबर' लेते हैं। ब्राह्मणों के भोजन करने की पद्धति की लिए गए गीत में खरी आलोचना की गई है—

पंडित मुनि बड़े ग्यानी छानि के पियें पानी ।
कोई सूत की बने जनेऊ कोई की पाग बनाई ।
धोती पहिरि के रोटी खायें पाग में छूति बनाई ।

कहारों के गीत

कहारों के गीत मुख्यतया शृंगार-प्रधान होते हैं। ये लोग वर-वधू की पालकी के ढोने का काम करते हैं और साथ ही नवविवाहिता वधू के हृदय को अपनी हास्य एवं शृंगारमयी वाणी से गुदगुदाते भी जाते हैं। इनके गीतों को 'कहरवा' कहा जाता है।

विवाह के लिए हर्षित वर को तथा पति के घर जाने के लिए उत्सुक वधू की शृंगारप्रियता को लक्ष्य करके तथा उसमें हास्य का समावेश करके ये लोग वर वधू को प्रसन्न करने के लिए गीत गाते हुए पालकी ढोते हैं। एक गीत में पति के निठुल्लेपन पर परिहास किया गया है—

अगुरी पकरि दुलहा लइ गईं बजरिया ।
पूछें नगरिया के लोग हो राम ।
की तुमरो लागे भइया भतिजवा
की तुमरो लहुरो भतिजवा हो राम ।
नाहीं लागे हमरो भइया भतिजवा
नाहीं लागे लहुरो देवरवा हो राम ।
पुरबुली कमाई ते दुलहा पाओ छोटो लरिका हो राम
जहां देखे लाई गट्टा तहां मचले हो राम ।
टोपी के बदले दुलहा लाई लाई गट्टा हो राम ।
सरसों को तेल बहुत करा उबटन
मलि मलि के बड़ो करि लीबो हो राम ।
दिनवा दिनवा में गिनो बलम छोटे लरिका हो राम ।

कहारों के कुछ गीतों में उपदेशात्मकता भी मिलती है—

गोरी बना मुकता पालो जी गोरी बना ने । टेक ।

बड़ो जतन करि पिंजरा बनाओ
तामें घने घने तार लगाए जी ।१।
सुवा के कागत पिंजरा बनाय दओ
मेरो पंछी ना कहू उड़ि जाय जी ।२।
रात दिन उइके टहल करति है
मेरो पंछी न दुखियाय जी ।३।
मेवा लवाये दिन राति पढ़ाव ताय
दिओ वाई से चित लगाय जी ।४।
एक दिना सो गाफिल हुई गई,
तोता निकरि गओ कर हाय जी ।५।
खिरकी न खुली कोई तार न टूटो ।
जाने निकरि गओ कौन राह जी ।६।
बाग बगीचा बन खण्ड सब ढूंढ़े,
कहू पंछी मिल न राम जी ।७।
प्यारे सुअना को कहू पता न पाओ,
गोरी बैठि रही झकमारि जी ।८।
याही विधि तेरे तन की दसा होय
लेउ जीवन हरि-गुन गाय जी ।९।

इस गीत में यह आशय प्रकट किया गया है कि जिस प्रकार पिंजड़े से सुआ निकल जाता है उसी प्रकार एक दिन शरीर से प्राण निकल जाएगे और फिर पछताना पड़ेगा । अत प्राणी को भगवान् की ओर अविलम्ब ध्यान लगा देना चाहिए ।

धोबियों के गीत

अहीरो, चमारो और कहारो की भांति ही धोबियो में भी कुछ जातीय गीत होते हैं । यो तो उपयुक्त सारी जातियां नाच नाच कर भी गाती है पर 'दारू पीने के बाद धोबी का नृत्य तो दर्शकों के मन को मुग्ध कर लेता है । उस नृत्य की झोक मे धोबी जिस राग से गीत अलापता है, इसे 'धोबियाराग' कहते है । इनके द्वारा गाए जाने वाले गीतो का अन्य अन्य जातियो के गीतो से भेद यह है कि इनमे धोबी के कौटुम्बिक जीवन का ही विशेष रूप से वर्णन मिलता है । कहीं तो धोबी अपनी धोबिन से परिहास करता है और कहीं अपने काम की कठिनाइयों तथा परिस्थितियो को दृष्टि कोण में रख कर वह अपने लिए चार पत्नियो की आवश्यकता का अनुभव करता है—

धोबी कों चहिए चारि मेहरिया छियो राम छियो ।
इक कूट इक पीस औ इक रोटी बनाव छियो राम छियो ।
एक लिआव रोटी औ पानी इक कपड़ा फीच छियो राम छियो ।

इन गीतों को धोबी कपड़ा धोते समय भी गाता है। अतः बीच-बीच में विश्राम लेने के लिए वह 'छियो राम छियो' कहता है। परिश्रम करते समय जोर से सांस निकाल देने से कुछ विश्राम-सा मिल जाता है।

अहीरों के 'बिरहे' तो होते ही हैं, कुछ धोबियों के 'बिरहे' भी होते हैं। इनमें विरह का वर्णन तो होता है पर ये धोबी के विविध कामों से ही सम्बद्ध होकर चलते हैं। धोबी के 'बिरहों' की सृष्टि कपड़ा धोते समय ही होती है। इस सम्बन्ध में स्वयं धोबी का ही मत है कि—

ना बिरहन की खेती पाती ना बिरहन को बीज।
जाई पेट से बिरहा उपजै गाऊं दिना औ रात।
छियो राम छियो।

कनौजी लोकगीतों के इस विवेचन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि कनौजी क्षेत्र में प्राप्त होने वाले गीतों में पर्याप्त विविधता मिलती है। केवल संस्कार गीतों को देखा जाए तो उनमें संस्कार से सम्बद्ध छोटे-छोटे लोकाचारों के लिए भी स्वतंत्र गीतों की लोकमेधा द्वारा सृष्टि हुई है। संस्कारों के लिए तो यह गीत साहित्य धर्म शास्त्र जैसा कार्य करता है। संस्कारों के अतिरिक्त पर्वों त्योहारों, व्रतों और मेलों के लिए गीत प्राप्त होते हैं। कृषक-जीवन से सम्बद्ध कोई ऐसा कार्य नहीं होता जिससे सम्बद्ध गीतों का अभाव हो। गीतों की विविधता इतने तक ही सीमित नहीं है—प्रत्येक वर्ग और जाति के लिए भी कुछ विशिष्ट गीत होते हैं। एक ओर तो युवती, प्रौढ़ा और वृद्धाओं में प्रचलित कुछ गीत हैं तो दूसरी ओर बालिकाओं के लिए खेलों से सम्बद्ध गीत हैं। पुरुषों के लिए तो पृथक रूप से गीत होते ही हैं, बालकों के लिए भी विशिष्ट प्रकार के गीत उपलब्ध होते हैं। एक ओर यदि चमारों के कुछ गीत हैं तो दूसरी ओर अन्य जातियों के लिए।

लोकगीतों के इन प्रकारों में विविधता ही नहीं है वरन् अत्यधिक प्रचुर मात्रा में भी ये पाए जाते हैं। यह प्रदेश लोकगीतों का तो अक्षयकोष ही है। संकलन कर्त्ता में यदि धैर्य और अध्यवसाय हो तो वह हजारों की संख्या में इस प्रदेश से लोकगीतों को प्राप्त कर सकता है।

कनौजी लोकगीतों का साहित्यिक मूल्यांकन

साहित्य दर्पणकार विश्वनाथ ने रसात्मक वाक्य को काव्य की संज्ञा दी है। इस परिभाषा से लोक-गीत काव्य की कसौटी पर खरे उतरते हैं, क्योंकि गीत कभी न छीजने वाले रस के सोते होते हैं। पाश्चात्य कवि वर्ड्सवर्थ कविता की परिभाषा करते हुए कहते हैं कि कविता बलपूर्ण भावों की अपने-आप उमड़ने वाली उमंग है। वस्तुतः देखा जाय तो वर्ड्सवर्थ की परिभाषा लोक-गीतों के लिए ही उपयुक्त हो सकती है। शिष्ट-काव्य में अपने आप उमड़ने वाली उमंग कहाँ मिल सकती है? लोक

गीतों में स्वाभाविकता सबसे बड़ा गुण होता है, अतः वह उच्च कोटि की कविता की श्रेणी में आ जाते हैं। शिष्टकाव्य में आनन्द और रस को कुछ शिक्षित लोग ही प्राप्त कर सकते हैं, पर लोक गीतों का रस और आनन्द शिक्षित और अशिक्षित दोनों के लिए सुलभ रहता है।

काव्य का मूल्यांकन करते समय दो दृष्टिकोणों से विचार किया जाता है। पहला दृष्टिकोण है भाव पक्ष का और दूसरा कलापक्ष का। कनौजी लोकगीतों पर भी इसी क्रम से विचार किया जायेगा।

कनौजी लोक गीतों में भाव-पक्ष

भावपक्ष के अन्तर्गत रसपरिपाक और भाव सौन्दर्य आता है। आगे इसी क्रम से विचार किया जा रहा है।

रस-परिपाक

कनौजी लोक-गीतों में शृंगार और करुण रस की प्रधानता है। वीर तथा वात्सल्य के भी उदाहरण मिलते हैं परन्तु वीभत्स, रौद्र और भयानक रसों का नितान्त अभाव है। स्थायी भाव जब विभाव, अनुभाव और संचारी भाव के संयोग[1] से परिपक्वावस्था को प्राप्त होता है तो उसे रस कहते हैं। गीतों में रस परिपाक पर इसी दृष्टि से विचार किया जाएगा।

शृंगार रस

शृंगार के दोनों पक्ष—संयोग और विप्रलम्भ का गीतों में वर्णन मिलता है। शृंगार के वियोग पक्ष की अभिव्यक्ति में अधिकांश कवियों ने अपने को रमा दिया है। लोकगीतों में भी विरह का सूक्ष्म से सूक्ष्म तथा हृदय ग्राही वर्णन प्रचुरता से मिलता है, बारहमासा का विषय केवल विरह वर्णन ही होता है। प्रत्येक मास में विरहिणी की दशा का दिग्दर्शन इसमें कराया जाता है। इन विरह वर्णनों में सुपरिचित उद्दीपन लिए जाते हैं। विप्रलम्भ का एक उदाहरण देखिए

'फागुन मास ऋतु लागी री सजनी सब सखि होरी खेलें।
हमरे तो कन्त बिदेस में छाये हम होरी कइसे खेलें॥'

सखियां होली खेल रही हैं, यह देखकर पत्नी को पति की याद आ जाती है। इसमें नायिका पति के साथ होली खेलना चाहती है, अतः यही 'रति' स्थायीभाव हुआ। नायक आलम्बन और नायिका आश्रय हुई सखियों का होली खेलना और फागुन का महीना ये उद्दीपन हुए। पति को याद करना स्मृति संचारी हुआ। यह

---

१ विभावानुभावव्यभिचारसंयोगाद्रसनिष्पत्ति—नाट्य शास्त्र।

कहना कि 'हम दोनों चले गये' अनुभाव हुआ। अतः यहाँ रस की पूर्ण निष्पत्ति हो गई।

वियोग पक्ष का एक और उदाहरण प्रस्तुत किया जाता है—

को है दुलहा रामा अमवा लुभाने को गए रहा भुलाय।
पथ में रसुइया लए हम पन्टौं हेरी मैं टकटक राह।
दुलहिन रनिया न अमवा लुभाने ना गए रहा भुलाय।
बाबा के बगिआ कोयल इक बोल कोयल सबद सुन टाढ़े।
चिठिया लिखि इक पठई दुलहिन दोनों कायलिया के हाथ।
धागी दर बोल न बोला मरी कायल प्रभु मोर जीमन को टाढ़े।
चिठिया एक लिखि पठई कायलिया दोनों दुलहिन के हाथ।
मोरी अइगी बोला बोलो कायल तब न टूटा बिलमाय।'

नायक अनायास होकर पथ से बाग में चला जाता है और कोयल की कूक सुन कर वहीं रम जाता है। नायक के लिए नायिका भोजन लिए एकटक राह देख रही है। उसे मालूम होता है कि कोयल ने उसके पति को बिलमा लिया है। कोयल के बोल को अपने और नायक के बीच की बाधा समझ कर कोयल से वह प्रार्थना करती है कि कुछ देर के लिए वह न बोले। इस गीत में नायिका की आकुल प्रतीक्षा 'रति' स्थायी भाव है। नायक आलम्बन और नायिका आश्रय है। बाग में विलम्ब उद्दीपन और एकटक राह देखना अनुभाव है। कोयल की बोली से नायक बिलम जाता है अतः उसे आशंकाजनित चिन्ता होती है। यह चिन्ता संचारी भाव हुआ। अतः यहाँ शृंगार रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई।

गीतों में विरह का उत्तम ही विशद वर्णन हुआ है पर यदि सब गीतों में रस निष्पत्ति के सहायक सभी अंगों को देखा जाय तो हमें प्रायः निराश ही होना पड़ता है। हाँ यह बात अवश्य है कि शास्त्रीय दृष्टि से ये गीत चाहे खरे न उतरें पर श्रोता को तो ये रस में सराबोर कर ही देते हैं। इन गीतों में बिहारी के समान ऊहात्मक वर्णन नहीं मिलते[1] पर स्वाभाविकता का सर्वत्र ही साम्राज्य रहता है।

करुण रस

कनौजी गीतों में करुणा की धारा सतत प्रवाहित होती है। स्त्रियों के गीतों में तो करुणा का सागर ही उँड़ेल दिया गया है। करुण रस के गीतों के अतिरिक्त शृंगार, वात्सल्य और वीर आदि रसों के गीतों में भी करुणा किसी-न-किसी रूप में

१ 'इत आवत चलि जात उत चली छ सातक हाथ।
चढ़ी हिंडोरे सी रहै लगी उसासन साथ॥ —'बिहारी सतसई'

अवश्य मिलती है। इससे भवभूति की प्रसिद्ध उक्ति, एक करुण रस ही निमित्त भेद से पृथक-पृथक परिवर्तित रूपा मे आश्रय लेता है,¹, पूण रूप से चरिताथ होती है। करुण रस का एक अत्यन्त प्रसिद्ध अन्तर्प्रान्तीय गीत हैं। इसमें उल्लेख आता है कि रानी कौशल्या राम की खजडी की खाल के लिए हिरन को मरवाती है। हिरनी रानी से प्राथना करती है कि उसे खाल दे दी जावे, जिसे कि पेड पर टांग कर वह देखे और मन को समझावे कि हिरन अभी जीवित है। अन्त में खाल की खजडी बजती है और उसके बजने पर हिरनी के मम पर आघात होता है। वह बेचारी अन्दर ही अन्दर तडपती है

'जब जब बाज खजडिया सबद सुनि सनक हो।
हिरनी दउरि ढकुलिआ के तरे हिरना को बिसूर हो।'

यहाँ हिरन आलम्बन और हिरनी आश्रय है। खजडी का शब्द उद्दीपन और बिसूरना अनुभाव है। पति का याद आना 'स्मृति' सचारी है। अत यहाँ करुण रस की पूण निष्पत्ति हुई। इस गीत का स्थायीभाव शोक वियोग जन्य न होकर इष्ट-नाश जन्य है।

एक गीत में स्त्री का पति मर गया है, न तो मायके में और न ससुराल मे ही कोई आश्रय देने वाला है। अत वह अपने दुःख की अभिव्यक्ति करती है—

'बिगरी प्रभु नाथ तुम्हारे बिन हमरी।
नइहर में जो बिरना होते उनहू की करती आस।
ससुरे में जो दिउरा होते उनहू की करती आस।'

इस गीत मे प्रिय की मत्यु के कारण 'शोक' स्थायीभाव है। 'मृतक-पति' आलम्बन तथा 'विधवा आश्रय है। 'आश्रयहीनता' उद्दीपन तथा दुःख की अभिव्यक्ति करना अनुभाव है। इस अवस्था मे अपने दाम्पत्य जीवन की याद आना 'स्मृति' सचारी है। अत यहां करुण रस की पूण निष्पत्ति हुई।

वीर रस

पुरुषो के अनेक गीत हैं जिनमे वीर रस की अपूव छटा देखने को मिलती है। वीर रस से युक्त गीतों म आल्हा सवप्रमुख है। आल्हा वीर रस से सराबोर होता है। इसकी एक एक पक्ति कायरों के हृदय मे भी उत्साह भर देती है। कभी-कभी तो ऐसा तक सुना गया है कि आल्हा के युद्ध को सुनते सुनते ग्रामीणों मे इतना उत्साह उत्पन्न हो जाता है कि वे एक दूसरे से लडाई कर बैठते हैं। इस कथन की

१ 'एको रस करुण एव निमित्तभेदाद् भिन्न पृथक् पृथगिवाश्रयते विवर्तान्'—
—भवभूति उत्तररामचरित।

सरसता म न देह है, परन्तु इससे यह तो अवश्य निकाला ही जा सकता है कि आल्हा में वीर रस की बहुत ही अधिकता पाती है। आल्हा गीत का कुछ अंश यहां दिया जाता है—

जइसे भिड़हा भेंगन पइठ, जइसे सिंह बिडारै गाय।
तइसेइ ऊदल है दल म धमरी धौंस दिखाउत जाय।
बहुत ता हाथी पग भाजे, हाथिन के खिड़की में बड़े जाय
खलबल परि गई है दल म सगरी गदड़ी दई मचाय।'

इस गीत म ऊदल के मारन का उत्साह स्थायी भाव है। शत्रु आलम्बन तथा 'ऊदल' आश्रय है। गज घन गरज तथा रण भेरी' उद्दीपन हैं। तलवार चलाना और धमरी देना अनुभाव हैं। शत्रुओं का मारन म हर्ष और गर्व का अनुभव करना संचारी है। अतः यहां वीर रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है।

आल्हा गीतों के अतिरिक्त रामायण और महाभारत आदि के कथानकों को लेकर रचे हुए गीतों म भी वीर रस मिलता है। नीचे महाभारत का एक गीत दिया जाता है—

'ताल बजाय भिम्मा ठहलानो।
ताल बजाय भिम्मा ठहलानो बादर सो घहरानो।
पूनो चन्द भयो जब दूना तब कीचक मन में घबड़ानो।
भिम्मा जोधा यों उठि धायो भेद का तुमने जानो।
दोनों मल्ल भरत जइसे हाथी भुज गहि भिम्मा तानो।
पकरो पछारि मारो धरनी में कढ़त प्रान कीचक ठहलानो।

इस गीत म भीम का कीचक को मारन का उत्साह स्थायी भाव, 'कीचक आलम्बन तथा 'भीम आश्रय है। ललकार तथा कीचक को देखना उद्दीपन है। 'ताल ठोंकना भुजाओं म उठा लेना और यह कहना कि तेरा काल निकट आ गया है अनुभाव है। मारन म हर्ष और गर्व का होना संचारी है। अतः इसम भी वीर रस की पूर्ण निष्पत्ति हुई है।

शान्त रस

वृद्ध और वृद्धाएं कुछ ऐसे भी गीत गाती हैं जिनमें संसार की निःसारता और अनित्यता का उल्लेख होता है। प्राणी की मृत्यु का विषय लेकर भी शान्त रस की धारा बहाई जाती है। मृत्यु ऐसी घटना है जो शोक करने का विषय होने के साथ ही मनुष्य को एक ऐसा अवसर देती है जिसम वह जीवन की क्षणभंगुरता समझ कर भगवान में अपना मन अनुरक्त करे। इसी आशय का गीत देखिए—

अब तुम लइयो कठिन धाना प्रानी।
पांच जने मिलि लये चले हैं ऊपर चहर तानी।

घोनि लकड़िग्रां फूकि दओ है जरन लगी जइसे होरी ।
हाड जर जइसे चन्दन लकड़ी बार जर जइसे घास ।
देह जरत है कचन ग्रइसो ग्राउत बास कुवास ।'

इस गीत म मत्यु के कारण निर्वेद स्थायी भाव है। मृत्यु से ससार की अनित्यता का ज्ञान होना आलम्बन तथा देखने वाला 'आश्रय' है। हड्डियों, बालों और मास का जलना उद्दीपन तथा निर्वेद और मति आदि सचारी हैं। अत इसम शान्त रस की पूर्ण अभिव्यक्ति हुई है। देवी के गीतो मे भी शान्त रस मिलता है।

उपयुक्त रसो के अतिरिक्त वात्सल्य और हास्य रस के भी कुछ स्थल मिलते हैं। विदाई के गीतो मे वात्सल्य और करुण का मणि काचन सयोग हुआ है।

भाव-सौंदय

अशिक्षित ग्रामीण जनता सरल स्वभाव की होती है। उसके हृदय म छल-छद्म पास भी नही फटकता। जिस प्रकार ग्रामीण लोग व्यवहार म छल छद्म रहित हैं, उसी प्रकार अपनी वाणी की सगीतमय अभिव्यक्ति मे भी। इन गीतो म न तो अलकार का चमत्कार होता है और न उक्ति वचित्र्य ही। पर हा उनम एक ऐसी वस्तु होती है जो शिष्ट काव्य म भी दुलभ होती है वह है उत्कृष्ट भावो की सहज अभिव्यक्ति। ये गीत भाव सौ दय के विशाल भण्डार हैं। गीत की एक एक पक्ति और एक एक शब्द म भावो की अनुपम छटा देखने को मिलती है। इनमे रस व्यजना करने वाले अनेको भाव भरे पडे हैं। यहा पर कुछ भावात्मक स्थलो के उदाहरण दिए जाएग।

स्त्री का पति परदेश चला जाता है। वह उसके विरह से अत्यन्त व्याकुल है। उसका दिन रात स्मरण करती है तथा उसके पास सदेश भेजना चाहती है, पर कोई सदेश वाहक नहीं मिलता। वर्षा ऋतु के आने पर काले मेघ छा गए हैं। मेघो को देख कर वियोग उद्दीप्त होता है और वह मेघो से कहती है—

ग्ररे ग्ररे कारी बदरिग्रा तुमहिं मोरी बदरी हो।
बदरी जाय बरसो उइ देस जहा पिया छाये हैं हो।'

उसे विश्वास है कि जिस प्रकार मेघो को देखकर मुझे पति की स्मति आ गई है और विरह उद्दीप्त हो गया ह उसी प्रकार मेघो को बरसते हुए देख कर पति को भी मेरी स्मति हो आएगी और वह वहा से मुझसे मिलने के लिए चल देगा। 'बरसने' से दूसरा भाव यह भी हो सकता है कि बूदों के बरसने से पति को नायिका के विरह म गिरते हुए आसुओं का भी स्मरण हो आयेगा। 'अरे' शब्द के दुहराने से हृदय की व्याकुलता और 'तुमहि मोरि बदरी' कहने से नायिका की असहायता प्रकट होती है। उसकी बात सुनने को यदि कोई है तो केवल 'बदरी' है। स्त्री के विश्वास के अनुसार

पति को 'दवरी' के स्मरण से स्मरण हो आता है और वह मिलने के लिए आतुर होकर घर आता है। स्त्री द्वार बंद किए हुए सो रही है। पति ने द्वार खटखटाया। स्त्री ने पूछा कि तुम कुत्ते हो या बिल्ले अथवा ससुर के पहरेदार? पति उत्तर देता है—

'ना हम कुत्ता बिलइया ना ससुर पहरुआ हो।
पति हम तोई सुन्दर सजनवां बन्दा बसाये हो।'

कजरी सुनाई देने से अपूर्व आतुरता है। कालिदास ने भी वर्णन किया है कि मेघ, परदेशी लोगों को भी अपनी पत्नियों की वेणी खोलने के लिए उत्सुक है घर जाने को प्रेरणा देता है।[1] इस गीत में स्वाभाविकता के साथ बड़ी ही प्रभावोत्पादक बात कह दी गई है।

घिरी घटाओं को देख कर एक विरहिणी को अपने पति की याद आ जाती और वह वियोग दुःख से दुःखी होकर आँसुओं को रोकने में असमर्थ हो जाती है। घूँघट के अन्दर ही उसके आँसू टपक पड़ते हैं। इसी भाव का एक गीत इस प्रकार है—

उठत बदरिया उनई रसिया
फटन बरसि गए मेह
घूँघट बदरिया उनई रसिया
गालन बरसि गए मेह।

जिस प्रकार घटाओं के घिरने पर वर्षा होती है, उसी प्रकार वधू के घूँघट निकाल लेने पर स्वनिश्चय आँसू बरस पड़ते हैं। इसमें यह भाव भी छिपा है कि लज्जाशील वधू अपने दुःख को किसी पर प्रकट भी नहीं होने देना चाहती। जब आँसू उमड़ आते हैं तो उन्हें छिपाने के हेतु वह घूँघट डाल लेती है। संस्कृत काव्य में कवियों का ध्यान स्त्री की शोभा के वर्णन में अवगुंठन तक गया तो है पर वे यह नहीं जान सके कि स्त्री का अवगुंठन केवल लज्जा और शोभा की वस्तु ही नहीं होता वरन् दुःख में उसकी वेदना के लिए आश्रय भी होता है। अवगुंठन में सौन्दर्य का छिपना तो सभी जानते हैं पर उसमें कितनी वेदना भी छिपी रह सकती है इसे गीतों की स्त्रियाँ ही समझ पाई हैं।[2]

एक स्त्री का पति परदेश जाने को तैयार है। पत्नी रोक रही है पर वह नहीं मानता। वह पति से वियुक्त रहने की कल्पना भी नहीं कर पाती। उसकी

---

१ या वृन्दानि त्वरयति पथि श्राम्यतां प्रोषितानाम्।
मन्द्रस्निग्धैर्ध्वनिभिरबलावेणिमोक्षोत्सुकानि ॥ मेघदूत

मकिशोरी श्रीवास्तव—हिन्दी लोक गीत, पृ० ५८

मझ म नही आता कि विरह के दिन कसे कटेंगे ? पति जब किसी प्रकार नही नता तो वह कहती है—

'जुगित बताए जाव कउन विध रहिऐं।
जो कहुँ सजन बहुत दिनन में अइओ।
अपनी सुधि मोरी बहिआ प लिखाए जइओ।'

और अत में वह कहती है कि—

'जो कहुँ सजन बहुत दिनन में अइओ।
बहिआ पकरि हमें गगा में धंकिआए जइओ।'

वियोग दु ख उसे इतना असह्य जान पडता है कि अपने पति द्वारा गगा म डुबोई जाकर प्राण देना उसे स्वीकार है परन्तु वियुक्ता होकर रहने को वह तैयार नहीं। जीवित रहकर तो उसे वियोग का कष्ट सहना पडेगा पर मर कर वह सारे कष्टो से छुटकारा पा जावेगी। कवियो ने वियोगिनियों के आसुओ से नदियो मे बाढ आ जाने की जो बात लिखी है वह अलकार और उक्तिवचित्र्य की दृष्टि से भले ही चमत्कारपूर्ण हो पर श्रोताओ के हृदय पर उसका कोई प्रभाव नही पडता। पर इस गीत म 'धकिआए' शब्द म बडी प्रभावोत्पादक व्यजना छिपी है।

किसी स्त्री का पति परदेश चला गया है। वह वियोग से दु खी होकर कह रही है कि हे सजन, तुम परदेश चले गए हो। न जाने कब लौटोगे ? तुम्हारे जाने के दिन गिनते गिनते मेरी अगुलिया घिस गइ पर तुम न आए। तुम्हारी प्रतीक्षा मे आँसू की धारा बह रही है। मैं तुम्हें ढूढने को एक वन मग ई दूसरे म गई और तीसरे वन म एक गाय चराने वाला मिला। मैंने उससे पूछा कि गाय चराने वाले भइया, तुमने मेरे पति को कही देखा है ?—

'गए सजन परदेश लउटिओ कितने दिन में।
हम तक तुम्हारो राह सजन कितने दिन में।
गिनत गिनत दिन अगुरीं घिसि गइ हो सजना।
दुर ननन असुआ हेरत रहिआ।
इक बन नाघी दुसर बन नाघी पहुँचि तिसरे बन में।
मिलो है गाय चरइआ हो सजन तिसरे बन मे।
गोह चरइआ तुम मोरे भइआ।
देखो तो नाइ सजनवा मेरो एई बन में।'

पति से वियुक्ता स्त्री के दिन किस प्रकार कटते हैं और बाद म वह पति के खोजन के लिए किस प्रकार घर से निकल पडती है इसका बडा ही स्वाभाविक चित्रण ऊपर के गीत म किया गया है।

विरह के बड़े ही मनोरम चित्र बारहमासा में मिलते हैं। जब कि हर महीने में अन्य लोग तो आनन्द और उल्लास पूर्वक रहते हैं पर वियोगिनी का समय दुःख ही दुःख में है। एक बारहमासे में विरहिणी को पति के वियोग के कारण विभिन्न ऋतुओं में उद्दीप्त हो जाने से बड़ा ही काम सताता है। वह इन्द्र को खबर ही मथुरा भेज देना चाहती है जिससे कि कन्हैया घर लौट आवें। वह 'असाढ़' मास में भेज रही है। अतः यह मास तो मथुरा जाने में ही बीत जावेगा। अन्य महीनों का एक एक करके वर्णन नीचे किया जाता है—

इक तो मोरी बारी वयसिया दूजे बलम परदेस।
तीजे मेघ झिमाझिम बरसे गाउन अधिक अंदेस।

पहली बात तो यह है कि इस स्त्री की बारी वयसिया अर्थात् नव यौवना है। दूसरे पति परदेश में है। इस वियोग को कैसे सहन किया जाय? इतना ही नहीं मेघ झमाझम बरस कर उद्दीपन का काम करते हैं। इसी कारण उसको सावन मास में असीम विरह वेदना होती है।

'भादों गहन भयानक रजनी कारि तिन पै अंधरिया रात।
दामिन दमक कौंधा लपक सिजिया में जियरा घबराय।'

भादों की अंधेरी रात बड़ी भयावनी होती है और फिर विशेषकर स्त्रियों के लिए जो स्वभाव से ही भीरु होती हैं। इस अंधेरी के डर से जब पति घर होता है तो उसकी गोद में छिपकर वे रक्षित होती हैं। पर वियोगिनी का पति परदेश गया है अब उसकी रातें कैसे बीतें? अंधेरी के अतिरिक्त जब बिजली चमकती है तब तो सेज पर अकेली स्त्री का हृदय और भी अधिक धड़कता है।

'क्वाँर मास माहि अधिक लागि रहा पिया न आए मोर।
जो घर होत बारे कन्हइया रजनी में हिन्द लगाय।

क्वाँर मास स्त्री को बहुत बड़ा लग रहा है अर्थात् काटे नहीं कटता। यदि उसका युवा पति घर पर होता तो उसे वह सुन्दर अपने पास रखती जिससे यह भी न प्रतीत होता कि दिन कब व्यतीत हो गए।

कातिक की पूरनमासी को सखि गंग हनान को जाय।
हाथ जोरि कें बुड़की मार जनम सुफल हुइ जाय।'

कातिक मास की पूर्णिमा को सब सखियाँ गंगा स्नान को जाती हैं और हाथ जोड़ कर डुबकी लगाती हैं जिससे उनका जन्म सफल हो जाता है। परन्तु विरहिणी का पति घर पर नहीं है। वह गंगा स्नान करने कैसे जावे और अपना जन्म कैसे सफल बनावे?

'अगहन गोरी ठाडी अगनवा घर घर उपज धान।
चकई चकवा केहिल करत हैं जल सागर मझधार।'

अगहन मास म गोरी अकेली आगन मे खडी है। घर घर म धान पदा हुआ है। उसका पति बाहर है। अत उसके घर म कसे धान पदा होता? इस प्रकार उसे खाने पीने का भो अभाव है। आर्थिक उत्तरदायित्व पति का होता है, पर पति स स्त्री वियुक्त है। चकवी और चकवे मिलकर केलि करत है। अत केलि देखकर विरहिणी के भाव उद्दीप्त हो जाते हैं और इस समय अपने पति का अभाव उसे बहुत ही खटकता है।

'पूस मास पुसवलिया फूलीं सुअना बालो काट।
जो घर होत बारे कन्हइआ सुअना को डरते मारि।'

पूस मास मे पुसवलियो को सुए काट रहे हैं और खेती को हानि पहुँचा रहे हैं। यदि पति होता तो सुओ को मार कर खेती की रक्षा करता क्योकि किसाना की खेती ही तो सम्पत्ति है।

'महा मास में जाडो परत है हम प रहो न जाय।
जाय कहो बारे बलमा ते तुम बिन जाडो न जाय।'

माघ मास मे सबसे अधिक जाडा होता है। इस जाडे म विरहिणी को पति क अभाव खटकता है। वह अनुभव करती है कि यदि पति होता तो उसके साथ शयन करके जाडा मिटाया जा सकता था।

'फागुन मास म उडत अबीरा सब सखि होरी खिलन को जाय।
जो घर होत बारे कन्हइया डरतो मै अतर गुलाब।'

फागुन मास बडा ही मादक होता है। इसम प्रकृति उद्दीपन का काम करती है। पुष्प, लताएँ, वक्ष, वायु सभी उन्मादकारी प्रतीत होते हैं और मनुष्य मत्त होकर होली खेलते हैं। इस वातावरण म भला विरहिणी को पति की याद क्या न सताए? सब सखियो को होली खलते देख कर उसकी लालसा जाग्रत हो जाती है। वह कहने लगती है कि मेरे भी प्रियतम घर होते तो उनके साथ अतर और गुलाब से होली खेलती। ध्यान देने की यह बात है कि सब सखियाँ तो रग और अबीर से ही खेलती हैं परन्तु वह इन वस्तुओ से होली न खेल कर 'अतर' और गुलाब जसे बहुमूल्य पदार्थों का प्रयोग करती। पति का होना उसके लिए बडे ही हर्ष का अवसर होता। 'अतर' गुलाब को उस पर डाल कर अपनी भावना को अभिव्यक्ति करती।

चत मास मे फूलो चमेली भँउरा रहे लुभाय।
आवौ न भउरा लोटी-पोटी जिय की तपन बुझाय।'

चत मास म चमेली की मादक सुगन्ध पर भ्रमर लुब्ध हो रहे हैं। विरहिणी भी भ्रमर से कहती है कि वह आकर उसके हृदय की तपन बुझावे। वास्तव मे भ्रमर

यहाँ पति का प्रतीक है। यौवन में युवक स्त्री कमलिनी के समान है और यौवन पर मँडराने वाले भ्रमर के समान पति के आगमन की वह कामना करती है। यदि पति आ गया तो उसके आलिंगन पाश में बद्ध होकर वह अपने हृदय की विरहाग्नि को ठंडा कर लेती।

असाढ़ मास में बगया बदउलीं बगुला पटाय के बगला दबौली।
बगना झुलाय के निरखौं अब्रउं अजुअन आय पियार।'

असाढ़ मास में बागों में झूलन छाय जाते हैं। कुछ दिन बाद वर्षा ऋतु आ जाती है। स्त्री का भी अपने बगिया के झूला की चिन्ता है। उसका पति बाहर है, नहीं तो वह बाग में उसका झूला डलवाता और उसमें निहरियाँ भी डलवाती। इन निहरियों में जो सुन्दर समीर आता उससे वह अनोखा आनन्द मनाती। बिचारी पति के बिना यह सब मन मार कर ही रह जाती है।

जेठ मास की बरी दुपहरी हमसे चला न जाय।
जाय कहो उन बार बलमा से बहियाँ पकरि ले जाय।

वह पति के वियोग में इतनी दुखी है कि अन्त में स्वयं पति के पास जाने को सन्नद्ध हो जाती है। पर जेठ मास में बहुत कड़ी धूप होती है और भूतल तवा सा जलता है। ऐसी स्थिति में वह कोमलांगी पति तक किस प्रकार पहुँचे, उसका जाना असम्भव सा ही है। अतः वह कहती है कि हे उद्धव। पति से जाकर कहना कि कड़ी दुपहरी में तुम्हारी स्त्री से चला नहीं जाता। तुम स्वयं उसका हाथ पकड़ कर उसे सहारा देकर ले आओ।

इसी प्रकार अन्य बारहमासों में भी विरहिणी की दशा का मार्मिक और हृदय द्रावक चित्रण हुआ है। इनमें नारी के जीवन का बड़ा ही सूक्ष्म निरीक्षण मिलता है।

संयोग शृंगार के भी इन गीतों में बड़े ही मनोरम चित्र मिल जाते हैं। एक पति अपनी स्त्री से बहुत अधिक प्रेम करता है। स्त्री को इस बात का गर्व भी है कि वह इतनी अधिक सौभाग्यशालिनी है। प्रेमाधिक्य के कारण पति अपनी पत्नी को हर एक काम करने से रोकता है। स्त्री असमंजस में पड़ जाती है वह क्या करे ?

ज्डिरा कहैं भउजी पानी भरि लायो सइयाँ कहैं गिरि परिओ दुलारी।
ज्डिरा कहैं भउजी रोटी बनाय देव सइयाँ कहैं जरि जइओ दुलारी।
ज्डिरा कहैं भउजी बीरा लगाय देव सइआँ कहैं गड़ि जइए सुपारी।'

पति इससे भी अधिक अपनी पत्नी के लिए और क्या करे ? एक गीत में उल्लेख आता है[1] कि पति परदेश चला गया है और उसकी पत्नी को सास ननद नाना प्रकार के कष्ट देती हैं। एक दिन जब वह कुँआ झूलने जाती है तो उसे देवर मार डालता

---

1 कनउजी लोकगीत, पृ० २६६

उससे अनेक बहाने किए जाते हैं कि वह भूला भूलने गई, चक्की पीसने गई, मायके है। पति परदेश से लौट कर आता है और पत्नी के विषय में पूछता है। पहले तो गई, पर अंत में वास्तविक बात ज्ञात हो जाती है। पति भोजन नहीं करता और तब माता कहती है कि पुत्र शोक किस बात का है? तुम्हारा दूसरा विवाह करवा दूंगी। इस पर वह उत्तर देता है— चन्द्र सूर्यों सम मेरी सहधर्मिणी छूट गई है तथा राजाओं जैसी ससुराल। हे माता! जोगिया के कपड़े लाओ मैं अपनी प्रिया के वियोग में जोगी हो जाऊंगा।[1] गीत की अन्तिम पंक्तियां इस प्रकार हैं—

'माया जो माई बहिनिया माई' करो पूता जिउनार।
काहे को पूता मोरे अनमन धनमन दुसरो मैं रचिहौं बियाह।
चंदा सुरिज अइसी धनिया जो छूटी रजा छूटि ससुरार।
लावो न माया मोरी जुगिया के कपड़ा हम जुगिया हुइ जांय।'

हिरनी के करुण गीत का उल्लेख 'रस परिपाक' के प्रसंग में हो चुका है। ऐसे ही हृदय द्रावक चित्र सीता के प्रसंग में मिलते हैं। वनवास में उन्हें बहुत दुःख हुआ और साथ ही साथ उनका इतना अपमान हुआ कि लोक गीतकार राम के प्रति मर्यादा का उल्लंघन कर गए हैं। शिष्ट काव्य के कवियों की भाँति वे आदर्शवादी भी तो नहीं हैं। वे यथार्थ का चित्रण करते हैं। एक गीत में उल्लेख आता है कि राम ने सीता के पास पाती[1] भेजी कि हृदय का क्रोध छोड़कर अब लौट आओ। सीता ने इसके उत्तर में कहा कि यदि मर कर भी तुम दूसरा अवतार लोगे तो भी मैं अयोध्या न लौटूंगी।' सीता का यह क्रोध अस्वाभाविक नहीं है क्योंकि उन जैसी सती का अविश्वास करके 'अग्नि-परीक्षा' लेना घोर अपमान है। इतना ही नहीं, गर्भावस्था में उन्हें घर से निकाल कर वनवास दे देने से भी अधिक क्या कोई क्रूर कार्य हो सकता है? लोक कवि की वाणी यथार्थ की अभिव्यक्ति करती है। भवभूति जैसे आदर्शवादी कवि की भांति वह सीता से यह नहीं कहलवाता कि अपने ही पूर्व जन्म के पापों के परिणाम से यह कष्ट मुझे भोगना पड़ा है। दूसरे गीत में वसिष्ठ सीता से लौट चलने के लिए कहते हैं। तब सीता उत्तर देती है कि 'राम ने अविश्वास करके मेरी अग्नि परीक्षा ली और इतने से ही वे सन्तुष्ट न हुए उन्होंने गर्भावस्था में भी मुझे भयंकर वन में छोड़वा दिया। मेरे हृदय को कैसे सन्तोष हो सकता है?' एक अन्य गीत में लव कुश आकर माता को सदेश देते हैं—

खोलौ न माता चनन किवरिया आए हैं पुरिख तुम्हार।'

यह समाचार पाकर सीता को बड़ा ही क्लेश होता है। वह आत्मग्लानि, लज्जा और क्रोध के कारण राम को देखना भी नहीं चाहतीं, क्योंकि अविश्वास और दुःख

१ एहो सीता ने पाती लिखि पठई राम जी बाचें।
एहो मरि के धरो औतार अजुध्या नहिं आमें।

दन की एक सीमा भी होती है। राम ने उसका उल्लंघन कर दिया। इसी कारण सीता के लिए पृथ्वी ही एकमात्र आश्रय होती है—

'फाटौ न धरती हम समियामें जिवन दए बनवास।
फाटी है धरती सीता समियानी बन भए कुस काँस।'

बन्ध्या स्त्रियों के प्रसंग को लेकर गीतों में करुणा की धूट कूट कर भर गया है। बेचारी बन्ध्या ने कोई अपराध नहीं किया है। उसका कष्ट और अपमान एक गीत में माता की तरह देता है। बन्ध्या से सास बाँझ और ननद 'निरबंसिन' कहती है। जिसकी वह परिणीता है उसने घर से बाहर निकाल दिया। इस अपमान से दुःखी होकर वह नागिन के बिल के पास जाती है। नागिन फिर कर कुशल-कुशल पूछती है। स्त्री जाति से उसे सहानुभूति होनी ही चाहिए। बन्ध्या को भी इसकी आशा थी नहीं तो वह नाग के बिल के पास क्या जाती? पर नागिन की सहानुभूति उसी समय तक रहती है जब तक उसे यह नहीं पता होता कि यह स्त्री बन्ध्या है। ज्यों ही वह इस तथ्य को जानती है, तुरन्त कह उठती है कि हमारे तो छोटे-छोटे बच्चे हैं वह भी बाँझ हो जावेंगे। अतः हम नहीं डस सकती। बेचारी बन्ध्या निराश होकर बाघिन के पास भी जाती है और उसी प्रकार निराश होती है। स्त्री को माता से बड़ी बड़ी आशाएं होती हैं और विशेष रूप से माता से और भी अधिक। परन्तु जब वह माता के पास आश्रय के लिए जाती है तो माता—जो स्नेह और वात्सल्य की अवतार होती है, यह कहकर कि उसकी बहू बाँझिन हो जाएगी लौटा देती है।[1] इस प्रकार बन्ध्या होना एक अभिशाप है, इसको लेकर गीतकार ने करुणा को उद्वेलित किया है।

विधवा की स्थिति के भी गीत पर्याप्त मात्रा में मिलते हैं। एक गीत में भाई ने बहनोई को मार डाला। निराश्रित बहन बन्ध्या के अभिशाप में कांप जाती है। उसका सुहाग सिन्दूर पुंछ जाता है और बिलखती हुई वह कहती है कि 'मैं हरी और पीली चूड़ियाँ किसके लिए पहनूं और किस पर शृंगार करूं। मेरा मटन्या की कौन ढांकेगा तथा मेरे जीवन का निर्वाह कैसे होगा।'[2] इन दो ही पंक्तियों में विधवा की दीन तथा असहाय अवस्था का चित्रण हो जाता है।

बहन भाई के स्नेह के भी अनेकों चित्र गीतों में उपलब्ध हैं। बहन भाई का स्नेह बड़ा ही दिव्य होता है और जिसपर भारत में तो यह सर्वोत्तम स्थान रखता है। भाई इतना अधिक प्रेम करता है कि उसकी बहन को कोई थोड़ा भी कष्ट देता उसे असह्य हो जाता है। कुछ गीतों में तो बहन के कष्ट को स्मरण कर वह बहनोई तक का वध करने को तैयार हो जाता है। इस प्रमाधिक्य में बहन का अग्र रूप से

1 अनिल—कनउजी लोकगीत, पृ० २६८
2 वही, पृ० २६८

हानि ही होती है, पर भाई को इसके लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता। यदि वह अपने बहनोई को आवेश में आकर मार भी डालता है तो इसका कारण तो उसका बहन के प्रति अतिशय प्रेम ही है। विदा के समय भी भाई पालकी का डंडा पकड़ लेता है और बहन को जाने से रोकता है।

बहन को भी भाई से किसी भी प्रकार कम प्रेम नहीं है। उसे जब भी कोई कष्ट होता है तो अपने भाई के आने की राह देखती है अथवा बुला ले जाने का संदेश भेजती है। अपने दुःख का निवेदन सदा वह भाई से ही करती है। बहन के यहाँ भाई आता है और उसकी दशा को देख कर उसका हृदय द्रवित हो जाता है। माता से जाकर वह बहन की दुर्दशा बतलाता है—

'बहिनी को हाल मा पूछौ माया बहिनी को हाल सुनि छतिया फट जो।
बहिनी के कपड़ा अइसे बने हैं जइसे चौका को पुतना जो।
बहिनी के केस माया अइसे बने हैं जइसे कुकुर की पूँछ जो।
बहिनी के असुआ अइसे गिरत हैं जइसे मघा के बूँद जो।'

माता सुनकर कहती है—

'अइसे दुख पूता तुम्हरी बहिनी को रोउत बहिन कइसे ढोलो जो।'

विदा के गीतों में सबसे अधिक हृदय द्रावक भाव मिलते हैं। जिस पुत्री को माता पिता ने जन्म दिया, पाल पोस कर बड़ा किया, वही पराई हो जाती है। ऐसे अवसर पर हृदय का वात्सल्य और करुणा की चरम सीमा तक पहुँचना स्वाभाविक ही है। विदा के अवसर पर कहीं माता रोती है तो कहीं पिता आँसू बहाता है। गीतों में ऐसा भी उल्लेख आता है कि इस समय भाभी को कुछ भी दुःख नहीं होता—

'माया के रोए छतिया फटत है बदुलो के रोए सागर पार।
भइआ के रोए पटुका भिजत है भउजी ठाडी मुसक्याय।'

एक गीत में कन्या की जन्म से लेकर विदा तक की करुण कथा का वर्णन मिलता है। कन्या बेचारी के भाग्य में ही विदेश लिखा है—

'हमको लिखो है विदेस रे सुनु बाबुल मोरे।
जा दिन भइआ तुम्हरो जलम भयो है भईहै सोने केरो राति रे। सुनु०
आजिउ बेस बाबुलि बेस ददुलि बेस चौपार रे। सुनु०
जा दिन भइआ मेरो जलम भयो है भई है बजुर केरो राति रे। सुनु०
आजिउ रोमैं बाबुलि रोमैं भजुलि रोमैं चौपार रे। सुनु०
तुमको तौ बीरन मोर दादुलि चौपरिआ हमको तौ लिखो है विदेस रे। सुनु०
हम तौ ददुलि मोरे गगरी पलना डुबत डुबत डुबि जाय रे। सुनु०
हम तौ ददुलि मोरे सार की गइयाँ जहाँ बाँधो तहँ जाय रे। सुनु०

हम तो छूटि गए अगन बिछुआ सुनन बिना उड़ि जाय रे । सुन०
अंगिया के छोरि तिरगो पनरिया बाँधन गयउ भुलाय रे । सुन०
मन को बासो मोति को लिलरा ... बहुत को ... रे । सुन०
सहर बिरन भागी दरगो पवरिया हमरी बहिनि भी जाय रे । सुन०
पिता घर बाबुल घर को मोह घर ... अधिकार रे । सुन०
घर भरो बाला अगन तिवाला नगर सुत भरो भार रे । सुन०

मृत्यु गीतों में मनुष्य की आकांक्षाओं ... का वर्णन होता, परन्तु ... आदि प्रसंगों को लेकर निर्वेद भाव का सुन्दर वर्णन ... जाता है । नीचे एक गीत देखिए—

जागी अजुध्या आन नगरी ।
बाई ... काल ... दिया ... ।
... मत में ... हुनी छूटि गई था ... नो बात ।
घर बाहर ... बनाय दय ... बाप ... ।
उठो ... बताइ दय ... सारी बात ।
घर ... प्राण ... सब ... बार दशारा ॥
... हाथ ... गया ... जाओ ... दिखाई ... ।
... ढुकरा ... को ... छाँडि ... ।
... मैं न ... गुनि ... ।
हाथ पकरि बारी तिरिया ... जो ... सारा ... न मिलाएगी ।
... मिलि ... उठाई ... ।
... मार उतारी ... दमो ... ।
... जइगी ... ।
... जारि ... ।
... राम ... समतहुँगे ... तिरिया विचारी ।
... तिरिया ... तिन ... तिन ... ।

इस गीत में ... है कि जब ... द्वारा ... जाती है तो परिवार ... व्यवहार ... कोई भी नहीं ... और मृत्यु हो जाती है । मनुष्य का शरीर ... किया जाता है ... की लकड़ी के समान भस्म हो जाता है । इससे ध्वनित किया जाता है कि प्रभु से ध्यान लगाना मनुष्य के लिए आवश्यक है । यही अन्तिम गति है । इसमें निर्वेद भाव का बड़ा ... चित्रण है ।

ऊपर अनेक प्रसंगों को लेकर जो विवेचन किया है, उससे स्पष्ट हो जाता है कि कनौजी लोकगीतों में भाव-साम्य पर्याप्त मात्रा में पाया जाता है । इसका एक

स्वादन वही कर सकता है जो अपने को भी उन भावा मे डुबा दे—

तन्त्री नाद कवित्त रस सरस राग रति रग ।
अनबूडे बूडे तिरे जे बूडे सब अग ।"[1]

प्रकृति चित्रण

साहित्य म प्रकृति का वणन मुख्यतया दो रूपो म मिलता है—

१ आलम्बन विभाव के रूप म ।

२ उद्दीपन विभाव के रूप म ।

सस्कृत साहित्य म तो प्रकृति का आलम्बन और उद्दीपन दोना रूपों म वणन किया गया है पर हिन्दी कविया ने विशेषकर प्रकृति को नायक और नायिका म भावा को उद्दीप्त करते हुए दिखाया है । पति के वियोग म पत्नी को चन्द्रिका म उष्णता और कोयल की मधुर वाणी म कटुता प्रतीत होती है । कनौजी लोक गीतो मे भी प्रकृति का उद्दीपन रूप ही मिलता है । एक विरहिणी को रात्रि मे पपीहे की पी पी सुनकर अपने पति की याद आ जाती है जिसके कारण वह सो नही पाती । वह क्रुद्ध होकर कहती है कि—

'जाय डारौं पपिहरे मारि सो जाने मोरी नींदा हरी ।
बागा मे बोलो बगीचा मै बोलो मालिनिया व बोलो है बोल
सो जाने मोरी नींदा हरी ।'

लोक का शरीर और मन ग्रामा मे बसता है । ये लोग हरे भरे खेतो म काम करते हैं । आम और नीम के वक्षो के नीचे बठ कर खेत की रखवाली करते हैं । तेल के लिए महुआ के गुल्दे इकट्ठे करते हैं । घर के आगन म बोई गई 'जम्हिरिया' का लहराना उन्हे आनन्द देता है । कही आधी रात को फूलने वाला बेला आगन के वातावरण को मादक बनाता है तो कही महुआ, चमेली, गुलाब आदि के फूल देवताओ पर चढाने के लिए खिले दिखाई पडते हैं । तुलसी का पौधा तो ग्रामीणा का चिर-साथी ही है । वनस्पतियो के अतिरिक्त पक्षी भी अपने कलरव से ग्रामीणो का कुछ कम मनोरजन नही करते ।(मोर सावन के बादलो को देखकर नाच उठता है तो कोयल कुहू कुहू का मधुर शब्द करती है । कही मुडेर पर बठा कौआ काँव काँव करता हुआ प्रिय के आगमन की सूचना देता है ।)अत हम देखते हैं कि लोक गीतो म प्रकृति वणन इसी रूप मे हुआ है । इनमे किसी प्राकृतिक दृश्य का साङ्गोपाङ्ग वणन नही मिलता, अपितु साधारण उल्लेखमात्र ही होता है । भिन्न भिन्न प्रसगो मे विभिन्न पुष्पो, फलो, वक्षो, पक्षियो, नदियो तथा ऋतुओ का नामोल्लेख मात्र हुआ है, विस्तत वणन का तो नितान्त ही अभाव है ।

---

१ बिहारी बिहारी सतसई ।

कनौजी गीतों में मैदानी भाग के होने से सदैव हिम से ढकी हुई पर्वतों की चोटियाँ और कन्दराओं या गिरिगुहाओं से निकलती नदी के ही दृश्य दिखाई पड़ते हैं। इसका कारण इस प्रदेश में पर्वतों का अभाव होना ही है। जो ग्रामीण अपने क्षेत्र को छोड़कर कभी बाहर नहीं जाता, वह पर्वत और उसके दृश्यों का वर्णन कर भी कैसे? अतः इस महान विभूति पर्वत वर्णन का इन गीतों में अभाव है। फिर भी वृक्ष, पक्षी, पुष्प, वायु आदि का सान्निध्य में प्रकृति प्रेम का पर्याप्त प्रमाण है।

इन गीतों में कहीं तो किसी आम, नीम या महुआ के नीचे खड़ी कोई स्त्री पति की प्रतीक्षा करती है, कहीं थका हुआ किसान किसी पेड़ की छाया में गाता है, कहीं आम बौरना और महुओं का टपकना विरहिणी के लिए उद्दीपन का काम करता है और कहीं उसका हृदय भय के कारण पीपल के पत्ते की तरह काँपता है। कहीं पर वर्णन मिलता है कि नदी के किनारे सुन्दर फुलवारी लगी है। वहाँ कृष्ण जी अपनी गायों को चरा रहे हैं। राधा कृष्ण को रोकती है कि तुम अपनी गायों को यहाँ से हटा ले जाओ नहीं तो वे गायें आम, अमरूद और जामुन के पेड़ खा डालेंगी। लोक-गीतों के संसार में लवंग का बगीचा भी घर के पास लगाया जाता है और स्त्रियाँ अपने पिता से प्रार्थना करती हैं कि वे लौंग के वृक्ष को कटवा कर पलंग बनवा दें जिससे कि वे अपने स्वामी के साथ सुगंधित पलंग पर सो सकें।

पुष्पों के सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है कि बिना कमल के तालाब की शोभा नहीं होती। बेल के फूल के गजरे[1] को किसके गले में डाला जाए? एक स्त्री को इसी बात की बड़ी चिन्ता है। चमेली, नौरंगिया, कचनार, दुपहरिया, केवड़ा आदि पुष्पों के नाम भी किसी न किसी प्रसंग में आए हैं।

(किसी गीत में कोयल कुहू कुहू करके विरहाग्नि प्रज्वलित करती है, किसी में कौवा पति के आगमन का संदेश देता है और पति के लिए विरहिणी का पत्र भी ले जाता है। कोई स्त्री परदेश जाते हुए पति को वन की कोयल बनकर संदेश सुनाने का वचन देती है। मोर, हंस, सारस, मैना और तोते के भी प्रसंग आए हैं।)

गीतों में 'पुरवइया' हवा का भी प्रचुर मात्रा में वर्णन मिलता है। पुरवइया के बहने से स्त्री सो जाती है और बेचारी को पति छोड़ कर चला जाता है।

सावन और बारहमासा में प्रकृति का बड़ा ही सुन्दर वर्णन मिलता है। इन गीतों में प्रकृति के उपादानों का केवल नामोल्लेख ही हुआ है। अतः उद्धरण देने की आवश्यकता नहीं समझी गई।

कला पक्ष

कनौजी लोक-गीतों के कला-पक्ष का अगले पृष्ठों में विवेचन किया जाएगा। इसके अन्तर्गत हम अलंकार, तुक, लय, छन्द विधान और भाषा पर क्रमशः विचार करेंगे।

---

[1] बेला फूलो आधीरात में गजरा कौके गरे डारौं।

अलंकार

काव्य की शोभा बढ़ाने वाले धर्मों को अलंकार कहते हैं।[1] जिस प्रकार नायिका को आभूषण पहना देने से उसका सौन्दर्य बढ़ जाता है उसी प्रकार अलंकारों से विभूषित काव्य भी अधिक सुन्दर हो जाता है। अलंकारों का प्रयोग जैसा कि ऊपर कहा गया है सौन्दर्य की वृद्धि के लिए किया जाता है परन्तु शिष्ट काव्य में अलंकार सम्प्रदाय के प्रभाव से कुछ कवि अलंकार के पीछे पड़ गए और उन्होंने अलंकार के बिना कविता के अस्तित्व में ही सन्देह प्रकट किया।[2] पर कनौजी लोकगीतों में अलंकार का प्रयोग बड़ी ही स्वाभाविकता के साथ हुआ है। इन गीतों में अलंकार अर्थबोध कराने और भाव गाम्भीर्य में सहायक सिद्ध हुए हैं।

लोक गीतों में अलंकार का प्रायः अभाव ही रहता है। त्रिपाठी जी ने तो कहा है कि इसमें अलंकार नहीं, केवल रस है।[3] इसका आशय यह है कि गीतों में अलंकार लाने का प्रयत्न नहीं किया जाता। परन्तु हमारे साधारण वार्तालाप में भी कभी-कभी किसी अलंकार का प्रयोग हो जाता है तो गीतों में यदि कुछ अलंकार आ भी जावें तो इसमें आश्चर्य की बात ही क्या है ?

कनौजी लोकगीतों में अलंकारों का विशेष विधान नहीं पाया जाता, परन्तु कहीं कहीं भावों के स्पष्टीकरण के लिए कुछ शब्दालंकार और अर्थालंकार दोनों ही आ गए हैं। शब्दालंकारों में अनुप्रास की ही अधिकता है और अर्थालंकारों में उपमा की। कहीं-कहीं रूपक और उत्प्रेक्षा अलंकार भी मिल जाते हैं।

अनुप्रास

इन गीतों में छेकानुप्रास और वृत्यनुप्रास ही पाए जाते हैं। नीचे कुछ प्रस्तुत उदाहरण दिए जाते हैं—

'काहे की सिल को सिलौटा तो काहे को लोढ़ा ललना।'

'कहा चढ़ि राजा रामचन्द्र आए कहा चढ़ि लछिमन भाई।'

'पानी पियत राजा हिरना मारो हिरनी दए असराफ।

प्रथम पंक्ति में स और ल द्वितीय पंक्ति में र और तृतीय पंक्ति में प की

---

१ काव्यशोभाकरान्धर्मानलंकारान्प्रचक्षते। —काव्यादर्श।

२ अंगीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलंकृती।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलंकृती॥ —जयदेव

३ रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी ग्रामगीत, पृ० ६६

समानता केवल एक बार हुई है। अतः इन तीनों में छेकानुप्रास हुआ। दूसरा उदाहरण देखिए—

'बिचारे बाप की बेटी न कहाय को ढूँढ़े वर को तिलक चढ़ाय।'

'पूत को बेसा सवाय सेर सतुआ ऊपर गुड़ की बटी।'

'माया अगार जनि कहिओ भइआ पेट मारि मरि जाय।'

प्रथम पंक्ति में ब द्वितीय पंक्ति में स और तृतीय में म की समानता दो बार हुई है। अतः तीनों में वृत्यनुप्रास हुआ।

उपमा

लोकगीतों में प्रस्तुत उपमा की विशेषता यह है कि इसमें एक विचित्र प्रकार की सादगी है, नवीनता और मौलिकता है, जो कृत्रिम कविताओं में देखने को नहीं मिलती।[1] शिष्ट-काव्य में अधिकांश उपमाएं परम्परा युक्त होने के कारण बासी सी प्रतीत होती हैं परन्तु इन गीतों की उपमाएं नवीनता लिए हुए हैं।

एक गीत में भाई बहन की हीन अवस्था को देखकर आया है और माता से कह रहा है—

'बहिनी के कपड़ा अइसे बने हैं जइसे चौका को पुतना जी।
बहिनी के केस अइस बने हैं जैसे कुकुर की पूंछ जी।
बहिनी के अंसुआ अइसे गिरत हैं जैसे मघा के बूंद जी।
बहिनी की पीठी माया अइसी बनी है जैसे धोबी को पाट जी।'

वस्त्र के वर्णन की चौके के पुतने से उपमा दी है। इससे यह अर्थ व्यंजित होता है कि उसके पास एक ही धोती है जिसे वह लगातार पहनती है और इसी कारण 'पुतने' के समान मैली हो गई है। केशों की उपमा कुत्ते की पूंछ से दी गई है जिससे प्रतीत होता है कि केशों में न तो तेल पड़ता है और न तो वे सवारे ही जाते हैं। आंसुओं की मघा के बूंदों से उपमा दी गई है क्योंकि उसे घोर कष्ट है और उस कष्ट के कारण बहुत अधिक रोने से बड़े बड़े आंसुओं का गिरना स्वाभाविक ही है। पीठ की उपमा धोबी के पाट से देने का यह अभिप्राय है कि उसको बहुत ही अधिक पीसा जाता है। यह सारे 'अप्रस्तुत' सुपरिचित ग्राम जीवन से लिए गए हैं। उपमा की सहायता से स्त्री के दुःख की पूर्ण व्यंजना कर दी गई है। यदि अलंकारों का प्रयोग न होता

1 डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, पृ० ४०४

तो सम्भवत इतना मार्मिक चित्रण न हो पाता। इसके अतिरिक्त ये उपमाएं बड़ी ही अपूर्व, अनूठी और मौलिक हैं।

उत्प्रेक्षा

कुछ उत्प्रेक्षाएं भी गीतों मे मिल जाती हैं—

'राम के माथे झलरिआ बहुत नीकी लाग।
मानो कमल को फूल भवर गुन-गुन कर।'

इसमे राम की अलकों का वर्णन किया गया है। राम के मस्तक पर अलकें ऐसी सुन्दर लगती है मानो कमल के फूल पर भ्रमर गुंजार करता हो। यहा 'उक्त विषयवस्तूत्प्रेक्षा' हुई।

रूपक

कनौजी लोक गीतों म रूपक अलकार भी पाया जाता है। कही कहा साग रूपक के उदाहरण भी मिल जाते हैं—

'साच सुकीरति गगरी पिरेम की रसरी हो।
सजना पनिया भरों झकझोरि माग भरि सेंदुर हो।'

स्त्री कहती है कि सत्य और सुकीर्ति रूपी घडा है। प्रेम रूपी रस्सी से मांग म सिंदूर लगाकर पानी भरूगी। अत यहा सांग रूपक हुआ।

श्लेष

सीधी सादी ग्रामीण जनता सामान्यतया दो अर्थों के शब्दो का प्रयोग नही करती और इसीलिए लोक गीतों म श्लेष का अभाव रहता है। परन्तु साधु सतों के सिद्धान्तों से प्रभावित होकर ईश्वर सम्बन्धी भावना की अभिव्यक्ति जहा पर हुई है वहा पर कही कही श्लेष का प्रयोग हुआ है। कबीरपथी चमारो के गीतों म श्लेष अलकार मिलता है।

अलकार विधान के इस विवेचन से हम ज्ञात होता है कि कनौजी गीतो मे उपमा के बड़े सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। अन्य अलकारो का बहुत कम प्रयोग हुआ है।

कनौजी लोकगीतो मे तुक और लय

तुक के प्रयोग से कविता के स्मरण रखने म सहायता मिलती है और वह श्रुति सुखद भी हो जाती है। इसलिए प्राचीन हिन्दी कवियों ने तुकान्त कविता ही लिखी है। तुक कविता का आवश्यक अग बन गया है और इसके हान से कविता

पद्धति अवश्य हो जाती है। आधुनिक कविता अतुकान्त रूप में भी हुई है, किन्तु मुख्य प्रवृत्ति तुकान्त कविता की ओर अब भी है।

कनौजी लोक गीत तुकान्त होते हैं परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि उनमें तुक के नियमों का पूर्ण रूप से निर्वाह किया जाता है। कभी कभी एक ही गीत के कुछ स्थलों में तो तुक रहती है और कुछ में उसका अभाव होता है। निम्नांकित गीत अतुकान्त रूप का उदाहरण है—

जो तुम बाबा मेरी करम की हुइयो साउन बीरन पठइयो।'
बाप तुम्हारे बेटी देस के राजा आऊँ न बसत परदेस।
जेठो बिरन गयो बनिजों को लोभी नित उठि जाय ससुरारि।
लहुरो बिरन बटो निपट अनारो नहिं नार दबि दिराय।'

ऊपर चारों पंक्तियों में तुक नहीं है परन्तु इसी गीत में आगे चलकर तुक का निर्वाह भी किया गया है—

'मैया अगाउ जनि कहियो बिरना पर मारि मरि जाय।
भउजी अगाउ जनि कहियो बिरना आऊ नइहर कहूँ जाय।
बहिनी अगाउ जनि कहियो बिरना आऊ ससुरे नहिं जाय।

इन तीनों पंक्तियों में केवल तुक ही नहीं मिलता वरन उसी शब्द तक को दुहरा दिया गया है। बारहमासा में तुक का अच्छा निर्वाह हुआ है। बारहमासा के कुछ उदाहरण निम्नलिखित हैं जिनमें तुक की छटा देखने को मिलती है—

'क्वार तो मारी बारी उमगिया दूज चलन परदेस।
तीज मेघ झिमझिम बरसे साउन अधिक अदेस।'

—

चैत मास में फूली चमेली भउरा रहे लुभाय।
आवो न भउरा लोटोपाटो जिअरा की तपन बुझाय।'

कनौजी गीतों में प्राय: हो रामा, ऐ री, जो हो रे आदि प्राय: प्रत्येक पंक्ति के अन्त में पाये जाते हैं। ये टेक पद हैं जो तुक का काम करते हैं। इनका गीतों के अर्थ से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। कहीं कहीं तो पूरी पंक्ति ही दोहरा दी जाती है—

'ऊँचो चउतरा चौखुटो हो जहाँ बेटी खेलन जाय।
हो राधा भामिन बनवारी की।
खेलत-खेलत भोर भओ है बाबुल के दरबार।
हो राधा भामिन बनवारी की।'

य तुक नितान्त स्वाभाविक हैं। इनके जुटाने के लिए किसी प्रकार का प्रयास नही किया गया है।

वस्तुत लय ही इन गीतो का मोहक गुण है। जब स्त्रियां सामूहिक रूप से किसी गीत को लय पूर्वक गाने लगती हैं तो वे लय के अनुसार ह्रस्व को दीर्घ और दीर्घ को ह्रस्व कर लेती हैं। जहा किसी पक्ति म कुछ अक्षर कम होते हैं वहा कुछ अक्षरों का जोड कर पूरा कर लेती हैं। उनके मधुर कठों से गीतो का लय युक्त उच्चारण उस गीत मे रस सचार कर देता है। 'शुष्क' मे शुष्क गीतों मे लय के द्वारा स्त्रिया रस की गागर उडेल देती हैं। यहा तो केवल इतना ही बतलाया जा सकता है कि गीतो मे लय का बहुत अधिक महत्व है। लय की अनुभूति तो सुनने पर ही हो सकती है। गीतों मे लय की विशेषता के कारण ही प० रामनरेश त्रिपाठी ने कहा है कि—'इनम छ द नही केवल लय है।'[1]

कनौजी लोक गीतों मे छन्द विधान

प० रामनरेश त्रिपाठी के कथन 'इनम छन्द नही केवल लय है का अथ यह नहीं लगाया जा सकता कि लोक गीतो म छ दो का नितान्त अभाव होता है। वस्तुत बात यह है कि लोक गीतो की रचना अशिक्षित तथा छन्द शास्त्र से अनभिज्ञ लोगो के द्वारा होती है और इसी कारण इनमे मात्रा और गणो के नियमों का कडाई से पालन नहीं किया जाता। त्रिपाठी जी के कथन का केवल यही आशय है कि लोक गीतो मे छदो पर आग्रह नही किया जाता।

'सोहर' का पीछे वणन किया जा चुका है। यह भी लोक गीतो का एक छन्द है। साहित्यिक सोहरो की तुलसी आदि कवियो न रचना की है और उनमें तुक मिला कर प्रत्येक पद म मात्राएँ भी बराबर रखी गई हैं। इस प्रकार यह 'सोहर' पिंगल शास्त्र के नियमों से बधे हुए हैं। परन्तु लोक गीता के सोहरो म मात्राओं और तुक के नियमो की लोक कवि ने अवहेलना कर दी है।

दूसरा छ द बिरहा है। डा० ग्रियसन ने 'बिरहा' का छन्द विधान बतलाते हुए कहा है कि पढते समय ये बिरहे शायद ही मिलें जब तक हम यह याद न रखें कि बहुत से दीर्घ स्वर पढ़ते समय लघु कर लिए जाय। इनम कभी कभी कुछ ऐसे भी व्यथ के शब्द होते हैं जो छन्द के अगीभूत नहीं होते।[2]

सभी लोक गीतों के विषय म कहा जा सकता है कि उनमे कोई न कोई छन्द अवश्य होता है। छन्द का अथ होता है बन्धन। बिना बन्धन के कविता (लोक-गीत भी कविता ही हैं) की रचना हो ही नहीं सकती। डा० ग्रियसन का विचार है कि

१ प० रामनरेश त्रिपाठी—कविताकौमुदी (ग्रामगीत), प० ६६
२ जनल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी, बगाल वष १८८५, स० ३

इन लोक गीतों की विशेषता है कि पिंगल शास्त्र के नियम इनमें बड़े शिथिल हैं।[1] इन उदाहरणों से स्पष्ट रूप से सिद्ध हो जाता है कि लोक गीतों में छन्द होते अवश्य हैं परन्तु इनमें पिंगल के नियमों के पालन में बड़ी ही शिथिलता होती है और यही कारण है कि लोक गीतों को पढ़ते समय जान पड़ता है कि इनमें यति भंग, गति भंग, न्यून पदत्व और अधिकपदत्व आदि अनेक दोष हैं। पर गाने से लय के द्वारा इन सारे दोषों का परिहार हो जाता है।

लोक गीतों में भावव्यंजना और छन्द विधान का सामंजस्य

संस्कृत और हिन्दी साहित्य में विभिन्न भावों की व्यंजना के लिए विभिन्न छन्दों का प्रयोग किया गया है। प्रवास के वर्णन के लिए मन्दाक्रान्ता उपयुक्त छन्द कहा गया है।[2] इसी प्रकार विप्रलम्भ शृंगार के लिए सवैया छन्द समुचित माना गया है। पर जब हम लोक-गीतों का अवलोकन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि सामान्यतया भावों के अनुसार ही छन्द प्रयुक्त नहीं होते। सोहर छन्द को ही ले लीजिए, इसमें करुण, उत्साह, रति आदि सभी भावों की अभिव्यक्ति की गई है। परन्तु कुछ ऐसे छन्द भी हैं जिनमें भाव व्यंजना और छन्द विधान का सामंजस्य अवश्य है।

जहाँ जीवन की आनन्दमय अनुभूति व्यक्त हुई, उत्साह और उमंग का वर्णन होता है वहाँ 'नकटा' और 'झूमर' छन्द का प्रयोग होता है। झूमर का प्रत्येक चरण छोटा होता है और इसकी लय इतनी सुन्दर होती है कि उसके गाने से ही आनन्द की अनुभूति होने लगती है। इस छन्द में एक स्त्री की उक्ति सुनिए—

टोपी की झलक दिखाय रे।
टोपी वारे समधिया।
हमरे ससुर का कागज का बंगला।
हवा चले उड़ि जाय रे।
टोपी वाले समधिया।
हमरे सजन का सोने को बंगला।
झटकी जो लेव लुटि जाय रे।
टोपी वारे समधिया।

मार्मिक भावों की अभिव्यक्ति के लिए लम्बे-लम्बे छन्दों की आवश्यकता होती है। अतः विप्रलम्भ और करुण रस के लिए चक्की और निरवाही के लम्बे गीत प्रयुक्त हुए हैं।

---

१ जर्नल आव रायल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, वर्ष १८८४, सं० ३
२ प्रावृट् प्रवास व्यसने मन्दाक्रान्ता विराजते—क्षेमेन्द्र।

जहां वीरता और साहस के कार्यों का वर्णन करना होता है वहाँ आल्हा छन्द का प्रयोग किया जाता है। इस छन्द में गाने का स्वर इतना उच्च और ओजपूर्ण होता है कि वीर रस इसमें चुवा सा पड़ता है। एक उदाहरण देखिए—

'हनी सलामी दोनों दल में। धुअना रहो सरग मडराय।
तोप छुटि गई दोनों दल में। रन में होन लगे घमसान॥
अरर घरर घर गोला छूटे। कड़ कड़ पर अगिनियां बान।
रिमझिम रिमझिम गोली बरसे। सर सर पर तीर की मार॥'

इस विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि कनौजी लोक गीतों में छन्द और भावों के सामंजस्य का भी लोक-कवियों ने ध्यान रखा है।

कनौजी लोकगीतों की भाषा

लोकगीतों के महत्व पर प्रकाश डालते हुए पीछे कहा जा चुका है कि इनका भाषा की दृष्टि से भी बहुत महत्व होता है। कनौजी लोक गीतों के लिए यह बात पूर्ण रूप से लागू होती है। ऐसे अनेक शब्द गीतों में आते हैं जिनसे आज की पारिभाषिक शब्दावली के लिये सहायता ली जा सकती है। इनके अतिरिक्त इन गीतों में ऐसे अनेक शब्द हैं जिनका सीधा सम्बन्ध वैदिक संस्कृत से है। ऐसे शब्द भाषा विज्ञान के अध्ययन के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। कुछ शब्दों के उदाहरण दिए जाते हैं—

'ओस भरी पाय की पनहियां रक्त भरी तरवारि।

इस पंक्ति में 'पनहियां' शब्द का संस्कृत के 'उपानह' शब्द से विकास हुआ है। दूसरा शब्द 'रक्त' है। संस्कृत के रक्त शब्द में स्वर भक्ति के सिद्धान्त से कनौजी में 'रकत' हो गया है। खड़ी बोली में न तो 'पनहियां' और न 'रकत' शब्द ही मिलता है। इनके लिए या तो संस्कृत के तत्सम शब्दों का प्रयोग किया जाता है या विदेशी शब्दों का सहारा लिया जाता है। एक और पंक्ति देखिए—

'इक तो मोरी बारी बयसिया दूजे बलम परदेस।'

इसमें 'बयसिया' शब्द संस्कृत के 'वयस' शब्द का विकसित रूप है। साहित्यिक हिन्दी में वय का प्रयोग होता है अथवा विदेशी शब्द उम्र का। पर कनौजी ने मूल शब्द से अब तक सम्बन्ध नहीं छोड़ा है। यहां उदाहरण के लिए थोड़े से ही शब्द दिये गए हैं। वस्तुतः कनौजी लोक गीतों में ऐसे शब्दों की अशेष राशि है जिनका उपयोग शिष्ट साहित्यिक हिन्दी की एक बहुत बड़ी कमी को पूरा कर सकता है।

संस्कृत के तद्भव रूपों के अतिरिक्त इन गीतों में विदेशी भाषाओं के शब्द भी मिल जाते हैं। इसका कारण यह है कि सैकड़ों वर्षों तक विदेशी लोगों का हमारे देश पर शासन रहा और साथ ही हम पर विदेशी भाषा लादी गई। १९४७ तक पहले तक कन्नौज में अदालती भाषा उर्दू रही जिससे कि अधिकांश शब्द फारसी के

होते थे। यहाँ के गीतों में जो फारसी-अरबी शब्द आ गये हैं उनके कुछ उदाहरण दिये जाते हैं—

१ मोरी मइआ बड़ी दिलदार कलम त उतरि परी।

२ दगाबाज तोरी बतियां ना मानों रे।

३ जब तें कलम धरी कागज पै कलम के बीस करें।

अंग्रेजी शब्दों के भी कुछ प्रयोग हमें देखने को मिल जाते हैं परन्तु उनकी संख्या बहुत कम है। नीचे एक उदाहरण दिया जाता है—

कहा ते आए डिप्टी कलट्टर कहा त आई बड़ी मेम

कनौजी लोक गीतों की भाषा के शब्द समूह पर विचार करने के उपरान्त हम भाषा की भावाभिव्यञ्जना शक्ति पर भी विचार करेंगे। इन गीतों में सजीव और मार्मिक शब्दावली पाई जाती है। भावों के अनुकूल ही शब्दों का प्रयोग होता है। जहाँ वीर रस का वर्णन होता है वहाँ भाषा अपेक्षाकृत कुछ ओजमयी तथा संयुक्त शब्दों वाली होती है। ट ठ ड ध आदि महाप्राण ध्वनियों का प्राधान्य हो जाता है। इस दृष्टि से एक गीत की भाषा देखिए—

धड़ धड़ धड़ धड़ तेगा बाज जूझें वीर महाबे कयार।
कायर भाजे समर भूम्मि त अपने छोंड़ि छोंटि हथियार॥

करुणा भाव को व्यक्त करने के लिए तदनुकूल शब्दों का प्रयोग किया गया है। इनमें महाप्राण ध्वनियों का सर्वथा अभाव रहता है। अनुस्वार युक्त शब्दों के कारण बड़ा ही लालित्य आ जाता है। एक गीत में कोमल तथा अनुस्वार-युक्त वर्णों की छटा देखिए—

'नानी नानी बुंदियन मेहा बरसि गए मेहा बरसि गए
अँगना में हुगओ कींच।
अब जिन निकरो अगना में विरना पाय भर दोनों कींच।
पाय की लय विरना चनन खड़ाऊं हाथ की छड़िया मगाय।'

न, म, प, र तथा अनुस्वार युक्त वर्णों के कारण भाषा बड़ी ही ललित एवं मधुर हो गई है। लोक गीतकार ने चन्दन का 'चनन' करके कोमलता की सृष्टि कर दी है।

युद्ध के गीतों में खरर खर, कड़ कड़ कड़ कड़ तड़ तड़ तड़ आदि शब्दों के प्रयोग में भाषा की अनुरणनात्मक शैली व्यवहार में लाई जाती है।

कुछ विशिष्ट शब्द

गीतों में कुछ ऐसे शब्द भी आए हैं जिनमें भाव तथा अर्थ घनीभूत हो जाते हैं। 'डाहन' शब्द का प्रयोग देखिए—

गए पिया परदेस हमैं काए 'डाहत' हो

अर्थात परदेश मे जाकर हे प्रियतम तुम मुझे क्यो दु ख दे रहे हो। साहित्यिक हिन्दी म 'डाहना' के लिए जलाना, दु ख देना आदि का प्रयोग होता है परन्तु 'डाहना' का भाव जलान और दु ख देने से कही अधिक व्यापक और गम्भीर है। जलाने म नीरसता प्रकट होती है परन्तु डाहना म क्रोध प्रतिवाद और विक्षोभ के साथ उपालम्भ का भी भाव है। एक दूसरा शब्द बिसूरना है। इसम बडी ही भाव व्यजना होती है। पीछे सोहर गीतो म हिरनी की करुणा वाले गीत में इस शब्द का प्रयोग हुआ है—

'तेहि तर ठाडी हिरनी 'बिसूरइ' हो

खजडी के शब्द को सुनकर हिरनी को अपने पति की स्मति हो आती है और पलाश वक्ष के नीचे खडी खडी वह बिसूरती है। इस एक शब्द 'बिसूरना' म चिन्ता, दु ख और करुणा तीनो भाव भरे हैं। इसी प्रकार अनक शब्द हैं जिनम भावो की सरिता उमड पडती है।

भाषा म भावाभिव्यजना के लिए मुहावरे तथा प्रतीक उपकरण का काम करते हैं अत इनका भी यहाँ उल्लेख किया गया ह।

मुहावरे

भाषा म लक्षणा और व्यजना लान के लिए मुहावर भी बहुत महत्व रखत हैं। य लोक अनुभव क निचोड होते हैं। इनसे न केवल अथ गौरव ही आता ह वरन् अनुपम सौन्दय भी। कनौजी लोक गीतो म प्रयुक्त कुछ मुहावरो को यहा दिया जाता ह। शिष्ट हिन्दी म सर माथे रखना मुहावरा सम्मान क अथ म प्रयुक्त होता है। कनौजी म इसी अथ के लिए 'पगडी की पेंच मे रखना मुहावरे का प्रयोग हुआ ह—

रानी रखिबो पगडिया की पच मनवा के भीतर हो

पगडी की पेंच म रखने का लाक्षणिक अथ सम्मान करना हुआ। इस गीत का प्रसग यह ह कि एक प्रेमी प्रेमिका से प्रेम याचना करता है और उसके सम्मान का भी आश्वासन देता है। अन्यत्र एक मुहावरा 'चुल्लू भर पानी म डूब मरना' का प्रयोग हुआ ह—

जो कुछू तुम्हें लाज होय भइया बहिन की
चुरुआ भरि पानी में बूडि मरि जाव।

चुल्लू भर पानी मे डूब मरने का लाक्षणिक अथ हुआ लज्जा से दु ख और पश्चाताप प्रकट करने का। ऐसे ही अनेक मुहावरो का कनौजी लोक-गीतो मे प्रयोग हुआ ह।

प्रतीक

प्रत्येक साहित्य में प्रतीकों का प्रयोग होता है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी, प्रसाद और निराला ने भी प्रतीकों को अपने काव्य में स्थान दिया है। इस दृष्टि से कनौजी लोक गीतकार भी किसी से पीछे नहीं हैं। इन्होंने अपने गीतों में अनेक प्रतीकों को स्थान दिया है। कनौजी गीतों में आत्मा के लिए पंछी तथा शरीर के लिए 'पिंजड़' प्रतीक प्रयुक्त हुआ है—

बड़ोई जतन करि 'पिंजरा' बनायो।
तामैं घने-घने तार लगाए जी
तुला के पागन पै पिंजरा मढ़ाय दयो
मेरो पंछी ना कहूँ उड़ि जाय जी।

अर्थात् बड़ा ही यत्न करके शरीर रूपी पिंजरा बनाया जिससे पंछी रूपी आत्मा कहीं उड़ न जावे।

जीव के लिए हंस का भी व्यापक प्रयोग है—

उड़ि जाय हंस अकेला हिय नगरमन का मेला।'

मृत्यु होने पर जीव रूपी हंस संसार का ठाट छोड़ कर परलोक को चला जाता है।

प्रेमी के लिए भ्रमर प्रतीक भी आता है—

'भूलो फिर भमर बाग नहिं पावै।'

एक प्रेमी अपनी प्रेमिका की खोज कर रहा है पर उसे कहीं पाता नहीं है। प्रेमी के लिए भ्रमर प्रतीक के कारण प्रेमिका के घर को बाग का प्रतीक बना दिया गया है क्योंकि भ्रमर को जैसे उद्यान में आनन्द प्राप्त होता है वैसे ही प्रेमी को अपनी प्रेमिका के मिलने पर। इस प्रकार हम देखते हैं कि प्रतीकों द्वारा लोक-गीतों में कवित्व भरने का सफल प्रयास किया गया है।

तृतीय अध्याय

कनौजी का 'पवारा' साहित्य

नामकरण

भारतीय लोक साहित्य के विद्वानो ने वर्णनात्मक दीर्घ कथानक वाली गेय कथाओं को 'पोवाडा',[1] 'कथा गीत,'[2] 'गीत कथा'[3] और 'पवारा'[4] नाम दिया है। उत्तर भारत के प्राय सभी क्षेत्रो मे मराठी, गुजराती राजस्थानी पजाबी और हिन्दी भाषी जन साधारण द्वारा 'पवारा' शब्द व्यवहृत होता है। इन गेय कथाओं के गायक और श्रोता भी इन्हें 'पवारा' ही कहते हैं, लोक गाथा से तो वे नाम मात्र के लिए भी परिचित नहीं हैं परन्तु इतना होने पर भी हिन्दी के कुछ लोक साहित्य मर्मज्ञों ने अपनी तथाकथित मौलिक उद्भावना द्वारा इनको 'लोक-गाथा' नाम से अभिहित किया है। डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने इन गेय कथाओं को अंग्रेजी शब्द 'बैलेड' का पर्याय मानते हुए कहा है कि 'हमारी सम्मति मे लोक गाथा शब्द अधिक भावाभिव्यंजक है।'[5] इस प्रयोग के औचित्य के लिए उन्होंने 'हाल की गाथा सप्तशती' का भी उल्लेख किया है। यह शब्द अंग्रेजो के 'फोक बैलेड' से गढ़ा हुआ प्रतीत होता है और गाथासप्तशती से औचित्य की सिद्धि नहीं हो पाती, क्योंकि उपर्युक्त ग्रंथ सात सौ 'गाथा' नामक छन्दों का सग्रह है न कि गेय कथाओं का।

डा० सत्यव्रत सिन्हा ने इन गेय कथाओं के लिए 'पँवारा' शब्द को इसलिए असगत बतलाया है, क्योंकि 'पँवारा' शब्द की व्युत्पत्ति सदिग्ध है और भोजपुरी के कथात्मक लोक प्रिय गीतो के लिए यह उपयुक्त नहीं होता।[6] वास्तविकता यह है कि

---

१ गणेश रघुनाथ वशम्पायन— मराठी चे हिन्दी शब्द सग्रह, पृ० २७२
२ झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य, पृ० ५०
३ सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोकगीत, पृ० ७८
४ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ३४८
५ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ३८९
६ डा० सत्यव्रत सिन्हा—भोजपुरी लोक गाथा, पृ० ३

ब्रज, अवधी, कन्नौजी एवं बुन्देली की भाँति भोजपुरी प्रदेश में भी इन कथाओं के लिए पवारा शब्द ही व्यवहृत होता है। उदाहरण के लिए भोजपुरी की गेय कथाओं को अपनी भाषा में लिखकर प्रकाशित कराने वाले बाबू के महादेव प्रसाद सिंह लोक-गाथा-लेखक न कहकर पवारा लेखक के नाम से प्रसिद्ध हैं।[1] अपने मत के समर्थन में उन्होंने अमरकोष का उद्धरण करते हुए गाथा का अर्थ बतलाया है— 'विवरण, पर लोक और एक ही कथा विषयों से सम्बद्ध अनुश्रुतियों पर आधारित पद्य या गीत।'[2] इस शब्द का सम्बन्ध इन्होंने डा० कृष्णदेव उपाध्याय की भाँति ही 'गाथा सप्तशती' से जोड़ा है। न तो गाथा सप्तशती से ही गाथा का सम्बन्ध स्थापित करना संगत है और न अमरकोष में गाथा नाम का कोई शब्द ही मिलता है। उपर्युक्त दोनों विद्वानों ने गाथा शब्द की भोजपुरी लोक जीवन में जिस लोकप्रियता का उल्लेख किया है[3] उस सम्बन्ध में गाथा का अर्थ कहानी (ग्राम्य वचन)[4] परिभाषित गेय कथा नहीं। स्वयं डा० सिंहा द्वारा दिए गए उदाहरण 'बइठि के आपन गाथा सुनावतार' अर्थात् 'बैठा आप-बीती सुनाता हो'—से भी इसी तथ्य की पुष्टि होती है।

इन गेय कथाओं के लिए लोकगाथा शब्द का प्रयोग कदाचित् जितना भ्रामक है सम्भवतः उससे भी अधिक भ्रामक है इन्हें अंग्रेजी शब्द बैलेड का पर्याय मानना।[5] बैलड और बैलेड शब्दों के समान ही बैलेड (Ballare) शब्द की व्युत्पत्ति भी लैटिन के बैलार शब्द से हुई है[6] और इस शब्द का अर्थ है नृत्य करना। प्रारम्भ में नृत्य के साथ गाए जाने वाले गीत को ही बैलेड कहा जाता था। कालान्तर में नृत्य वाला अंश गौण होता गया और सरल कथात्मक गीतों के लिए इसका प्रयोग होने लगा। एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका के अनुसार बैलेड की मुख्य विशेषताएँ हैं—

---

१ नित्यानन्द तिवारी— लोक गाथा या पवारा —विषयक शोध निबन्ध।
(हिन्दी अनुशीलन वर्ष १४ अंक ३ पृ० ८)

२ डा० सत्यव्रत सिन्हा—भोजपुरी लोकगाथा पृ० ७

३ डा० सत्यव्रत सिन्हा—भोजपुरी लोकगाथा पृ० २
डा० कृष्णदेव उपाध्याय—भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन पृ० ३८६

४ डा० सत्यव्रत सिन्हा—भोजपुरी लोकगाथा पृ० ७

५. डा० कृष्णदेव उपाध्याय ने अपने भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन तथा लोक-साहित्य की भूमिका में डा० सत्यव्रत सिन्हा ने भोजपुरी लोक गाथा में और डा० शंकरलाल यादव ने हरियाना लोक साहित्य के अध्ययन में इन गेय कथाओं को बैलेड का पर्याय मानकर उनकी व्युत्पत्ति, एवं विशेषताओं को भी बैलेड के साथ में ढाल कर अध्ययन किया है।

६ एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना पृ० ६८

७ डा० मरे—राबर्ट ग्रेव्स कृत—'इंग्लिश बैलड' की भूमिका, पृ० २

उसका संक्षिप्त होना, कथानक का सरल होना, व्यक्तित्वहीन होना और उसका गान के लिए बनाया जाना ।[1] 'डिक्शनरी आफ फोकलोर' के अनुसार 'बलड' में एक घटना पर बल देना और 'शीघ्रता से उसका समाप्त हो जाना—दो मुख्य विशेषताएं बतलाई गई हैं । आगे इसके सम्बन्ध में यह भी बतलाया गया है कि यह उस लोक कथा अथवा लोक महाकाव्य से भिन्न होती है जिसकी कथा का विकास अनेक घटनाओं की शृंखला के द्वारा होता है ।[2] इन दो उद्धरणों से भी यह सिद्ध हो जाता है कि भारतीय गेय कथाएं ही नहीं, पश्चिम की भी लम्बी कथाएं 'बलड' से नितान्त भिन्न हैं । 'बैलड' का 'संक्षिप्त होना', 'कथानक का सरल होना', केवल एक घटना पर ही बल देना और शीघ्र ही समाप्त हो जाना —ये ऐसी विशेषताएं हैं जो कि बलड को गेय कथाओं अथवा प्रबन्ध गीतों से पूर्ण रूपेण पार्थक्य स्थापित कर देती हैं । हमारे यहाँ की गेय कथाएँ 'बैलड' की संक्षिप्तता के विपरीत अत्यधिक विस्तृत होती हैं, कुछ तो इतनी बड़ी होती हैं कि गायक उन्हें महीनों तक गाकर समाप्त कर पाता है—आल्हा', 'ढोला' आदि ऐसी ही दीर्घकाय कथाएं हैं । आकार की दृष्टि से इन्हें लोक-महाकाव्य मानना चाहिए ।[3] इन कथाओं का कथानक घटनाओं की एक सुदीर्घ शृंखला को लेकर चलता है तथा मुख्य कथानक के साथ अनेक उपकथानक जुड़ते जाते हैं । बलड की गति जहाँ बड़ी तीव्र और अल्पकालीन होती है, वहां गेय कथाओं की गति मन्थर और दीर्घकालीन होती है ।

मेघाणी द्वारा प्रयुक्त 'कथागीत'[4] और पारीक द्वारा प्रयुक्त गीतकथा[5] निश्चयपूर्वक अंग्रेजी शब्द बलेड के छायानुवाद ही हैं । दोनों शब्द तत्वतः भिन्न नहीं हैं । ये प्रयासपूर्वक निर्मित किए गए प्रतीत होते हैं और इनमें लोक भावना का समावेश भी नहीं हो पाता ।

ऊपर इस तथ्य का उल्लेख किया जा चुका है कि प्रायः समस्त उत्तरी भारत में इन वर्णनात्मक लम्बे कथानक वाली गेय-कथाओं के लिए 'पँवारा' शब्द का प्रयोग

---

१ 'दी फमीलियर हिटम ऐज दी करेक्टर आफ बलड दट इज शोर्ट', एडाप्टेड फार सिंगिंग 'सिम्पिल इन प्लाट एण्ड मोर इम्फटिकली दट इज 'इम्पसनल हेल्प अस टू इन्डीकेट दी जेनेर'—एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका, वा०२ पृ०९९३

२ 'दी बलेड टवस ए सिंगल इ सीडे ट एज इज दी शार्ट स्टोरी ऐण्ड इकनोमिक फोकस । इन दिस रिस्पेक्ट इट इज अनलाइक दी फोकटल आर एपिक ह्विच डेवलप दयर स्टोरी थ्रू ए सीरीज आफ इसीडेन्टस —डिक्शनरी आफ फोकलोर थोलाजी ऐण्ड लीजेण्ड वाल्यूम १ प०१०६

३ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, प० ३७०

४ झवेरचन्द मेघाणी—लोक साहित्य, प० ५०

५ सूर्यकरण पारीक—राजस्थानी लोकगीत, प० ७८

किया जाता है और जनसाधारण इनके लिए प्रयुक्त होने वाले इसी शब्द से परिचित है। मराठी में यह वीर गाथा के लिए[1], ब्रज में युद्ध गीतों के लिए[2], बुन्देली में युद्ध गीतों के साथ ही लम्बी कथाओं के लिए[3] और कन्नौजी में वीरगाथाओं और लम्बी कथाओं के लिए प्रयुक्त होता है। इन सभी युद्ध-गीतों में युद्ध और प्रेम का मणिकांचन संयोग होता है।

निष्कर्ष रूप से पहले इस शब्द की व्युत्पत्ति पर भी विचार कर लेना आवश्यक होगा क्योंकि तभी स्थिति में यह स्पष्ट हो सकेगा कि इन्हें 'पवारा' ही कहना क्यों अधिक युक्तिसंगत है। 'पँवारा' संस्कृत शब्द 'प्रवाद' से विकसित हुआ प्रतीत होता है।[4] 'अमरकोष' के अनुसार 'प्रवाद' का अर्थ है—'लोकवाद' 'प्रवाद' 'जनश्रुति' अर्थात् जो लोक में कहा जाए वह प्रवाद है। आप्टे के संस्कृत शब्दकोष में इसके अर्थ इस प्रकार हैं—अ-स्पोकन एंड वर्ड आर साउण्ड, कम्यूनिकेशन आर मेन्शन, रिमार्क आर कनवरसेशन, रयूमर, रिपोर्ट, पापुलर सेइंग आर डिस्कोर्स, स्टेटमेंट इन वर्ड्स आर चैलेंज, म्यूचुअल डिफाएन्स, ऐण्ड इन ब्रेग बुल ऐण्ड इंटु फाइट यही अफवाह, लोक प्रचलित कथन, लोक विश्वास, कथा, पुराण-कथा, लोक विश्वास, युद्ध सम्बन्धी ललकार—सभी अर्थ प्रस्तुत 'पवारा' में समन्वित होते हैं।[5] वर्णन में प्रयुक्त होना और अगाध अर्थ का भी इसमें समावेश हो जाता है। संस्कृत शब्द 'प्रवाद' के प्रायः सभी अर्थ 'पवारा' में घुल मिल से गए हैं। अतः इसे 'प्रवाद' शब्द से विकसित मानने में किसी प्रकार की कठिनाई प्रतीत नहीं होती। लोक प्रचलित इन कथाओं में भी इन्हीं अर्थों का सन्निवेश होता है—इनमें वीरों की गौरव गाथाएँ, प्रेम गाथाएँ तथा अन्य अनेक अलौकिक कार्यों का वर्ण्य विषय बनाया जाता है और इनमें अनेक संदिग्ध तथ्यों, अफवाहों, किंवदन्तियों और लोक विश्वासों का ऐतिहासिक तथ्यों के साथ मिश्रण हो जाता है। मध्ययुग से ही इन कथाओं के लिए 'पवारा' शब्द प्रयोग में आता रहा है।[6] आज भी इसका लोक में प्रयोग होता है तथा अधिकांश लोक-साहित्य मर्मज्ञ इसका इसी अर्थ में प्रयोग भी करते हैं[3]। अतएव इन सब कथाओं के लिए 'पवारा' शब्द का प्रयोग ही समीचीन है। 'लोक' और 'गाथा'—दो शब्दों को मिला कर संयुक्त शब्द 'लोक गाथा' गढ़ने की कोई विशेष आवश्यकता नहीं प्रतीत होती।

---

१ गणेश रघुनाथ वैशम्पायन—मराठी व हिन्दी शब्द संग्रह, पृ० ७७२

२ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन, पृ० ३४८

३ वही पृ० ३४८

४ मंजुलाल मजूमदार—गुजराती साहित्य ना स्वरूपों, पृ० १०३

५ आप्टे डिक्शनरी पृ० ६६८

६ परशुराम चतुर्वेदी—भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा, पृ० ५०

'पवारा' का स्वरूप

'पँवारा' वीरों का प्रशस्ति-काव्य है। वीरों का पराक्रम ही नहीं, विद्वानों की बुद्धिमत्ता तथा किसी व्यक्ति विशेष की सामर्थ्य, गुण, कौशल आदि का भी इसमें प्रशस्तिगान होता है। स्थूल रूप से कहा जा सकता है कि किसी प्रकार का भी महिमा और महत्व का इसमें कथन किया जा सकता है।[1] इस प्रकार पवारा का क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है। इसमें केवल वीरों की प्रशस्ति ही नहीं होती वरन इसमें प्रेम गाथाएँ, अद्भुत चरित्रों, साधु संतों, अनेक प्रकार की अद्भुत घटनाओं का भी समावेश हो जाता है। 'पँवारे' का निर्माण लोकगीत, उपाख्यान और स्थानीय इतिहास—इन तीनों तत्वों के सम्मिलन से होता है। इसमें कार्य, चरित्र, विषयवस्तु—तीनों में से कार्य को अधिक महत्व दिया जाता है, जिससे वर्णन प्रधान रोचकता सदैव प्राप्त होती रहती है।[2] पश्चिमी 'बैलेड' में एक घटना के कार्य का वर्णन बड़ी तेजी से करके उस चरम सीमा तक पहुँचा दिया जाता है।[3] 'बलेड' की गति अत्यधिक तीव्र और अल्पकालिक होती है, इसके विपरीत पवारा की परिसमाप्ति में महीने लग जाते हैं क्योंकि छोटे छोटे प्रसंगों को भी इनमें महत्व दिया जाता है।

'पवारा' और 'बलेड' में अंतर

आकार, विषय वस्तु और शैली—तीनों दृष्टियों से 'पवारा' और 'बलेड' एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न हैं। दोनों के वैषम्य का स्वरूप इस प्रकार है—

१ 'पवारा' आकार में महाकाव्य की भाँति विस्तृत होता है और इस दृष्टि से इसे अंग्रेजी के 'फोक एपिक' का पर्याय कहा जा सकता है। छोटे से छोटा 'पवारा' भी १०० पृष्ठों से अधिक का होता है। इसके विपरीत 'बलेड' अत्यधिक अल्प आकार का होता है। संक्षिप्तता तो उसकी एक प्रमुख विशेषता मानी जाती है। कुछ 'बलेड' आकार की दृष्टि से अपवाद रूप में पाए जाते हैं पर उनका आकार भी ५० पृष्ठों से अधिक का नहीं होता।

२ पवारे में घटनाओं की एक सुदीर्घ शृंखला बन जाती है, जबकि बैलेड में एक ही घटना को वर्ण्य विषय बनाया जाता है।

३ अनेक घटनाओं के विस्तृत वर्णन के कारण पवारा में स्थानीय इतिहास जनश्रुतियों, दन्तकथाओं और अफवाहों को भी स्थान मिल जाता है, जबकि बलेड

---

१ मंजुलाल मजूमदार—'गुजराती साहित्य ना स्वरूपो', पृ० १२३

२ नित्यानंद तिवारी—'लोक गाथा या पवारा' शीर्षक शोध निबंध, हिन्दी अनुशीलन (वर्ष १४, अंक ३, पृ० ११)

३ डिक्शनरी आफ फोकलोर, मथालाजी एण्ड लीजेण्ड, पृ० १२३

म सक्षिप्तता और घटना को ही लक्ष्य बनाने के कारण इन सब बातों के लिए अवकाश नहीं मिलता।

४ 'पँवारे' का कथानक जटिल होता है। इसम मुख्य कथानक के साथ अनेक उपकथानक जुड़ते जाते हैं और पात्रों का जमघट लग जाता है। इसके विपरीत 'बलड' का कथानक अत्यधिक सरल होता है, बिना किसी विपर्यास के सीधे अपने लक्ष्य की ओर बढ़ता जाता है।

५ कार्य (एक्शन) को मानकर चलने पर भी विस्तृत वर्णन की प्रवृत्ति के कारण 'पँवारे' की गति अपेक्षाकृत मंथर हो जाती है। इसके विपरीत 'बलड' की गति अत्यधिक तीव्र होती। इसमें एक घटना के कार्य का बड़ी तीव्रता के साथ वर्णन करके उसे शीघ्र ही चरम सीमा पर पहुँचा दिया जाता है।

कनौजी पँवारों का वर्गीकरण

'पवारों' का वर्गीकरण प्राय तीन दृष्टियों से किया जाता है—

१ गायकों के आधार पर[1]—ये पवारे जो देवी के पटो, जागिया जाचरा[2] चमारा या इसी प्रकार किसी जाति या वर्ग विशेष द्वारा गाए जाते हैं।

२ कथानक के स्रोत के आधार पर—पवारों की ऐतिहासिकता अर्द्ध ऐतिहासिकता या विशुद्ध काल्पनिकता की दृष्टि से।

३ कथावस्तु में आए हुए भाव विशेष के आधार पर—जैसे वीरता, प्रेम और अलौकिकता की दृष्टि से।[3]

उपर्युक्त तीनों दृष्टिकोणों में से पहले में दोष यह है कि इस वर्गीकरण के अन्तर्गत वे 'पवारे' नहीं आ पाते जो किसी वर्ग विशेष के द्वारा न गाये जाकर सभी जातियों और वर्गों के कठहार हैं। दूसरे दृष्टिकोण द्वारा किए गए वर्गीकरण में यह दोष है कि जो भी पवारे लोक साहित्य में उपलब्ध हैं उन्हें पूर्ण ऐतिहासिकता, अर्द्ध एतिहासिकता या विशुद्ध काल्पनिकता के कठघरों में नहीं रखा जा सकता। तथ्य तो यह है कि सभी पवारों में ऐतिहासिकता अधिकांश रूप में संदिग्ध ही होती है। जहाँ तक जनसाधारण का सम्बन्ध है, वह तो अद्भुत से अद्भुत कथानकों को भी सत्य मानकर चलता है। इस स्थिति में दूसरे दृष्टिकोण के द्वारा भी वर्गीकरण करना समीचीन प्रतीत नहीं होता। तीसरे दृष्टिकोण के अन्तर्गत भावना विशेष की प्रधानता के आधार पर वर्गीकरण किया जाता है—या तो पँवारे में अनेक भावनाएं समाविष्ट

---

१ डा० शंकरलाल यादव—हरियाना लोकसाहित्य का अध्ययन, पृ० ३६८ ६९

२ कनौजी प्रदेश की एक विशेष जाति जो अहीरों को उनके जातीय 'पवारा' ऊमन्व का गोना सुना कर दक्षिणा पाती है।

३ प्रफुल्लदत्त गोस्वामी—बलडस एण्ड टेल्स आफ आसाम पृ० १०

होगी पर वग बनाने के लिए प्रमुखता को दृष्टि पथ म रखना होगा। इस आधार के अतगत सभी प्रकार के प्राप्त होने वाले पँवारों का अन्तर्भाव हो जाएगा, क्योंकि प्रत्येक 'पँवारे' मे किसी न किसी भाव की प्रमुखता होती है। अय भाव भी उसमे होते हैं, पर तु अपेक्षाकृत उनका स्थान गौण होता है।

कनौजी म जो 'पवार' प्रचलित हैं उ हें उपयुक्त दृष्टिकोण के आधार पर इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

१ वीर गाथात्मक
२ प्रेम गाथात्मक
३ अलौकिक (सुपरनेचुरल)

कनौजी क्षेत्र म वीर गाथात्मक 'पवारो' पर भारतवष की मध्ययुगीन संस्कृति एव सभ्यता का स्पष्ट प्रभाव है। राजपूतों की वीरता युद्ध का सजीव चित्रण, लोक रजन के साथ प्रेम के भी इनम सु दर चित्र मिलते हैं। इनके नायक भारतीय आदश और शौय के जीवन्त प्रतीक हैं। दुष्टों का दमन करने के लिए ही इनका ज म हुआ है। अनेक आपत्तियों से ये विचलित नही होते और अन्ततोगत्वा देवी देवता भी इनकी सहायता करते हैं और विजय श्री इनका वरण करती है। इस वग म 'आल्हा' सर्वाधिक महत्त्वपूण है।

द्वितीय वग के प्रेमगाथात्मक 'पँवारो' म प्रेम एक असाधारण परिस्थिति एव वातावरण मे ज म लेता है। फलत इस सघष की चरमता भी दिखलाई जाती हैं। सयोग और वियोग दोनो पक्षो का इसम चित्रण होता है। इन पँवारो का नायक एक ओर तो रसिक शिरोमणि होता है तो दूसरी ओर परम वीर भी। अनेक सघर्षों के पश्चात नायक विजय प्राप्त करके अपनी प्रयसी को हस्तगत करता है। इन 'पँवारो' मे भी वीरता और प्रेम के अलौकिक तत्व विद्यमान रहते हैं। 'नैका बजारा' इसका उत्कृष्ट उदाहरण कहा जा सकता है।

अलौकिक तत्वो से युक्त पवारो मे अदभुत एव अलौकिक तत्वो का सम्मिश्रण होता है। इनम आए हुए नायक गभ में स्थित होने के समय से ही चमत्कार दिखलाना प्रारम्भ कर देते हैं। इन पवारों म जादू, टोना सम्मोहन आदि की भरमार रहती है। गोपीचन्द भथरी धन्इया, जगदेव गूगापीर आदि 'पवारो' म यह अलौकिकता द्रष्टव्य है। आदिम लोक मानस के अध्ययन के लिए य ही पवारे' सर्वाधिक महत्वपूण हैं।[१]

कनौजी 'पवारा' का परिचय एव विश्लेषण

वीर गाथात्मक पँवारे

कनौजी क्षेत्र म इन्हीं पँवारों का अधिक प्रचार है। अय पवारों के विवेचन

१ ऐकमेल औलरिच, इंग्लिश बलैड्स, पृ० ५१

गायक बहुत कम होते हैं और इसी लिए उनका आयोजन कभी-कभी ही हो पाता है। इन वीरगाथा मय पँवारों में भी 'आल्हा' सर्वाधिक प्रचलित है। इसका इतना अधिक प्रचार हो गया है कि जब आल्हा के विशेषज्ञ नहीं भी उपलब्ध होते हैं तो छपी हुई 'आल्ह खण्ड' की सहायता से ही लोग पढ़ कर अपना मनोरंजन करते हैं। 'आल्हा' के अतिरिक्त इस कोटि में आने वाले अन्य पँवारे ये हैं—'ऊमदेव का गौना', 'अमर सिंह को किस्सा'। स्थानाभाव के कारण इन्हीं पवारों का यहाँ विवेचन किया जा रहा है। अमरसिंह से सम्बद्ध पँवारा ब्रज में प्राप्त होने वाले पवारे से पर्याप्त साम्य रखता है। इसका सम्भवतः यह कारण है कि अमरसिंह से सम्बद्ध घटना ब्रज क्षेत्र में ही घटित हुई थी और वहीं से यह कनौजी प्रदेश में फैल गई।

आल्हा

कनौजी में जितने भी पवारे उपलब्ध होते हैं उनमें प्रचार, व्यापकता और लोकप्रियता की दृष्टियों से आल्हा का स्थान सर्वोपरि है। यह इतना अधिक गाया जाता है कि इसकी मुख्य घटना की जानकारी सर्वसाधारण को रहती है। लोगों को यह इतना अधिक रुचिकर प्रतीत होता है कि इसका श्रवण और पुनश्रवण चलता ही रहता है। परिनिष्ठित साहित्य में तो प्राय शृंगार को ही 'रसराज' माना गया है, पर लोक साहित्य में 'आल्हा' की लोकप्रियता को देखकर यही कहना पड़ता है कि लोक में 'रसराज' का अधिकारी 'वीर' रस ही है। इस 'पँवारे' की वाग्मिता सर्वसाधारण में वीरता का संचार करती है—सुनने वालों की बाहें फड़कने लगती हैं। महाकाव्यों में चरित नायक के रूप में राम को जो प्रतिष्ठा मिली है पँवारों में वही प्रतिष्ठा आल्हा और ऊदल को इस क्षेत्र में मिली है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में आल्हखण्ड के सम्बन्ध में कहा जाता है कि मूल कृति का नाम परमाल रासो था और इसके रचयिता थे जगनिक। मूल लिपि तो प्राप्त नहीं हुई है। आज जो आल्ह खण्ड जनता जनार्दन के कंठ से प्राप्त होता है, वह विशुद्ध लोक काव्य की कोटि में आता है।

मूल 'आल्ह-खण्ड' की रचना किस भाषा में हुई ?

ब्रज, कनौजी, बुन्देली, अवधी और भोजपुरी में यह पँवारा अधिक प्रचलित है और सभी क्षेत्रों के लोग इस प्रकार का अनुभव करते हैं कि मानो ठीक इसी भाषा में आल्हा ऊदल आदि का कथोपकथन हुआ होगा। इस स्थिति में स्वाभाविक रूप से प्रश्न उठता है कि इसकी रचना मूल रूप में किस प्रदेश की भाषा में हुई होगी ? यदि यह मान कर चला जाए कि इसके मूल रूप की रचना परमार्दिदेव (परमाल) के आश्रित कवि जगनिक द्वारा हुई तो इसके लोक-काव्य के बनने की प्रक्रिया भी बुन्देलखण्ड (महोबा) क्षेत्र में ही प्रारम्भ हो गई होगी और धीरे धीरे जब इसका व्यापक

प्रचार हुआ होगा तो प्रथमत तो बुन्देली रूप ही बाहर के प्रदेशो मे गया होगा और कालान्तर म उसने क्षेत्रीय भाषा का रूप धारण कर लिया होगा। जगनिक के द्वारा इसके रचे जाने की बात विवादास्पद होने के कारण यदि यह माना जाए कि किसी अन्य सामान्य लोककवि ने इसकी रचना की होगी। तब भी यही कहना सम्भवत ठीक होगा कि इसकी रचना बुन्देलखण्ड क्षेत्र म परमाल के समय या कुछ बाद ही हो गई होगी। बुन्देलखण्ड क्षेत्र म ही इसके रचित होने की बात इसलिए कही जा रही है, क्योंकि राजा परमाल न अपने शासन काल म ऐसा कोई काय नहीं किया, जिससे उन्ह किसी प्रकार की भी प्रसिद्धि मिलती। जन समाज म उन्ह महत्व प्राप्त हुआ है, उसका श्रेय आल्हा ऊदल को है। आल्हा ऊदल इनके सामन्तो म से थे। सामन्तो की प्रसिद्धि इतिहास के द्वारा बहुत समय तक चलती रही और किसी अन्य प्रदेश म सौ दो सौ वष बाद इस काव्य की रचना हुई हो, ऐसा सोचने का कष्ट कल्पना ही कहा जाएगा। चाहे जगनिक न इसकी रचना की हो या किसी अन्य लोक कवि ने, परिस्थिति को देखते हुए ऐसा ही कहा जा सकता है कि इसे बुन्देलखण्ड म ही वहाँ की क्षेत्रीय भाषा म रचा गया होगा। आल्हा और ऊदल की चमत्कार पूण वीरता के कारण इसका व्यापक प्रचार हो गया होगा।

'आल्हा' का कनौजी रूप

अब तो अवधी, बुन्देली, भोजपुरी आदि बोलियो म प्रकाशित आल्ह खण्ड उपलब्ध होते है, परन्तु इसके प्रकाशन का श्रीगणेश कनौजी से ही हुआ था। सन १८६५ ई० मे फरुखाबाद के तत्कालीन सेटेलमेण्ट आफिसर चाल्स इलियट ने गाँवो के लोगो स सुनकर इसे लिपिबद्ध कराया था। इस प्रति म या तो पर्याप्त मात्रा म कनौजी के शुद्ध रूप को देने का प्रयत्न किया गया था, परन्तु लोक साहित्य सग्रह की वैज्ञानिक दृष्टि का उस समय अभाव था और सुनाने वाले लोग भी अपने को गवार' कहे जाने के भय से अपनी भाषा को जहाँ तक हो सकता था, शुद्ध करके उसे खडी बोली का रूप देने का प्रयत्न करते थे अत उस पर खडी बोली का कुछ प्रभाव लक्षित होना है। धीरे धीरे स्थानीय प्रकाशको न भी इधर ध्यान दिया और आल्ह खण्ड की प्रतियाँ छपने लगी। अर्द्धशिक्षित लेखको ने कुछ तो अपनी स्मृति स और कुछ कल्पना से आल्ह खण्ड की रचना प्रारम्भ कर दी। इस समय श्रीकृष्ण पुस्तकालय कानपुर, भगवान दास बुकसेलर अहेरीपुर (इटावा) शर्मा बुक डिपो, फरुखाबाद से आल्हखण्ड का प्रकाशन होता है। इन खण्डो की भाषा कनौजी और खडी बोली का मिश्रित रूप है। लोक साहित्य की दृष्टि से अध्ययन करने के लिए ये पुस्तकें विशेष उपयोगी नही हैं। अत अशिक्षित गवयो से कुछ अशो का सकलन करके उसका इस अध्याय म उपयोग किया गया। पूरे काव्य के रूपान्तरो का विविध क्षेत्रो से सकलन और उसकी तुलना तो सभवत अलग से एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय बन सकता है।

इस पँवारे के गायको और सामान्य श्रोताओ से पूछने पर यह सूचना मिलती

है कि इसमें ५२ लड़ाइयों का वर्णन किया गया है। वस्तुतः ५२ लड़ाइयों का वर्णन इनमें नहीं होता। शायद यह बावन की संख्या लड़ाइयों की संख्या की अधिकता की द्योतक है, जैसे छप्पन प्रकार के भोजन का आशय वस्तुतः छप्पन तरह के भोजनों से न होकर भाँति भाँति के भोजनों से होता है। ५२ की संख्या को अभिधा में ग्रहण करके प्रकाशकों ने खींचातानी करके एक लड़ाई को कई भागों में विभाजित करके संख्या को पूरा कर दिया है। लोक गायकों द्वारा जो लड़ाइयाँ गाई जाती हैं उनमें से मुख्य निम्नांकित प्रकार से हैं—

'आल्हा का ब्याह', 'ऊदन का ब्याह', 'मुजारियन की लड़ाई', 'चन्दावलि की चौथी', 'आल्हा मनौआ', 'पुरवा हरन', 'नवरा को ब्याह', 'जागन का ब्याह', 'देवा का ब्याह', 'मलिखान समर', 'इन्दल को ब्याह' या 'बलख बुखार की लड़ाई', 'नदिया बितवा की लड़ाई', 'माड़ौ की लड़ाई', 'लाखन को ब्याह', 'मलिखान को ब्याह', 'गाँजर की लड़ाई', 'दिल्ली की लड़ाई', 'बेला गौनो', 'इन्दल हरण', 'आल्हा की निकासी', 'नरवरगढ़ की लड़ाई' और 'लाखन का गौनो'।

'आल्ह खण्ड' की कथा का संक्षिप्त परिचय—

दिल्लीश्वर पृथ्वीराज और कन्नौज के सम्राट् जयचन्द्र के समकालीन राजा परमाल महोबा के राजा थे और आल्हा और ऊदल इनके सामन्त। आल्हा ऊदल की वीरता दिखाना ही इस लोक महाकाव्य का लक्ष्य था। अतः इसमें वर्णित सारी घटनाएँ एवं समस्याएँ प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष महोबा के आस पास केन्द्रित हैं। या तो महोबा के आस-पास युद्ध होते हैं या महोबा की किसी समस्या के कारण सुदूरवर्ती स्थल बलख बुखारा तक कथानक का विस्तार हो जाता है। इस प्रकार से आल्हा ऊदल तथा परमाल के अनेक कुटुम्बियों की वीर गाथाओं का अतिरंजित वर्णन मिलता है। इन दोनों वीरों ने पृथ्वीराज जैसे सम्राट को भी छठी का दूध याद दिलाया है। इसमें मुख्यतः विवाहों का वर्णन है। विवाह बलपूर्वक कन्यापहरण द्वारा सम्पन्न होते हैं। अतः प्रत्येक विवाह के साथ युद्ध अनिवार्य हो जाता है। आद्योपान्त मुख्य रूप से वीरता और गौण रूप से शृंगार भावना की स्पष्ट झाँकी परिव्याप्त है। अन्त में बनाफर वंशी वीरों का युद्ध में मरना नहीं कहा जाता है। आल्हा और उनका पुत्र इन्दल 'कजरी बन' को चले जाते हैं। वे अमर हैं[1] और महोबा के दुःख को दूर करने के लिए वापस आएँगे लोगों को ऐसा विश्वास है।

आल्हा एक महान कथा है जिसमें अनेक प्रकार के चरित्रों का वर्णन किया गया है।[2] इसमें वीर चरित्रों की प्रधानता है। आल्हा ऊदल मलखान, सुलखान ढेबा... इन्दल ब्रह्मा और ढेबा के चरित्र वीर भाव से ओत प्रोत हैं। ये राजपूतों

1. आल्हा अमर है दुनियाँ में इनका कोई मरइया नाई'।
2. वाटरफील्ड—दी ले आफ आल्हा—ग्रियर्सन की भूमिका पृ० २०

शौर्य एवं साहस का उच्चतम आदर्श प्रस्तुत करते हैं मल्हना धैर्य और बुद्धिमत्ता की प्रतीक बन गई है। तथा बेला का चरित्र जन मानस में जौहर और करुण भाव का सहज उद्रेक कर देता है। आल्हा और ऊदल भारतीय वीरता की परंपरा को अक्षुण्ण रखने के लिए ही मानो उत्पन्न हुए। खडग उनका चिर मित्र है और उसी की नोक से वे सारी समस्याओं का समाधान करते हैं। स्थान स्थान पर उन्हें भीषण युद्ध करने पडते हैं और वे अपनी वीरता और क्षत्रियत्व से महोबे के सैनिकों को भी युद्ध में प्रेरित करते हैं। युद्धों की सजीवता तो इस लोक-काव्य में पग पग पर दृष्टिगोचर होती है। इन्दल के विवाह के समय हुए युद्ध का एक छोटा सा चित्र यहाँ प्रस्तुत किया जाता है—

जत सांगडा[1] है दगल में जहँ चुचुआत [2] फिरैं असवार ॥
पदर के सग पदर अभिरे औ असवारन ते असवार।
झुके सिपाही महुब वाले रहिगम्रो ढट कदम मदान।
खेंचि सिरोही लइ छत्रिन ने दल मे झुके बाकुरे ज्वान ॥
मिले बखोरा हैं छत्रिन के कल्ला मिले बछ्रन बयार।
छप छप छप छप तेगा बाजै योने खटक-खटक तरवार ॥
ढाल ते ढाल भ्रडी ज्वानन की नहिय दाव सिरोही बयार।
तीर तुपक तरवार सागडा ऊपर बरछिन की है मार ॥
सुम्रा सुपारी जइसे काट, छाट मनो तमोली पान।
कटि कटि छोना रजपूतन के गिरिगए बौनन के उनमान।
पिले कांड़या हैं दगल में जसे सती नुन किसान।
जइसे भिड़हा भेंडन पइठें जसे सिंघ विदारे गाय ॥
तइसे मलिख दल मे पइठ, हाहाकारी दई मचाय।
मघा की बूदन गोली बरस ऊपर तीरन की बौछार ॥
इक इक तोपन के मोहरा प छय छय ज्वान गरासे जाय।
लये बांसडा सल्लासिन ने दूरि ते दीनो लूक लगाय।
सूरज छिप भओ अँधियारो, चहुँ दिस कुहरा सो दिखलाय।
गरजत तोप घरन दहलत है गिरि गए गरभ पसरुन बयार।
जिहि हाथी के गोला लाग गहिरी छोड़ि देत चिंघार।
जाइ ऊँट के गोला लाग दल मे देत गाँड फलाय।
गोला लाग जा घोडा क चारो देय सुम्म पसारि।
गोला लाग जा छत्री के प्रान सरग पर दिखलाय।

१ भाला।
२ रक्त से सराबोर।

पग-पग पै पैदल गिरि गए, औ दुइ पग गिरे असवार।
भिसे भिस पै हाथी गिरि गए छोट परबत की उनहार।
ऊपर मुरदा नीचे मुरदा, मुरदे मुरदन रहे दिखाय।
भाला डारे हैं लोहू में मानो नाग रहे मन्नाय।।
पगियां डारी हैं लोहुन में मानो कमल फूल उतराय।
ढालें कछुआ सी उतरामें मछरी जइसी लग कटार।
रुण्ड मुण्ड से धरती तुपि गई रकत लाल बरन दिखराय।
जय हर हर हर कर दिगम्बर औ सिउनाथ रटें भगवान।
मेघनाग बिजना लौ कापें इन्दर डाल चढ़े विमान।
सम्मुख मरे समर में, जस तासों इन्दर पुरि लइ जाय।
कायर जूझि गिरे धरनी में जमके दूत पकरि लइ जांय।

आल्हा और ऊदल का जीवन एक ही युद्धों को करत-करत यशस्वी बनाय अपनी स्वामिभक्ति रणकुशलता और उदारता को सर्वस्व मान कर चले। उन्हें महोबा की प्रतिष्ठा अपने प्राणों से भी प्रिय है। बाल्यकाल से ही वे परमाल की पत्नी मल्हना के संरक्षण में पले। उनकी शिराओं में मल्हना के प्रति श्रद्धा और भक्ति प्रवाहित होती थी। किसी कारण ये कन्नौज चले गए, क्योंकि परमाल इन से कुछ रुष्ट हो गए थे। महोबे पर पृथ्वीराज का आक्रमण हुआ। मल्हना के संकेत मात्र से ही महोबे के लिए चल पड़े और उसकी रक्षा की। आल्हा और ऊदल का चरित्र आदर्श चरित्र है। तलवार लेकर शत्रु पर पिल पड़ना और उसका विनाश करके विश्राम लेना ही इनके जीवन का लक्ष्य था। वे सच्चे धर्म-वीर थे। उन्होंने निहत्थों और स्त्रियों पर कभी हाथ नहीं चलाया। स्त्रियों के चारित्र्य की रक्षा के लिए वे सचेष्ट तत्पर रहे।

मध्यकालीन वीरों के चरित्र में वीरता के साथ प्रेम का भी अनिवार्य स्थान मिला है। आल्हा और ऊदल भी इसके अपवाद नहीं हैं। परन्तु इनका प्रेम इनके चरित्र के सर्वथा अनुकूल था—उसमें कहीं भी छिछलापन नहीं आया है। यह बात अवश्य है कि 'आल्हखण्ड' में इनके प्रेम प्रसंगों की संक्षेप में ही चर्चा की गई है। केवल ऊदल के चरित्र में अपेक्षाकृत अधिक रसिकता दिखाई गई है। नरवरगढ़ की लड़ाई में ऊदल और फुलवा का मिलन, ऊदल का स्त्री-वेश धारण करना फुलवा के प्रेम में आकुल होना उसको प्राप्त करने के लिए प्रयत्नशील होना यही प्रेम प्रसंग ऊदल के जीवन में मिलते हैं। ऊदल की व्याकुलता उनकी विवेक-शक्ति को नष्ट नहीं करती तभी तो फुलवा के भागने के लिए उद्यत होने पर भी ऊदल नरवरगढ़ के राजा को परास्त करने के बाद ही फुलवा को ग्रहण करना चाहते हैं। आल्हा और ऊदल का चरित्र जन मानस को मुग्ध करने वाला है। इनके चरित्र से प्रभावित होकर ग्रियर्सन अपने विचार व्यक्त करते हुए कहते हैं कि भारतीय आदर्श को प्रस्तुत करने वाला आल्हा एक धीर-वीर था जो शीघ्र ही क्रोध में नहीं आता था। वह एक रण-कुशल सेनापति था। जब वह क्रोधित होता था तो स्वयं दबाया भी

नही जा सकता था। ऊन्ल एक तेजस्वी रण बाँकुरा था, एक प्रेमी था, परन्तु कठोर भी था। वह एक बहुत ही कट्टर शत्रु था परन्तु साथ ही उदार भी था। वह रसिक एवं प्रेमी था परन्तु पवित्रता को लिए हुए। उसके स्वभाव के कारण उसके प्रति सबकी आत्मीयता जाग्रत हो जाती है।[1]

ऊभदेव का गौना

'आल्हा', 'ढोला', गोपीचन्द बाहरवीर आदि तो अन्तर्प्रान्तीय 'पवारे' हैं, परन्तु 'ऊभदेव का गौना' स्थानीय प्रबन्धगीत है। आल्हा ऊन्ल इनियों की भांति इसमें ऊभदेव अहीर की वीरता की प्रशस्ति गाई गई है। यह अहीरों का जातीय पँवारा है और उनके चारण 'जाचक' जाति के लोग इसे उन्हें सुनाते हैं और उनसे दान दक्षिणा पाते हैं। हो सकता है कि यह पवारा अन्य प्रदेशों में भी गाया जाता हो, परन्तु अब तक लोक साहित्य पर जो कार्य हुआ है उसमें इस प्रकार के किसी पवारे का उल्लेख नहीं हुआ है। अतः यह कहा जा सकता है कि यह कनौजी का अपना निजी प्रबन्धगीत है।

'ऊभदेव गौना' की संक्षिप्त कथा

ऊँचे स्थान पर जामिनी नामक नगर बसा हुआ है। नीचे कलवार बसता है जो अहीरों को मद्यपान कराने में ही अपने जीवन को धन्य समझता है। पास ही 'जाचक' रहते हैं जो वंश का प्रशस्तिगान करते हैं।

एक बार ननद भाभी 'चितसारी' में पमासारी खेल रही थीं। कोई हार जीत मानता ही नहीं था। इस स्थिति में भाभी ने व्यंग्य किया। 'जीवा लाडली! तुम पर अति की गई है। बाल्यावस्था में ही तुम्हारा विवाह हो चुका था। बारह वर्ष बीत गए हैं, पर तुम्हारी ससुराल वालों को 'गौना' कराने की चिन्ता ही नहीं है। तुम्हारी माता मन में दुःखी होते होते पागल हो गई है और मभवा' पर अपने क्रोध का विष प्रकट करती है। जीवा उत्तर देती है कि 'भाभी! तुम्हारा व्यंग्य मेरे कलेजे के आर पार हो गया है।' हे मेरे नगर के ब्राह्मण! जहाँ भेजना चाहती हूँ वहाँ जाओ। मेरे पिता के ब्राह्मण तुम 'जामिनी' नगर को जाओ और मेरे जेठ से जाकर कहो कि वे मेरा 'गौना' करा ले जाएं। क्या वे कुलहीन हो गए हैं अथवा उनका 'कोष' खाली हो गया है या किसी शत्रु द्वारा पराजित हो गए हैं? उनसे कहना कि जीवा पूर्ण युवती हो गई है और अब उसकी शोभा पति के यहाँ रहने में ही है—

'ओंठ समौली रचि गई जीवा की भौंहें करीं कमान।
ओंहन बदरा उमड़ि कुँअरि के नैनन गौरा धार।

---

1 वाटरफील्ड—दी ले आफ आल्हा—ग्रियर्सन द्वारा भूमिका, पृ० २०

दांत किवारे केस घना मुह बेनिन लटक नाग।
मोरा चाहैं बन घनो बन्दर सलगी डार।
गोरिल चाहे पिय रसिया औ सिर लम्बे केस।

जामिनी के लिए घोड़े प्रस्थान कर देते हैं। आगे चलते जाते चरवाहों से जामिनी गाँव के विषय में पूछते हैं। चरवाहे बतलाते हैं कि 'जहाँ आठ बरगद और नौ पीपल के पेड़ हैं वहीं जामिनी गाँव है। ये सारे जानवर 'हरी' के ही हैं। हरी ने बहुत ऊँचा भवन बनवाया है और उसकी चौपाल बड़ी सुन्दर है। हरी तो तुम्हें कारीगरों के 'हाट' में तेगा पर सान धरवाते हुए मिलेंगे अपने बन्धु-बान्धवों के साथ तलवार के यहाँ मैदान करते हुए मिलेंगे चन्दन चौपाल में कचहरी करते हुए मिलेंगे।'

हरी को समाचार दिया जाता है कि धावड़ नगर से टीकम पाण्डे गौने का लगन लिखकर लाए हैं। ऊदल अपने बड़े भाई 'हरी' से आज्ञा माँग कर गौने के लिए प्रस्थान करने को घोड़ी सजाते हैं—

तातो मीरा नीर मिलाय्रो घोड़ी मलि मलि दयो हनवाय।
लम्बे कंकवा ईसपान को सवर केस दए झरवाय।
मूल डारि दई मखमल वाली जामें तारकसी को काम।
तंग खिचाय दओ रेसम को दए चाँदी के रकब टंगाय।
जग डारि दई जागन में घुंघरू मुक्तन दये कराय।
लड़ के कोड़ा रेसम वालो घोड़ी दाबि भये असवार।
घोड़ा नचावें रंगवती जस्से वन में नाच मोर।
कारी बदरिया केरे लक्षन घोड़ी महर बाँधि रहि जाय।
धन धन कहियें घोड़ी चाउरि जामें धन्न कुँवर असवार।

घोड़ी के सजाते समय छींक होती है। आकाश में चारों अपशकुन की सूचना देती हैं। हरी की पत्नी ऊदल को जाने से रोकती है। भाई कहता है कि मैं तुम्हें बार-बार रोकता हूँ तुम मत जाओ। मैं तुम्हारे लिए एक क्या चार चार पत्नियाँ ला सकता हूँ, तुम इस गौने के लिए मत जाओ। ऊदल उत्तर देता है—

भूँख गए भोजन मिलै जाड़ा गए लिवार।
वस्त्र गए तिरिया मिलै तीनों देय बहाय।
इतनी तिरिया छोड़ियाँ काए तैं जीजा ते रचा विवाव।

जब ऊदल किसी प्रकार से भी नहीं मानता तो भाई कहता है कि ऊदल रास्ते में पत्थर वाले गाँव अगौरा होकर तुम मत जाना, क्योंकि वहाँ अपना शत्रु जस्सा पम्मार रहता है। ऊदल चल देते हैं। रास्ते में जस्सा पम्मार उनकी घोड़ी को

देखकर मुग्ध हो जाता है और उसे खरीदने का प्रस्ताव करता है। ऊभदेव उसे किसी मूल्य पर भी देने को तयार नही होता। परिणामत शत्रुओ से घिर जाता है। युद्ध म वह भिड पडता है और शत्रुओ का शीघ्र ही विनाश करके आगे बढ जाता है। 'जल्ला परमार' के अनेक सिपाही खेत रहते हैं और वह पश्चात्ताप की अग्नि म प्रज्वलित होने लगता है तथा भविष्य म प्रतिशोध लेने की योजना बनाता है।

ऊभदेव ससुराल पहुँचता है। अनेक विधि विधानो के साथ गौने के लोकाचारो का पालन होता है और विदा करवा कर वह अपने घर के लिए प्रस्थान करता है। अपनी पत्नी के साथ वह पुन शत्रुओ द्वारा घेर लिया जाता है। ऊभदेव युद्धरत हो जाता है और उसकी पत्नी हरी को सहायता के लिए समाचार भेज देती है। हरी भी अपने दल बल के साथ आ जाते हैं। भीषण युद्ध होता है—

लई कटारी ऊभदेव ने जो बाघा पर दई चलाय।
नाक काटि के बाघदेव की ओ घोडा के गई समाय।
तमकि ताजनो दओ घोडा के घोडा आसमान उडि जाय।
धीरे धीरे घोडा उतरो ओ होदा प अडाए पाय।

परतु शत्रु अधम-युद्ध करते हैं और सभी अकेले ऊभदेव पर टूट पडते हैं। वह अनेको को जीवन लीला समाप्त करता है और अत मे स्वय भी वीर-गति को प्राप्त करता है।

जीवा चिता सजाती है और पति के साथ सती होने क लिए स नद्ध है। इसी बीच म शकर-पार्वती भ्रमण करन क लिए निकलते हैं। पार्वती जीवा पर दयार्द्र हो जाती हैं। शकर ऊभदेव को जिला देते हैं।

उपयुक्त पवारा भी आल्हखण्ड की वीरता की परपरा म ही आता है। इसम भी युद्ध का कारण आत्म मर्यादा और विवाह है। ऊभदेव भी अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा क लिए अपने प्राणो को न्योछावर करने को तयार हो जाता है पर घोडी को शत्रु को देने को किसी मूल्य पर भी राजी नही है। लौटते समय वह दूसरे माग द्वारा जा सकता था पर यह भी उसकी प्रतिष्ठा के अनुकूल नही था। वह चरित्र का भी धनी था, क्योंकि अपनी विवाहिता पत्नी का परित्याग करके किसी अन्य स्त्री से परिणय करना उसे सर्वथा अस्वीकार था।

कनौजी के प्रेम गाथात्मक पवारे

कनौजी क्षेत्र म जितने भी पवारे पाए जाते हैं, उनम अधिकाश मे वीर भाव का प्राधान्य है। कुछ ऐसे भी हैं जिनम वीरता और प्रेम के प्रसग आते तो हैं पर उनम अलौकिक तत्वो का प्राधान्य है। वीरगाथाओं के प्रसग म देखा ही जा चुका है। कि उनम भी प्रेम के प्रसग पर्याप्त मात्रा म आए हैं पर वहाँ भी वीर भाव की अपेक्षा

उनका स्थान गौण ही है। इस क्षेत्र में केवल एक ही पँवारा मिलता है जिसे विशुद्ध रूप से प्रेम गाथात्मक पवारों की कोटि में रखा जा सकता है और वह है 'नवा बजारा'। इसमें न तो प्रेम के प्रसंग में किसी युद्ध का ही वर्णन है और न पग पग पर अलौकिक तत्वों का समावेश। इसमें पति पत्नी का आदर्श प्रेम, पत्नी की सहनशीलता, उसकी मातृत्व भावना—सभी का विशद वर्णन किया गया है। इसमें गार्हस्थ्य जीवन के भी सुन्दर चित्र प्राप्त होते हैं।

कथानक का संक्षिप्त रूप

प्रारम्भ में गायक गणेश, सरस्वती, गुरु आदि की वन्दना करके मुख्य कथा का प्रारम्भ करता है। जादो साहु की पुत्री जमामति का बाँसडीह के बजार सम्मू साहु के पुत्र नवा साहु के साथ विवाह हो जाता है। जमामति का बाँसडीह के बजार सम्मू साहु के पुत्र नवा साहु के साथ विवाह हो जाता है। जमामति का अभी 'गौना' नहीं हुआ है। एक रात्रि में वह स्वप्न देखती है कि उसका पति बहुत दिनों के लिए 'परदेस' जा रहा है। स्वप्न देखते ही वह चौंककर जाग उठती है। उसके मन में अनेक प्रकार की शंकाएँ व्याप्त हो जाती हैं और वह अपनी भाभी को वस्तुस्थिति का ज्ञान कराती है और उससे अनुरोध करती है कि उसका गौना हो जाना चाहिए। भाभी को अपनी ननद की स्पष्टवादिता पर आश्चर्य होता है। वह अपनी सास से इस सम्बन्ध में बात करती है। सास अपनी बहू की बातों पर विश्वास नहीं करती और उसे बुरा भला कह कर डाँट देती है। जमामति संकोच के कारण अपनी माता से सारी बातें नहीं कह पाती और अपने पति के लिए पत्र भेजती है कि वह शीघ्र ही गौना करा ले जाए। दूसरी ओर नवा बजारा का पिता अपने पुत्र के पूर्ण यौवन को देखकर उसके गौने के लिए नाई को तीन बार तिरहुत भेजता है पर जमामति का पिता तीनों बार नाई को यह कह कर लौटा देता है कि उसकी पुत्री अभी गौने के योग्य नहीं हुई है।

यौवन के उन्माद से पूर्ण नवा के हृदय में अपनी पत्नी से मिलने की आकुलता उत्पन्न होती है। उसे इस बात पर विश्वास नहीं होता कि उसकी पत्नी अभी बालिका ही है। अतः वह छद्मवेश धारण करके स्वयं पता लगाने के लिए चल देता है। साथ में 'मनिहारी'[1] का सामान लेकर और बाँसडीह से चलता हुआ तिरहुत पहुँचता है और जमामति के घर के निकट मनिहारिन का वेश धारण कर चूड़ी बेचने बैठ जाता है। कुछ युवतियाँ इस मनिहारी के अपूर्व सौन्दर्य को देखती हैं और इसकी चर्चा जमामति से करती हैं। इसी मनिहारी के दर्शन के लिए जमामति को भी उत्सुकता होती है और वह अपनी सहेलियों और भाभियों को लेकर सामान खरीदने के लिए पहुँच जाती है। एक दासी एक चोली का मूल्य पूछती है। मनिहारी कहती

१ स्त्रियों के पहनने की अनेक प्रकार की चूड़ियाँ, बेंदी, सिन्दूर, चोली, सीप आदि।

है कि जो तुम में मालकिन हो मैं उसी से मोल भाव करूंगी। जसोमति सामने आ जाती है। मनिहारी उससे कहती है कि मेरे 'सौदे' का मूल्य बाजार के मूल्य से भिन्न है। तुम मुझे केवल एक चुम्बन दे दो और मनमाना सौदा ले लो। वह आगे कहती है कि मैं 'नका बजारा' की मित्र हूँ उससे जाकर कह दूंगी कि तुम अपनी पत्नी का गौना लेने नहीं जाते। वह पूर्ण युवती हो गई है और बाजार बाजार घूमती है।' इन शब्दों को सुनकर वह मनिहारी को ध्यान से देखती है और पहचान करती है कि उसका पति छद्मवेश धारण करके यहां आया है। वह लजा कर अपने अंतःपुर में भाग जाती है।

'नका' अपने पिता को बतलाता है कि उसकी पत्नी अब पूर्ण युवती हो गई है और अब वह उसका 'गौना' लेने के लिए जाना चाहता है। पिता आज्ञा दे देता है। नैका ससुराल जाता है। उसकी वहां बहुत सेवा शुश्रूषा की जाती है और अश्रुपूर्ण वातावरण में जसोमति के माता पिता अपने हृदय पर पत्थर रखकर अपनी पुत्री को विदा कर देते हैं। 'नका' 'सोहागरात' भी नहीं मना पाता है कि इतने में ही उसका पिता उसको आज्ञा देता है कि व्यापार करने के लिए आज ही 'मोरंग' देश चलने को तैयार हो जाओ। सोलह सौ बैलों पर भाँति भाँति की व्यापारिक वस्तुएं लादकर वह चल पड़ता है। संध्या होने पर वृक्षों के नीचे पड़ाव डाल देता है। जिस वृक्ष के नीचे 'नका' विश्राम कर रहा था, उसके ऊपर बैठे हंस-हंसिनी बात कर रहे थे। वह कह रहे थे कि आज की रात्रि बहुत ही शुभ है। आज की रात्रि में पति पत्नी के समागम से गुणी और सुन्दर पुत्र उत्पन्न होगा। नका की अपनी पत्नी के पास जाने की लालसा तीव्र हो गई। उसने हंस से अपनी प्रियतमा तक पहुँचाने के लिए प्रार्थना की। हंस ने उसे अपनी पीठ पर बिठाकर उसकी पत्नी के पास उसे पहुँचा दिया। उसने अपनी पत्नी के साथ सोहागरात मनाई और अपने आने के प्रमाणस्वरूप अपनी अंगूठी दे गया और पुनः हंस की पीठ पर बैठ कर वापस चला गया। उसने अपने छोटे भाई को भी अपने आने की बात बतला दी, जिससे कि आगे चलकर किसी प्रकार से उसकी पत्नी पर संदेह न किया जाए।

कुछ दिन पश्चात् 'जसोमति' के गर्भ के लक्षण स्पष्ट हो चले। ननद ने उसके चरित्र पर सन्देह किया। जसोमति ने अपने पति के आगमन की बात सुनाई और प्रमाणस्वरूप अंगूठी भी दिखलाई, परन्तु ननद ने उस पर विश्वास नहीं किया और घर से निकाल दिया। जब ननद को समाचार मिला कि जसोमति के पुत्र उत्पन्न हुआ है, तब उसने नवजात शिशु को कुम्हार के आवाँ में डलवा दिया और जसोमति को मार डालने के लिए हत्यारों को भेजा। जसोमति ने हत्यारों से कह दिया कि मेरे मार डालने से तुम्हें क्या लाभ होगा। इससे तो यही अच्छा है कि तुम मुझे किसी के हाथ बेच दो। इससे तुम्हें पैसा भी मिल जाएगा। हत्यारा ने ऐसा ही किया। उधर बालक पर भी किसी प्रकार कुम्हार की दृष्टि पड़ गई और उसने उसका पालन पोषण

किया। 'जसोमति' को बाजार में सयोग से जमा के बहनोई ने खरीद लिया और उसके यहाँ रसोई बनाने का काम उसे सौंप दिया गया।

इधर तो जसोमति अपने दुर्भाग्य के दिन काट रही थी उधर 'नैदा' को मोरंग की जादूगरनियों ने अपने वश में कर रखा था और नैदा के हर प्रयत्न को असफल कर देती थीं। इस प्रकार पतिव्रता नारी की दुर्दशा देखकर दुर्गा को दया आ गई और उन्होंने नैदा को जादूगरनियों के बंधन से मुक्त करा दिया। व्यापार के लिए नैदा ने अपने बहनोई से ऋण लिया था उसी ऋण को चुकाने के लिए वह अपने बहनोई के यहाँ गया और वहाँ अपनी पत्नी को देखा। अपनी पत्नी के दुश्चरित्र के समाचार से अवगत होकर उसे बहुत ही कष्ट हुआ। इस समय वह अपने घर आया और कुम्हार के यहाँ से बालक को भी मँगवाना चाहा। कुम्हार की पत्नी ने कहा कि यह मेरा ही पुत्र है। परीक्षा ली गई। जसोमति के स्तन से दुग्ध धारा फूट पड़ी और वह बालक के मुँह में जा गिरी। नैदा ने अपनी बहन को अंधे कुएँ में डलवा कर मरवा डाला। ठाकुर सुनि के दिन वापस आ गए जिस प्रकार उनके दिन वापस आए उसी प्रकार सबके दिन फिरें।

प्रस्तुत पवारा भोजपुरी में भी अधिक लोकप्रिय है। इसकी कथावस्तु में आए हुए स्थान प्रायः भोजपुरी प्रदेश के हैं। इन दोनों दृष्टियों से ऐसा प्रतीत होता है कि इसका मूल भोजपुरी प्रदेश का ही रहा होगा और वहीं से इसका प्रचार अन्य प्रदेशों में हुआ। कनौजी में जो रूप इस पवारे का मिलता है वह भोजपुरी से बहुत अधिक समानता रखता है।[1] कथानक के मूल तत्व प्रायः एक जैसे ही हैं। कथन शैली में अन्तर है और इसके साथ ही कुछ घटनाएँ और उनके विस्तृत वर्णन में थोड़ा भेद अवश्य है। पात्रों के नामों में किसी प्रकार का भेद नहीं है।

इस 'पवारे' में व्यापारियों का परदेश जाना, वहाँ जाकर अनेक प्रकार के कष्टों को सहना, उनकी स्त्रियों का विरहाग्नि में प्रदीप्त होना, समाज की तरह तरह की लांछना एवं यातनाओं को सहना इन सबका स्वाभाविक चित्रण हुआ है।

इस लोक प्रबंध का चरित-नायक नैदा बजारा है। उसके चरित्र के तीन रूपों का इसमें उद्घाटन हुआ है—१ उसकी रसिकता, २ उसका प्रेमी रूप, ३ स्वयं चरित्रवान एवं अपनी पत्नी के चरित्र पर पूर्ण विश्वसनीयता। तभी तो बारह वर्ष के पश्चात् लौटने पर अपनी पत्नी पर लगाए गए आरोपों पर किंचित मात्र भी ध्यान नहीं देता। पति से अधिक सबल चरित्र पत्नी का इसमें दिखलाया गया है। प्रारम्भ में ही वह उस परम्परा का विरोध करती हुई दिखलाई गई है जिसमें स्त्रियाँ अपने

---

१ तुलना के लिए देखिए—डा० सत्यव्रत सिन्हा—भोजपुरी लोकगाथा, पृ० १२७ ३०

मुँह से अपनी सुसराल जाने का नाम भी नहीं ले सकती। अपने पति से उसका प्रथम मिलन एक ओर तो उसकी निर्भीकता और दूसरी ओर स्वाभाविक लज्जा भावना का द्योतक है। बारह वर्ष तक अनेक यातनाओं से तप कर वह कुन्दन बन जाती है और अपने चरित्र की रक्षा करती है। अपनी मातृत्व परीक्षा में भी वह सफल होती है। अन्त में उसे खोया हुआ पति, खोया हुआ पुत्र, खोयी हुई प्रतिष्ठा और खोया हुआ वैभव, सब कुछ मिल जाता है।

कनौजी के अलौकिक तत्वों से युक्त पँवारे[1]

इस क्षेत्र में अलौकिक तत्वों से युक्त पवारों की संख्या अन्य कोटि के पवारों की अपेक्षा कहीं अधिक हैं। 'गोपीचन्द', 'भथरी', जाहर पीर' (गूगा पीर या गूगा गुरु),'जगदेव'[2],'ढोला' पूरनमल और 'धनइया' ये पवारे इस प्रदेश में अधिक लोकप्रिय हैं। संख्या में अधिक होने पर भी 'आल्हा'—जैसी व्यापकता और लोकप्रियता इनको नहीं मिल पाई है। इन पँवारों के स्वरूप और विशेषताओं को उद्घाटित करने के लिए यहाँ 'धनइया' पँवारे का विश्लेषण प्रस्तुत किया जा रहा है। जो विशेषताएँ इस पँवारे में उपलब्ध होती हैं प्रायः वैसी ही या उनसे मिलती जुलती विशेषताएँ इस कोटि के अन्य पँवारों में भी मिलती है।

धनइया

'गोपीचन्द', रीमथ ,'आल्हा', ढोला—ये सभी अन्तर्प्रान्तीय पँवारे' हैं, परन्तु 'धनइया' कनौजी का अपना स्थानीय पँवारा' है। भारतीय लोक साहित्य में अब तक जितने भी संग्रह और अध्ययन प्रकाशित हुए हैं उनमें इस नाम के किसी 'पँवारे' का कहीं भी उल्लेख नहीं हुआ है। बंगला और मैथिली में बिहुला विषहरी शीर्षक पँवारों से बहुत कम मात्रा में इसका साम्य देखा जा सकता है। इन दोनों

---

१ क्षत्रिय वीर होने के कारण सामान्य रूप से सोचा जा सकता है कि इस चरित्र को वीरगाथात्मक पँवारों में स्थान मिलना चाहिए, परन्तु इसके चरित्र में वीरता तो है ही, उससे अधिक इसके चरित्र के साथ अलौकिक घटनाओं का सम्बन्ध जोड़ा गया है, अतः इसे पवारों के तीसरे वर्ग में रखना ही सम्भवतः अधिक समीचीन है।

२ इस पँवारे को भी सामान्यतया लोग प्रेमकथा के रूप में मानते हैं परन्तु लोक साहित्य अन्वेषक को इसमें प्रेम का अंश उतना महत्वपूर्ण नहीं प्रतीत होता जितना कि अलौकिक कार्यों का जैसे मनुष्य को मक्खी बना देना, दानव के प्राणों का अन्य वस्तु में निवास, मनुष्य द्वारा देवताओं को पराजित करना, रक्त की बूँदों द्वारा मरे हुए को जिलाना आदि।

पँवारा में 'बिहुला' स्त्री रूप में वर्णित है जबकि भोजपुरी पँवारे में वह इन्द्र की अप्सरा 'श्याम परी' है जो कि बिहुला के रूप में अवतार लेती है। कनौजी में इस कथा की नायिका भी पद्मिनी स्त्री है। इसके अतिरिक्त कथानक या उद्देश्य किसी में भी दोनों का कोई साम्य नहीं है। इस प्रबन्ध गीत को लोक गायक द्वारा 'धनइया' नाम इसलिए मिला है, क्योंकि सर्प से डसे हुए अपने मृत पति को जिलाने के लिए पद्मिनी घड़ा की नौका या धनइया द्वारा बंगाल के लिए प्रस्थान करती है।

संक्षिप्त कथा

कथा का प्रारम्भ मंगलाचरण से होता है—

येही नग्र की धुरुआं भवानी तुम्हरे लेव हम नाँव।
पहिले हम सुमिरें रामचंद को जिन्ने पिंडी दई बनाय
जिन्ने पिंडा जो बनाई।
दुसर हम सुमिरें मात पिता कुच्छा लिए नौ मास
धरम की मय्या तुम हमारी
गुरु को हम गामें गुरु मनामें जिन्ने विद्या दइ अधिकाय
धरम के गुरु तुम हमारे।
गुरु को हम गामें गुरु मनामें नित उठि गंगा कर असनान।
सबको हम गामें सबको मनामें सबके हम जान नहिं नाव।
जो जो अच्छर भूल सरसुती कंठ विराजो तुम आय
मइया कंठ तुम विराजो।

मूल कथानक इसके पश्चात् प्रारम्भ होता है। एक ओर गंगा और दूसरी ओर यमुना बहती है बीच में वसपुर नाम की राजधानी है। यहाँ के राजा गजाधर हैं। रानी के गर्भ की अवधि पूरी हुई और कन्या ने अवतार लिया। जन्म लेते ही कन्या ने माता से कहा—हे माता, तुम मेरी बात ध्यान देकर सुनो। रूप (चाँदी) के छुरे से सोने के खप्पर में मेरा नाभि-नाल अपने हाथ से काटना। यदि 'धनकुन' ने मुझे छू लिया तो मेरे प्राण रूपी हँस उड़ जाएगा। रानी ने बाँदी को आज्ञा दी कि वह कचहरी जाकर राजा को समाचार सुनाए कि कन्या ने जन्म लिया है। दौड़कर बाँदी कचहरी में खम्भे की आड़ में खड़ी होकर कन्या जन्म का शुभ समाचार राजा को सुनाती है। इस समाचार को सुनते ही राजा उलटे रस हुए नगाड़ा का मौजा करा देता है और असंख्य धन का दान करता है। राजा ने पंडित को बुलवाकर कन्या के लग्न पूछे। पंडित ने बतलाया कि कन्या ने शुभ मुहूर्त में जन्म लिया है और ज्योतिष के अनुसार उसका नाम पद्मिनी होना चाहिए। इसी बीच में कन्या अपनी माता से कहने लगी कि हे माता! मेरे लिए वर की खोज कराओ। माता और पिता दोनों असमंजस में पड़ जाते हैं कि 'सिरकी के सूप में लेटी हुई कन्या वर

माँग रही है। न जाने विधाता का यह कौन सा विधान है ! वर की खोज के लिए जाते हुए नाई और ब्राह्मण से कन्या बोलती है कि वर खोजने के लिए तुम पूर्व और पश्चिम दिशा को जाना, उत्तर और दक्षिण दिशा को नहीं जाना। चार दिन की यात्रा के पश्चात दोनों वासुकि राजा की राजधानी 'बसाबसेली' पहुँचे। कचहरी में बैठे हुए वासुकि ने इनका नाम ग्राम और आने का उद्देश्य पूछा। नाई ब्राह्मण ने बतलाया। वासुकि ने बाँदी द्वारा अपने पुत्र 'नगमुनिया' को बुलाया और नाई ब्राह्मण से आग्रह किया कि वे नगमुनिया का टीका चढ़ा दें। बेचारा नाई सोचता है कि अब काल निकट आ गया है। इसी समय उसे एक बात सूझ जाती है। वह कहता है कि हम लोगों के लिए पहले लोटे में पानी मँगवा दो, हम दिशा मैदान जाते हैं। इसी बहाने वे दोनों भागते हैं और नगमुनिया उनका बारह कोस तक पीछा करता है। वह नाई ब्राह्मण से घोषणा करता हुआ कहता है कि संसार में मैंने ऐसा साहस किसी में नहीं देखा जो मेरे आगे पदिमनी से विवाह करे।

वर खोजने के लिए फिर वे दोनों 'निबानिबौरी' के राजा सूरजमल के पुत्र 'खरगलाल' के टीका चढ़ाने के लिए गए और अपना प्रस्ताव राजा के सामने प्रस्तुत किया। राजा ने अपने पुत्र को बुलवाया। पुत्र टीका चढ़वाने के लिए तयार नहीं था अतः राजा ने उसकी एक भी न मानी और विवाह पक्का हो गया। कुँअर खरगलाल रोते रोते यही कहता रहा कि अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है, टीका वापस कर दो। नाई ब्राह्मण ने लौटकर टीका का समाचार राजा गजोधर को सुनाया।

बारात की तैयारी होने लगी। मंडप गड़ा, त्योंही छींक हो गई। खरगलाल ने फिर कहा कि अब भी टीका वापस कर दो। बारात धूम धाम से चली, उसका विस्तार १२ कोस तक था। उधर गजोधर भी बारात के स्वागत की तयारी करने लगा। नगमुनियाँ भी अपने षडयन्त्र में जुटा हुआ था। उसने सारे सर्पों की सभा की और यह निश्चय किया गया कि विवाह मंडप के नीचे ही खरगलाल को डस लिया जाय। मटिहा सुनातर' साँप को यह उत्तरदायित्व सौंपा गया। वह अवसर निकालकर मंडप के पास रखे हुए कलश के नीचे छुपकर बैठ गया।

बारात का स्वागत किया गया। 'एपन बारी' द्वार पूजा, वर पूजा आदि कार्य सम्पन्न हुए। सब कार्यों के सम्पन्न होते होते कोई न कोई अपशकुन होता रहा। वर वधू मंडप के नीचे लाए गए। 'गठबन्धन' हुआ। भाँवरें होने लगीं। पाँचवीं भाँवर होते समय 'मटिहा' ने कुँअर खरगलाल को डस लिया और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई। चारों ओर हाहाकार मच उठा। पदिमनी भी बिलखने लगी पर तु उसने धैर्य धारण करके अपने ससुर से कहा कि आप क्यों रोते हैं। मैं आपके पुत्र को जीवित कराने का प्रयत्न करूँगी। वह 'धनइया' द्वारा यात्रा का प्रबंध करने लगी। उसने हरे हरे बाँस कटवाए। वहाँ से वह पाताल गई सर्पों ने उसे सहायता दी और कहा कि रेशम के रस्से और सूजे से नगमुनिया को नाथ लो। नगमुनिया नाथ

लिया गया। कुम्हार के यहाँ से १२ घड़े गड़रिया के यहाँ से दूध-दही (जब तक दूध-दही में सुरक्षित रखा जायगा) लेकर उसे गंगा घाट पहुँचवाया। इसके पश्चात 'जनवासे' में पहुँची। अपने ससुर और सम्बन्धियों को दुःख में उससे देखा न गया और उसने कहा—हे स्वामी यदि मुझमें सत्त हो तो यह सारी बारात पत्थर हो जाए और जब बारह वर्ष पश्चात मैं अपने पति को जीवित करके वापस लौटूँ तब यह पुनर्जीवित हो जाए और मेरे स्वामी को पाकर अपार आनन्द में मग्न हो जाए।' बारात पत्थर बन गई। इसके पश्चात वह 'रंगमहल' गई। वहाँ दीपक जलाया और कहा 'यदि वसति धरा ईश्वर मेरे स्वामी और मुझमें सत्त है तो यह दीपक चन्द्रमा की ज्योति की भाँति १२ वर्ष तक प्रकाशित होता रहे।

इसके पश्चात धनइया सजाई गई। नगमुनिया को उसमें जोत दिया गया। गंगा घाट तक उस मुर्दे में भी डंडे की मार खाकर धनइया को खींचना पड़ा। गंगा में धनइया डाल दी गई और वह तीव्र गति से चल दी। दिन महीने और वर्ष चलते चलते बीतते रहे। धनइया मानपुर पहुँची। वहाँ के राजा ने पद्मिनी को देखकर उसके साथ विवाह करने की इच्छा से उसे रोकना चाहा। पद्मिनी ने ईश्वर का स्मरण किया और अपने सत्त की बाजी लगाई। इधर राजा पद्मिनी का हस्तगत करने के लिए बढ़ा उधर मानपुर अग्नि में धू धू जलने लगा। पद्मिनी ने राजा से कहा कि पापी क्या देख रहा है? राजा ने समझ लिया कि यह कोई अलौकिक नारी है। अतः तुरन्त लौट गया। इसी प्रकार अनेक बाधाएँ आईं और उनका निराकरण हो गया और वह डुडुकमठा पहुँच गई। किनारे पर ज्योंही धनइया लगी कि सरगनाग के ऊपर धाविन की दृष्टि पड़ गई और उसने उसे अपने कान की बाली बना लिया।

पद्मिनी पूरे एक वर्ष तक जेठ की कड़ी दुपहरी और माघ की कड़ी सर्दी में अपने स्वामी को ढूँढ़ती हुई 'डुडुकमठा' में भटकती रही परन्तु वह न मिला। उसने भवानी की आराधना की। भवानी उस पर प्रसन्न हुईं और उन्होंने अपने घर में पद्मिनी को शरण दी।

इधर धाविन 'सरगनाग' को अपने कान की बाली बनाकर ही सन्तुष्ट नहीं हुई। उसकी इच्छा हुई कि वह पद्मिनी को अपनी सौत बनाए। भवानी के प्रभाव के कारण भवानी को धाविन पर क्रोध आ गया। उसने कहा कि मेरी बहन को तुम अपनी सौत बनाना चाहती हो तुम्हें मैं अभी मार डाल रही हूँ। धाविन घबरा गई और पद्मिनी के लिए 'त्राहि त्राहि' कहकर क्षमा-याचना करने लगी। पद्मिनी भी आ गई और उसने भवानी को रोकते हुए कहा कि इसे मारो नहीं, इसकी चोरी का भेद खुल जाना चाहिए। धाविन ने तुरन्त जादू का गुटका चलाया और सामने कुँवर सरगनाग जीवित होकर प्रकट हो गए।

पद्मिनी की प्रसन्नता की सीमा न रही। ज्योंही वे दोनों लोग घर लौटे

'नगिया' नाग की नेलिन नाग म मिल गई और उसने खरगलाल' को कौड़ा का बल बना लिया। पूरा वष बीत गया पर पद्मिनी को खरगलाल का पता नही चला। इसी बीच म उसे धोबी मिला और उसकी सहायता से उसने अपने पति को फिर से प्राप्त किया। इसी प्रकार विपत्तियां आती रही। क्रमश मालिन तमोलिन ने भी उसे 'बीरा गुटका' से अपने वश म कर लिया और हर बार धोबी ने ही सहायता दी। अत म पदिमनी और 'खरगलाल गुरु धन्वतरि के पास विद्या सीखने के लिए पहुँच गए। चौदह विद्याओं को सीखकर जब उन्हें निश्चय हो गया कि वे अब किसी भी विपत्ति से बचने के लिए पूर्ण समथ हो गए हैं, तब अपने देश वापस आने के लिए तयार हो गए।

सापो ने गूँथा से गुथी हुई तथा नगमुनिया द्वारा खीची जाने वाली धन्इया में बडी प्रसन्नता के साथ पदि्मनी और खरगलाल अपने देश के लिए चल पडे। माग म पापपुर के राजा ने पदिमनी का देखकर उस अपनी पत्नी बनाना चाहा। ज्योंही उसके मस्तिष्क म यह बात आइ त्योंही वह पछाड खाकर गिर पडा। रानी के अनुनय विनय पर पद्मिनी न उसकी मूर्च्छा को दूर किया। इसी प्रकार अन्य आपत्तियो का निवारण करती हुई पद्मिनी अपने सहित बकसुर वापस आ गई।

माता पिता और समस्त नगर निवासी प्रसन्न हुए। कुछ दिन बकेसुर रहकर खरगलाल अपनी मातभूमि निवा निवौरी' वापस गए और वहा से फिर से बारात लाकर उल्लासपूण वातावरण म विवाह के विधि विधाना का आयोजन होने लगा। उधर नागमुनिया ने फिर से षड्यन्त्र रचा। 'भावरें होन लगीं। पहली भावर होते ही कुअर खरगलाल न नगमुनिया पर पहली 'सीक' फेंकी दूसरी तीसरी बार भी। पद्मिनी अब घूमकर नगमुनिया को देखती है और चुनौती देती हुई कहती है कि पहली बार भावरें लेते हुए तुमने मेरे पति को मृत बना दिया था अब मैं सचेत हूँ और तुम मेरे पति का बाल भी बाँका नही कर सकते। सातो भावरो के पूरे होते ही पवनिया साप न खरगलाल को डस लिया। खरगलाल और पदिमनी तो विद्या सीखकर आए ही थे। अत उन्होंने विष के प्रभाव को क्षण भर म ही दूर कर दिया। विवाह सकुशल सम्पन्न हो गया। दान दहेज के अपार धन और विविध प्रकार की वस्तुओ को लेकर बारात विदा हो गई। पद्मिनी और खरगलाल सुखपूवक अपना जीवन व्यतीत करने लगे। जिस प्रकार इनके दिन फिरे उसी प्रकार सबके दिन फिरें।

पँवारा समाप्त करके गायक देवी देवताओ के प्रति आभार प्रकट करता है क्योंकि उन्हीं के द्वारा गाने में उसे निर्विघ्न सफलता मिली है। जिन जिन देवताओ का उसने प्रारम्भ म स्मरण किया था उनसे प्रार्थना करता है कि वे अपने अपने घर वापस जाएँ। अन्त म वह फिर कृतज्ञता प्रकाशन करके विराम लेता है।

कथानक पर विहगम दृष्टि डालकर हम इस परिणाम पर पहुँचे हैं कि समस्त

पास छपे हुए रूप से कहीं सुन्दर और ओजस्वी वाणी है, यह किसी का भिखारी क्या बन ?

'पँवारो' के रचयिता अज्ञातनामा होते हैं। इस तथ्य को दृष्टि म रखकर कहा जा सकता है कि सभवत ये ऐसे युग की रचना होंगे जबकि व्यक्ति की सत्ता समाज की सत्ता से घुली मिली थी। इनके रचयिता एक बार इनका सूत्रपात करके उन्हें समाज के हाथ सौंप देते होंगे और कालान्तर म उनका व्यक्तित्व समाप्त हो जाता होगा। कनौजी मे प्राप्त लोक साहित्य के सभी लोगों की भाँति इस अग पर यह सिद्धान्त लागू होता है। इसम जितने पँवारे मिलते है सबके रचयिता अज्ञात नामा ही हैं आल्हा के सम्बन्ध म यह अवश्य कहा जाता है कि उसका रचयिता जगनिक है यह बात साहित्य के इतिहासकारो ने कही है इसको पुष्टि न तो जनता करती है और न गायको द्वारा गाए जाने वाले आल्हा म ही रचयिता के रूप म उसका नाम आता है।

समस्त लोक की वस्तु होने के कारण और लोगों की जिह्वा पर निवास करने के कारण इनका कोई प्रामाणिक मूल पाठ न मिले, यह स्वाभाविक ही है। कनौजी म प्राप्त 'आल्हा' 'ढोला' 'धनइया' आदि के जितने भी गायक है, उतने ही रूप इनके भी उपलब्ध होते हैं, कभी कभी इनम थोडा हो अन्तर होता है और कभी कभी पर्याप्त मात्रा म।

लोक के कठ म निवास करने और एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी द्वारा प्राप्त किए जाने के कारण पँवारो की घटनाओ चरित्र सम्बन्धी वक्षो म भी हेर फेर होता रहता है और इस प्रकार ऐतिहासिक पात्र और एतिहासिक घटनाएँ भी मूल रूप से विकृत हो जाती है और उनकी एतिहासिकता सदिग्ध हो जाती है।

ऊपर जिन विशेषताओ पर विचार किया गया है उनका पँवारो की प्रकृति से सम्बन्ध है। रचनाकार रचना करते समय यह नही सोचता कि वह जो कुछ कह रहा है उसका प्रसार मौखिक परम्परा से होगा या नहीं उसके मन पाठ म विकृतियां आएगी या नही, उसका अपनी कृति से व्यक्तित्व समाप्त होगा या नही अथवा उसके पाठ एव घटनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से सन्दिग्ध हो नही मानी जाएगी। अत ये सारी विशेषताएँ प्रकृतिगत विशेषताओ के अन्तगत रखी गई हैं—इनम स्वभावत ही ये तत्व आ गए हैं रचनाकार ने सचेष्ट होकर ऐसा नही किया। परन्तु इन पँवारो म कुछ एमी भी विशेषताएँ उपलब्ध होता है जिनम रचनाकार सजग होकर अपनी कृति म कुछ शिल्प वशिष्टय लाना चाहता रहा होगा। इसी तथ्य को ध्यान म रखकर उस वशिष्टय का शिल्पगत विशेषताओ के अन्तगत अध्ययन किया जा रहा है।

शिल्पगत विशेषताएँ*

सुमिरन

कनौजी में प्राप्त समस्त 'पँवारे' 'सुमिरन' (देवी देवताओं आदि का स्मरण) से प्रारम्भ होते हैं। शास्त्रीय भाषा में उसे 'मंगलाचरण' कहा जा सकता है। गायक और पवारों के भेद के अनुसार उनके सुमिरन में भी भेद होता है। किसी में किसी देवता की वन्दना की जाती है किसी में किसी की। सामान्यतया गणेश, राम, शंकर, सरस्वती, दुर्गा, गोरखनाथ, गुरु, पृथ्वी, माता पिता आदि से कथा के निर्विघ्न समाप्त होने की प्रार्थना के पश्चात मूल कथानक प्रारम्भ होता है। 'धनइया की मढ़िया' कथा में 'सुमिरन' का उदाहरण दिया जा चुका है। इसी से मिलते-जुलते सुमिरन अन्य पँवारों में भी उपलब्ध होते हैं।

अन्त में मंगल कामना

जब मूल कथानक समाप्त हो जाता है तो गायक श्रोताओं, देवताओं आदि के प्रति आभार प्रकट करता है और श्रोताओं के लिए मंगलकामना करता है। इस विशेषता के उदाहरण कनौजी में प्राप्त सभी पँवारों में पाए जाते हैं।

गेयता

वीरगीतों की भाँति इन पवारों के लिए गेयता अनिवार्य होती है। इनमें उच्च साहित्यिक रचना, भावों की सूक्ष्म अभिव्यंजना, वक्रोक्ति आदि का अभाव रहता है परन्तु सारे अभावों की पूर्ति अकेली गेयता ही कर देती है। इनकी लोकप्रियता का सबसे बड़ा कारण इनका संगीत ही है। यह संगीत शास्त्रीय संगीत से सर्वथा भिन्न होता है। इसके संगीत में भी इतनी स्वाभाविकता होती है कि साधारण से साधारण व्यक्ति उसमें तल्लीन हो जाता है। कनौजी में प्राप्त होने वाले सभी पँवारे ताल और लय के साथ गाए जाते हैं और किसी न किसी वाद्य यन्त्र का उनके साथ अवश्य ही सहयोग रहता है। इन्हें समस्वर और द्रुतगति लय में गाया जाता है।

टेक

प्रायः सभी पँवारों को समस्वर और द्रुतगति लय में गाया जाता है। परिणामस्वरूप समस्त गायन प्रक्रिया में एकरसता (मोनोटोनी) आ जाने की आशंका हो जाती है। टेक की पुनरावृत्ति से यह एकरसता तो भंग होता ही है, गायक को भी सांस लेने का अवसर मिल जाता है। ढोला, धनइया तथा कुछ अन्य ऐसे पँवारे हैं, जिनमें मुख्य गायक के साथ सुरैया (सुर से साथ देने वाले) टेक का गान करता है और गायक को इस बीच विश्राम का अवसर मिल जाता है। कहीं तो कुछ सायक

निरथक शब्दों को दोहराया जाता है और कहीं प्रारम्भ की या पीछे की किसी पंक्ति को दोहरा दिया जाता है। कनौजी पँवारों म दोना प्रकार के 'टेक' मिलते हैं। कहीं तो हो, हो रामा, ह रामा की आवत्ति होती है और कही पर एक पक्ति की आवृत्ति होती है—

तब मुख बोलें राजा न बामुकी सुनि लेव न नउवा मेरो ज्वाव।
अरे सुनि लेव न नउवा मेरो ज्वाव।

रूढ़ अशों की पुनरुक्ति

इन पँवारो म कुछ ऐसे अश होते हैं जिन्हें रूढ़ियों से युक्त कहा जा सकता है। किसी पँवारे विशेष में यदि दस बार युद्ध का वणन होता है या कोई प्रेमी कई बारें अपने प्रेम का निवेदन करता है तो सभी बार एक ही प्रकार की शब्दावली का उपयोग करता है। कोई प्रेमी अपने संदेश-वाहक से अपनी प्रेयसी के पास सन्देश भेजता है। सन्देश-वाहक से पहले प्रेमी अपना सदेश बतलाता है और फिर सन्देश-वाहक जाकर के उसकी प्रेयसी के सम्मुख उसी सन्देश का पुनकथन करता है। कभी कभी किसी पँवार विशेष के कुछ अश दूसर पवार म भी बार बार दोहराये जात हैं। आल्हा म युद्ध और प्रेम विषयक उत्कृष्ट रूढ अशा के उदाहरण दशनीय हैं। इनमे युद्ध के सजीव चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। युद्ध क एक दृश्य का उदाहरण आल्हखण्ड के सदभ म दिया जा चुका है।[1] कथानक के विकास म एक प्रसग को छोडकर दूसर का प्रारम्भ करने के लिए भी कुछ रूढ प्रयोग आते हैं, जसे आल्हा म हिअन की बातें हिअनै छोडो और आगे को सुनौ हवाल और 'धनदया में हिअन की बातें हिअनै छोडि दउ रगमहलिआ कहियँ आय, हिअन की बातें हिअन छाडि देउ वसा बसेली कहियँ आय'।

छन्द

लोक गीतो की ही भाँति इन 'पँवारा' म भी शास्त्रीय नियमा से युक्त छन्दा का सवथा अभाव है।[2] जहा कहीं कुछ छन्द मिल भी जात हैं वहाँ पर छन्द शास्त्र के नियम बडे ही शिथिल पड जात हैं।[3] इन छन्दो को मात्रिक या वण-वक्ष छन्दो की परिधि म नहीं रखा जा सकता। पर इतना सब होत हुए भी इनमें लय एक ऐसी वस्तु है जो इन सारे अभावा की पूर्ति कर देती है। इन 'पँवारों' को लिपिबद्ध करके

१ इसी अध्याय म 'आल्हा' की सक्षिप्त कथा देखिए।
२ रामनरेश त्रिपाठी—कविता कौमुदी (ग्राम गीता), पृ० ६६
३ ग्रियसन—जनल आफ रॉयल एशियाटिक सोसायटी आफ बगाल, वष १८८५ स० ३

देखा जाए तो यति और गति की शिथिलता के कारण इनकी गमता में संदेह होने लगता है[1] परन्तु वास्तविकता कुछ दूसरी ही है। गायक अपनी लय और तान से इनको उत्कृष्ट गयता प्रदान करता है। यदि इनमें छन्द विधान के अनुसंधान के लिए आग्रह ही है तो कहा जा सकता है कि इनमें लय के द्वारा छन्द की रचना की जाती है और इसे 'द्रुत गति छन्द' नाम दिया जा सकता है। 'पँवार' का कथानक तीव्रता के साथ आगे बढ़ता है, अतः सर्वत्र ही इसी प्रकार के छन्द का उपयोग किया जाता है। कनौजी गायक इसी साधन द्वारा पवारे को सर्वग्राह्य बनाने में सफलता प्राप्त करता है।

अलंकार

लोक साहित्य में वर्णन की स्वाभाविकता एक बहुत बड़ी विशेषता मानी जाती है और इसमें अभिव्यक्ति के सम्प्रदाय के अभाव के कारण अलंकारों का प्राय अभाव ही रहता है। अलंकारों में बुद्धि का वैभव रहता है जबकि लोक रचनाकार भावुकता और स्वाभाविकता को सर्वस्व मान कर चलता है इसीलिए इन पँवारों में अलंकृत शैली को कोई स्थान ही नहीं मिलता है। यह बात दूसरी है कि वर्णन के स्वाभाविक प्रवाह में कहीं कहीं लोक रचनाकार को अनायास कुछ अलंकार सूझ जाते हैं। इनमें से अनुप्रास और उपमा विशेष उल्लेखनीय हैं। अनुप्रास के निम्नांकित उदाहरण द्रष्टव्य हैं—

जइसे मिदहा' भेडन पइठ जइसे सिंघ बिदारे गाय। (छेकानुप्रास)
जइसे सुआ' सुपारी काटे जइसे सेनी नुन बिमान। (छेकानुप्रास)
सुमिरन करिके परमेसुर को मतिया सुमिर मद्दोवें बयार। (वृत्यनुप्रास)
ओंठ तमोली रचि गई जीवा की भौंहें करी कमान। (उपमा)
दाँत बिधारे कस घना मुँह बेनिन सरके नाग। (उपमा)

'पँवारों' में अलंकारों की अपेक्षा प्रतीक-योजना अधिक होती है। 'श्याम' 'शिव', 'रामा', राधा पार्वती और सीता' का प्रयोग पति और पत्नी के प्रतीकों के रूप में सर्वत्र मिलता है।

विस्तृत कथानक

इन पँवारों की एक बहुत बड़ी विशेषता होती है इनके आकार की विशा

१ धनइया के कुछ अंश पीछे दिए जा चुके हैं। पढ़ने से ऐसा ही प्रतीत होता है कि उनमें यति और गति का अभाव है पर जब गायक उन्हें गाता है, वे पूर्ण रूप में गयता लिए हुए होते हैं।

लता। इनका कथानक इतना अधिक लम्बा होता है, घटनाओं का ऐसा 'घटाटोप' होता है कि इन्हें लोक महाकाव्य की संज्ञा दी जा सकती है। इनमे मुख्य कथानक के साथ एक के बाद उपकथानक जुडते जाते हैं। इनमें आए हुए चरित्रो के सागोपाग वणन का प्रयत्न किया जाता है। आल्हा' म बावन युद्धो का वणन है और 'ढोला' मे अनेक घटनाएँ एव वत्त दिए गए हैं।

वणन प्रधानता

इन 'पँवारो' की एक प्रमुखता इनकी वणन प्रधानता भी है। इनमे घटनाओं का 'घटाटोप' रहता है। किसी नायक या नायिका के जीवन की विशिष्ट घटना को न लेकर उसके जीवन का समग्र चित्र प्रस्तुत किया जाता है तथा कथानक निरन्तर रूप से अग्रसर होता रहे और किसी प्रकार का बीच मे गत्यवरोध न हो इसीलिए गायक इस बात का ध्यान रखता है कि धाराप्रवाह वणन चलता रहे, जिससे कि न तो कोई घटना ही छूटने पाए और न श्रोताओ की उत्सुकता एव मनोरजन म ही किसी प्रकार का व्यवधान उपस्थित हो। कनौजी म प्राप्त सभी पँवारो म वणन द्रुतगति से चलता है, चरित्र चित्रण की अपेक्षा घटनाओ के वणन पर अधिक बल दिया जाता है—चरित्र चित्रण के लिए ठहरने के लिए गायक को अवकाश ही नही है। इस धारा प्रवाह वणन मे गायक के स्वर म प्रसगानुसार परिवतन होना रहता है—यदि नायक किसी सकट म पड गया है तो गायक स्वर करुणा से आपूरित हो जाएगा, यदि उसे सफलता मिल रही है तो उसके स्वर मे आह्लाद का सचार होगा और यदि युद्धस्थल का वणन है तो उसके स्वर के ओजस्वी बन जाने म देर न लगेगी।

सवादों द्वारा कथानक का विकास

अभी उल्लेख किया जा चुका है कि 'पँवारा' म वणन प्रधानता होती है और कथानक का काय (ऐक्शन) बडी तीव्र गति से आगे बढ़ता है। वस्तुत इस तीव्रता को लाने वाले तत्व कथोपकथन हैं। इन कथोपकथनो द्वारा वणन में स्वाभाविकता और सजीवता तो उत्पन्न होती ही है चित्रात्मकता की सष्टि भी होती है, साथ ही अनायास वस्तु का विकास भी होता चलता है। कनौजी म प्राप्त सभी पँवारे सवादो की इस विशेषता से युक्त हैं। कुछ पँवारे, विशेषत 'धनइया' मे तो ऐसा प्रतीत होता है, मानो उसम सवाद ही सवाद हो—

तब मुख बोलो कुँअर खरगलाल सुनि लेव न ददुआ मेरी बात
टीका हम न चढइबो।
तब मुख बोल राजा सुरज मल टीका न लौटन अब को जाय
टीका न लौटन अब जाय।

तब सुन बोले कुँअर परमलाल सुनि लेव न दद्दुआ मेरी बात
टीका न देव लौटारि।
पहिले भौ बराम्हन राजा बुलामें अच्छी साइत न देय सुभ बनाव
स लेव न पायो दस्तौ आज।
तब सुन बात पण्डित भौ बराम्हन सुन लेव न दद्दुआ मेरी बात
अच्छी साइत आज है दद्दुआ टीका न लेउ चढ़वाय।
तब सुन बात कुँअर परमलाल सुनि लेव न दद्दुआ मेरी बात
अब तुम्हारो कुछु नाइँ बिगरो टीका न देव लौटाय।
सुनि लेव दद्दुआ सुन हमारे।

नैतिक शिक्षा

कनौजी में मिलने वाले पँवारों के चरित नायक त्याग, वीरता, सच्चरित्रता, धीरता, परोपकार और कर्मण्यता के आदर्श प्रतीक हैं। दुष्टों के दमन के लिए ही इनका जन्म होता है। इन्हें पग पग पर कष्ट झेलना पड़ता है परन्तु ये विचलित नहीं होते। ये सन्मार्ग पर चलते हैं अतः असत् प्रवृत्तियाँ चाहे कितनी भी प्रबल क्यों न हों उन्हें ये अन्ततोगत्वा पराजित कर देते हैं। वीरों की वीरता, प्रेमियों का सच्चा प्रेम, पतिव्रताओं की आदर्शमयता, महान् दानियों की दानशीलता, कर्मवीरों की कर्मण्यता—इन सबका वर्णन लोक गायक इस प्रकार करता है कि श्रोता उनसे प्रभावित हों और इन सत् प्रवृत्तियों की विजय को देखकर उनसे प्रेरणा प्राप्त करें और अपने जीवन में नवीनता का अनुभव करें। इन पँवारों में नैतिक शिक्षा निहित रहती है। प्रत्यक्ष रूप में तो इनमें उपदेशात्मक प्रवृत्ति का अभाव रहता है। परन्तु सर्वत्र यही व्यंजना रहती है कि लोग चरितनायकों की भाँति धीर वीर त्यागी आदर्श प्रेमी परोपकारी, दानी और कर्मठ बनकर अपने को ऊँचा उठाएँ।

कनौजी पँवारों में रस

कनौजी में उपलब्ध पँवारों में विभाव, अनुभाव और संचारी भावों के संयोग द्वारा शास्त्रीय दृष्टि से चाहे रस की निष्पत्ति न हो सके पर इनकी रसात्मकता में किसी प्रकार का सन्देह नहीं किया जा सकता। इनकी रसात्मकता का सबसे बड़ा यही प्रमाण है कि जब गायक पँवार का गाना प्रारम्भ करता है तो सुनने वाले मंत्रमुग्ध हो जाते हैं। गायक सब रात भर गाते हैं पर क्या मजाल है कि सुनने वालों में उत्सुकता और आनन्द का किसी प्रकार की कमी आ जाए। रस को साहित्य की आत्मा मानने वालों को तो परिनिष्ठित साहित्य के स्थान पर इन पँवारों को साहित्य के उच्चतम सिंहासन पर आसीन कराना चाहिए।

इन पँवारो म प्रमुखतया वीर, शृगार, अद्भुत और करुण रस का बाहुल्य रहता है। 'आल्हा' म वर्णित समस्त कथानक युद्धो का ही तो वर्णन है। अत इसमे सर्वत्र वीर रस के दर्शन होते हैं। विवाहो के प्रसग म शृगार रस भी स्वाभाविक रूप मे आ जाता है। प्रेम गाथात्मक पँवारो मे तो शृगार की प्रधानता होती ही है। अलौकिक तत्त्वो से युक्त पँवारो म अद्भुत रस की प्रधानता रहती है। नायक ऐसे ऐसे विचित्र कार्य करते हैं कि लोग आश्चर्यचकित हो जाते हैं और उनमे अद्भुत रस का सचार होने लगता है। गोपीचन्द, भर्थरी, 'जगदेव, जाहरपीर आदि पँवारो के किन्ही किन्ही स्थलो पर करुण रस भी मिल जाता है। योगियो के वैराग्य म शान्त रस के दर्शन भी हो जाते हैं। वीर गाथात्मक पँवारो म युद्धो के समय मे गायक वीभत्स और भयानक रस की सृष्टि भी करना नही भूलता है। पँवारों के विश्लेषण म इन तथ्यो की ओर सकेत किया जा चुका है। अत उदाहरणो द्वारा इनकी पुनरुक्ति नहीं की जा रही है।

कनौजी पँवारो में धर्म का स्वरूप

कनौजी पँवारो म धर्म या सम्प्रदाय विशेष का न तो तात्त्विक विश्लेषण किया गया है और न किसी सम्प्रदाय विशेष के महत्त्व को स्थापित करने का प्रयत्न ही किया गया है। आदर्श चरित्रो म धार्मिक भावना विद्यमान होती है इसीलिए जब वे किसी कार्य विशेष को पूरा करना चाहते हैं तो अनेक देवी देवताओं का स्मरण करते हैं, जिन देवी देवताओ और सन्तो महात्माओ गोरखनाथ गूगापीर' का इनम उल्लेख हुआ है वास्तव म वे नायक नायिकाओ के सहायक के रूप म चित्रित किए गए हैं। वे नायक नायिकाओ का मार्ग सचालन करते हैं और आवश्यकता पडने पर उन्हें तत्काल सहायता प्रदान करके असद् वृत्तियो का पराभव करा देते हैं।

यों तो इन पँवारो म 'सुमिरन' अश म गणेश, राम, कृष्ण, दुर्गा, हनुमान, सरस्वती गगा गुरु गोरखनाथ आदि का नामोल्लेख होता है, परतु सहायता करने वाला के रूप म विशेष रूप से शकर पार्वती दुर्गा तथा गोरखनाथ का नाम आता है। पँवारे प्राय मध्ययुगीन रचनाएँ हैं और उस समय नाथ, शाक्त और नाथ सम्प्रदायो का अधिक प्रचार था। सम्भवत इसी कारण से इनम शकर, दुर्गा और गोरखनाथ—इन तीनो के नामो की ही प्रधानता है। यह बात अवश्य है कि लोक गायक ने साम्प्रदायिक कट्टरता को कोई भी स्थान नहीं दिया है और एक ही पँवारे म कभी कभी इन तीनो का नाम पूर्ण श्रद्धा के साथ लिया जाता है।

इन पँवारों म शकर को 'आशुतोष' और 'भोले बाबा' के रूप मे चित्रित किया गया है। जो भी उनका स्मरण करता है, उनम सहायता देने म ये विलम्ब दन मे ये विलम्ब नही करते। इनम भोलापन इतना अधिक है कि जब कभी ये पार्वती के साथ भ्रमण करने के लिए निकलते हैं और किसी को दुखी देखते हैं तो इनका

हृदय द्रवित हो जाता है और दुखी व्यक्ति के कष्टों का वे निवारण कर देते हैं। 'ऊमन्त्र का गौना' में जब जीवा अपने पति के शव के साथ चिता में जल जाने के लिए सन्नद्ध है, उसी समय शंकर-पार्वती भ्रमण के लिए निकलते हैं। पार्वती के आग्रह से वे ऊमन्त्र को जीवित कर देते हैं।

दुर्गादेवी

कनौजी पँवारों में दुर्गा का नाम अनिवार्य रूप से आता है। नायक, विशेष रूप से वीर गाथाओं का प्रमुख नायक अपने मनोरथ की सिद्धि के लिए इनका अवश्य स्मरण करता है और वे अपने मार्ग पर चलने वाले व्यक्तियों पर संकट पड़ने की स्थिति में और युद्ध स्थल में उपस्थित होकर सभी बाधाओं को पल मात्र में दूर भगाती हैं। नायक और नायिकाओं का दुर्गा देवी पर पूर्ण अधिकार रहता है। वे जब भी चाहते हैं, अपनी इष्ट देवी का आह्वान करते हैं और वह उन पर अपना वरद हस्त रखकर अभय प्रदान करती है। आल्हा और ऊदल पर तो देवी की सदैव कृपा रहती थी।

गोरखनाथ

गोपीचन्द और भरथरी गोरखनाथ की शिष्य-परम्परा में आते हैं। अतः इनके जीवन को लेकर रचित पँवारों में नाथ सम्प्रदाय का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही है। नाथ सम्प्रदाय की सैद्धान्तिक विवेचना तो इनमें नहीं है परन्तु इनमें गोरखनाथ तथा मत्स्येन्द्रनाथ के नाम उनका योगी रूप और तप साधना की ओर अवश्य संकेत किया गया है और इनमें नाथ सम्प्रदाय के व्यावहारिक पक्ष का सुन्दर चित्र उपस्थित किया गया है। माता पिता स्त्री परिजन-पुरजनों का त्याग इन्द्रिय निग्रह द्वारा काम क्रोध मद लोभादि का दमन तपश्चर्या के प्रति जागरूकता तथा गुरुभक्ति के उत्तम उदाहरण 'गोपीचन्द' और 'भरथरी' नामक पँवारों में उपलब्ध होते हैं।

प्रत्येक पँवारे का गायक अन्य देवताओं के साथ सरस्वती की आराधना नहीं भूलता, क्योंकि उनके बिना कंठ पर बैठे वह गायन में सफलता की कल्पना ही नहीं कर सकता। वह प्रार्थना करता है कि जहाँ कहीं भी वह कुछ भूल रहा हो, सरस्वती उसका स्मरण करा दें।

कनौजी पँवारों में अलौकिक तत्व

कनौजी पँवारों में एक अचिन्त्यपूर्ण जगत का चित्रण किया गया है। यह एक ऐसा संसार है जिसमें पशु एवं पक्षी मनुष्य की भाँति विचार शील हैं और मनुष्य की भाषा को भी बोलना जानते हैं। ज्ञान तो उनमें सम्भवतः मनुष्य से भी अधिक है तभी

तो वे उसका पथ सचालन करते हैं, उसके भविष्य म आने वाली आपत्तियो की सूचना देते हैं और उनके निराकरण का उपाय भी बतलाते हैं। शुक हस आदि पक्षी दूत-काय करते हैं और आवश्यकता पड़ने पर उन्हें शारीरिक सहायता भी देते हैं। जब 'नका बजारा अपनी पत्नी से मिलने के लिए जाना चाहता है तो हस उसे अपनी पीठ पर बठाकर ले जाता है और प्रात काल होने के पहले ही वापस भी लाता है।

चराचर जगत की कोई भी वस्तु इन 'पँवारा' म जड रूप म नही चित्रित की जाती। सब म चेतनता है और सभी वस्तुएँ कथानक म सक्रिय सहयोग देती हैं। जब 'गूगा पीर' पृथ्वी से समाधि के लिए स्थान मागता है तो पृथ्वी उत्तर देती है कि पहले तुम कलमा पढकर आओ तब तुम्हे समाधि के लिए मैं स्थान दूगी। गगा लोगों को डूबने से बचाती है।

नायक और नायिकाएँ अलौकिक शक्तियो से युक्त होते हैं। देवी और देवता उनके हाथ म रहते हैं और वे लोग जिस रूप म भी चाहते हैं, उनका उपयोग कर सकते हैं। नायक या नायिका जन्म लेते ही लोगो से सभाषण करने लगते हैं और उन्हें उसी समय अपने विवाह की चिता भी घेर लेती है। कभी कभी तो गर्भस्थित नायक अपने माता पिता का माग सचालन करने लगते हैं।

पँवारों मे जादू टोना का भी उपयोग किया जाता है। जादू जानने वाला जब भी चाहता है किसी को भेड़-बकरी बल[1] बना देता हैं और स्वय भी अपनी योनि परिवतन कर लेता है। इन पँवारा म इस प्रकार के अलौकिक तत्व अन्तर्राष्ट्रीय कथानक रूढ़ियो स सम्बध रखते हैं।

१ 'धनइया' पँवारे में।

कनौजी लोक कथा-साहित्य का अध्ययन

लोक-कथा का स्वरूप, परिभाषा एवं वर्गीकरण

किसी भी देश का कोई भी लिया जाए लोक-साहित्य मनस्तत्त्ववेत्ता इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि स्त्रियाँ एवं पुरुष जो कि इन कहानियों को सुनाते हैं न तो लोक-साहित्य विषयक पारिभाषिक शब्दावली का ही उन्हें ज्ञान होता है और न वे लोक-साहित्य के किसी अंग के वर्गीकरण की आवश्यकता का ही अनुभव करते हैं। किसी विशेष क्षेत्र में यदि किन्हीं पारिभाषिक शब्दों का प्रयोग होता भी हो तो यह आवश्यक नहीं कि दूसरे क्षेत्रों के लिए भी उनको लागू किया जा सके। ऐसा भी देखा गया है कि एक ही प्रकार की कथावस्तु को एक क्षेत्र में सर्वथा कपोल-कल्पित माना जाता है जबकि दूसरे क्षेत्र में उसी की वास्तविकता में किसी को जरा भी सन्देह नहीं होता। इसी कारण प्रो० टामसन ने यह मत स्थिर कर दिया है कि यूरोप में जिस भी अद्भुत सामान्य कहानी को सर्वथा काल्पनिक माना जाता है उसी को भारत में सत्य-कथा के रूप में स्वीकृति मिल जाती है। इस प्रकार की कहानियाँ प्रायः स्थानीयता से युक्त होती हैं और इसलिए स्थानीय आख्यानों (लोकल लीजेंड्स) एवं माड कथा (Marchen) के भेद की दीवारें पूर्ण रूप से ढह जाती हैं।[1]

'लोक कथा' शब्द लोक प्रचलित उन कथाओं के लिए प्रयुक्त होता है जो मौखिक परम्परा द्वारा निरन्तर रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को प्राप्त होती रहती हैं। इन कथाओं का जन्म भी मानव के साथ हुआ होगा और इसी प्रकार विकास की परम्परा में पनपती हुई वे आज तक जीवित हैं।[2] पुरानी कथाएँ नया कलेवर धारण करके नए समाज की छाप लेकर नए रूप में प्रकट होती हैं और यही नवीनता

---

१ स्टिथ थाम्पसन, दी फोकटेल, पृ० १६

२ एस० एच० ला, [illegible], पृ० ५

इनका जीवन है। थोड़े से मूल कथानक और लक्षण हैं, जिनके मिश्रण और पुनर्मिश्रण से ही समस्त लोक कथाएँ बनी हैं और बनती रहेंगी।[1]

लोकगीत के समान ही कथाओं ने भी जनपदों की गोद में सहस्रों वर्षों का सहयोगी जीवन व्यतीत किया है। ये दोनों साथ साथ फूल और फले हैं। एक सी खुली हवा और धूप ने दोनों के आनन्ददायी रस को पुष्ट किया है। उनके रस पीने वाले जनसमूह का प्रतिबिम्ब दोनों पर अपना प्रभाव छोड़ता है।[2] लोक कथाओं में अद्भुत मनोरंजकता होती है। पहले तो कथा कहने वाले की मजी हुई शैली ही आकर्षित कर लेती है फिर कथा की मूल वस्तु 'अपने शौर्य सदाचार, सत्य, सहृदयता, सेवा परायणता, त्याग आदि भावनाओं से श्रोता को ऐसी ज्योति प्राप्त होती है कि वह अपने जीवन के घने अंधकार को भी पार कर जाता है।[3]

ऊपर लोक कथा की सामान्य परिभाषा प्रस्तुत की गई है परन्तु विविध क्षेत्रों में लोककथा के लिए विविध पारिभाषिक शब्दावली प्रयुक्त हुई है—लीजण्ड ट्रैडीशन, सेज, सागा, मार्खे आदि—इन शब्दों को सर्वथा पर्याय नहीं कहा जा सकता, ऐसी स्थिति में शास्त्रीय विवेचन के लिए इस बात की अपेक्षा है कि इन शब्दों को सावधानी के साथ परिभाषित किया जाए जिससे कि किसी क्षेत्र की कथाओं का वर्गीकरण एवं विश्लेषण सुविधापूर्वक किया जा सके।

एडविन सिडनी हार्टलण्ड ने अपनी पुस्तक 'साइंस आव् फेअरी टेल्स' में लोक कथाओं का सर्वप्रथम वैज्ञानिक वर्गीकरण किया है। परियों की कहानियों की परिभाषा करते हुए उन्होंने कहा है[4] कि परम्परा से प्राप्त अपने वर्तमान स्वरूप में ये कहानियाँ न तो दैवी शक्ति से हों और न ब्रह्माण्ड सम्बन्धी अथवा राष्ट्रीय घटनाओं से सम्बन्ध रखने वाली हैं, वरन् इनमें अलौकिक तत्व का महत्वपूर्ण स्थान रहता है। उन्होंने इन कथाओं के दो वर्ग बनाए हैं—सागाज एवं मार्खे। प्रथम वर्ग में उन कहानियों को रखा जा सकता है जिनका सम्बन्ध ऐसे अलौकिक प्राणियों से हो जिनके अस्तित्व पर विश्वास किया जाता है और जिनके दृश्य विधान प्रायः किसी विशिष्ट क्षेत्र से ही सम्बद्ध होते हैं। इस वर्ग की कहानियों के लिए यह अनिवार्य नहीं कि ये अलौकिक तत्वों को ही अपना वर्ण्य विषय बनाएँ। प्रायः ऐतिहासिक नायक अथवा ऐसे व्यक्तियों को इनमें प्रमुखता मिलती है, जिनके कभी विद्यमान होने पर विश्वास किया जाता है। दूसरे वर्ग में वे कहानियाँ आती हैं जिनका लक्ष्य मनोरंजन होता है। इनमें दूसरे देशों में विश्वास की जाने वाली घटनाओं अथवा सभ्यता के

---

१ सावित्री वर्मा—उत्तर भारत की लोक कथाएँ भूमिका।

२ वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथ्वी पुत्र, पृ० ७८

३ प्रवासीलाल मालवीय—सौराष्ट्र की लोक कथाएँ भूमिका।

४ एडविन सिडनी हार्टलण्ड—दी साइंस आव् फेअरी टेल्स, पृ० ३४

दूसरे अवस्थान में घटित वास्तविक घटनाओं का वर्णन होता है परन्तु जिस रूप में ये कहानियाँ आज हमें प्राप्त हैं उनकी घटनाओं के सम्बन्ध में पूर्व निश्चित धारणाएँ समाप्त हो चुकी हैं। सामान्यतया इन कहानियों में कल्पना की ऊँची से ऊँची उड़ान भरी जाती है। यद्यपि ये कहानियाँ नितान्त असम्भाव्य होती हैं फिर भी इन्हें लोक द्वारा स्वीकृति प्राप्त हो जाती है क्योंकि कोई भी इस बात पर जोर देकर नहीं कहता कि ये घटनाएँ कभी घटित हुई थीं और न किसी की इच्छा ही होती है कि कल्पना की उड़ान को तर्क या अनुभव के नाप-तौल पर मापा जाए। इनके लिए केवल इतना ही बंधन है कि इन्हें सुना न होना चाहिए।[1]

'हाउ टु राइट' के लेखक बेन एस० नेसन ने मौखिक कहानियों को दो मुख्य वर्गों में बाँटा है। साधारणतः हम कह सकते हैं कि गाथा सरल कहानी है और मार्चेन जटिल। गाथा का उद्देश्य होता है सरलता और गम्भीरता जबकि मार्चेन में विस्तार प्रधान होता है। गाथा में मनोरंजन की अपेक्षा शिक्षा को अधिक महत्त्व दिया जाता है और मार्चेन में मनोरंजन को ही सर्वस्व मानकर चला जाता है।

पिछले कुछ वर्षों में यूरोप के लोकवार्ता विशेषज्ञों में मौखिक कहानी विषयक पारिभाषिक शब्दावली को लेकर काफी मतभेद रहा है। उदाहरण के लिए ग्रिम बन्धुओं ने मार्चेन के क्षेत्र को विस्तृत करने के लिए मार्चेन शब्द को चुना था। इनके अनुसार मार्चेन में केवल यथार्थ और आश्चर्य तत्त्वों का ही अभिप्राय (मोटिफ) होता है जबकि सागा में यथार्थ और अन्धविश्वास से सम्बद्ध अभिप्राय होते हैं। आश्चर्य की अपेक्षा अन्धविश्वास अधिक व्यापक शब्द है।[2] मौखिक कहानी के लिए उपयोग में आने वाले इन शब्दों की उपयुक्तता पर पर्याप्त मतभेद होने पर भी ह्वाइट द्वारा प्रस्तुत कहानी के मुख्य वर्गों को सामान्यतया स्वीकार कर लिया गया है। प्रथम वर्ग 'सागा' व्याख्या और विश्वास से युक्त होता है और द्वितीय वर्ग मार्चेन आश्चर्य तत्त्व से ओतप्रोत होता है। सागा के स्थान पर आजकल जर्मन शब्द सेज (बहुवचन सेजन) के प्रयोग की प्रवृत्ति चल पड़ी है।

लोकवार्ता विशेषज्ञ स्टिथ थाम्पसन के अनुसार सेज में किसी ऐसी घटना का वर्णन होता है जिसके वस्तुतः घटित होने में विश्वास किया जाता है। प्राचीन काल में घटित किसी विशेष स्थान की घटना का यह पुनराख्यान भी हो सकता है उसी स्थान से विशेष सम्बन्ध रखने पर भी सम्भव है कि संसार के दूर-दूर के भागों

१ ई० एम० हार्टलैण्ड—दी साइन्स आव् फेयरी टेल्स, पृ० २२-२३
२ वन डर लेयन—ई० एम० कीफर द्वारा अपनी पुस्तक 'एलबर्ट वेसल्स्की एण्ड रीसेण्ट फाक्टेल थियरीज' पृ० ४१ पर उद्धृत।
३ ई० एम० कीफर—एलबर्ट वेसल्स्की एण्ड रीसेण्ट फोक टेल थियरीज पृ० ४१

म भी उसी विश्वास के साथ यह क ा जाता हो। इसम उन आश्चर्यजनक प्राणी, जैसे परियाँ, भूत प्रेत, राक्षसो आदि की मुठभेड का वर्णन हो सकता है जिनम कि लोगो का आज भी विश्वास है। इसम सर्वथा कपोल कल्पित और यहाँ तक कि नितात बेतुकी जनश्रुतियो तक को ऐतिहासिक प्रतिष्ठा दी जाती है।[1] मार्सें की परिभाषा करते हुए इसी विद्वान का कथन है कि यह कहानी अनेक अभिप्रायो (मोटिफ) को अपन म समाहित किए हुए अपक्षाकृत कुछ लम्बी होती है। आश्चय स ओतप्रोत होती है और बिना किसी विशिष्ट स्थान एव विशिष्ट पात्रो के अवास्तविक जगत म भ्रमण करती है। इसम साधारण से साधारण नायक अपने शत्रुओ का विनाश, राज्यो की प्राप्ति एव राजकुमारियो स विवाह करत हैं।[2]

मौखिक कहानियो के य दो प्रमुख वग कहे जा सकते हैं। तीसरा वग 'धम गाथा' (मिथ) को माना जा सकता है। थाम्प्सन के अनुसार धमगाथा वह कहानी है जिसका निर्माण वतमान सष्टि के निर्माण के पूर्व का माना जाता है। इसमे पवित्र प्राणियो एव अद्ध दवी नायको और प्राय इन्हीं के द्वारा ही सष्टि के सभी पदार्थों की उत्पत्ति मानी जाती है। इसका लोगो के धार्मिक विश्वासो एव धार्मिक अनुष्ठानो से गहरा सम्बन्ध होता है।[3] धमगाथा को सामान्य कहानी से पथक करना कठिन काय है क्योंकि धमगाथाओ एव कारण निर्देशक कहानियों स पर्याप्त मात्रा म मिलती जुलती होती हैं। जो धम गाथाएँ पौरोहित्य स कोई सम्बन्ध नही रखती और लोक जिह्वा पर आरूढ रहती हैं, उन्हें तो धमगाथा की अपेक्षा लोक कथा कहना अधिक उपयुक्त है। फ्राज बोआज ने उत्तरी अमरीकी भारतीय कहानियो के विस्तत अध्ययन के पश्चात अपना अभिमत प्रकट किया है कि सभी प्रकार की कहानियो की उत्पत्ति म मानवीय जीवन की घटनाओ पर कल्पना की उडान का बहुत बडा हाथ रहा है और धमगाथा और लोक कथा म मौलिक भेद नही है, क्योकि दोनो क अध्ययन से पता चलता है कि दोनो की सामग्री का परस्पर आदान प्रदान होता रहा है अतएव किसी की भी प्राथमिकता का दावा नहीं किया जा सकता है।[4] विषय वस्तु की दष्टि से एव पौराणिक प्रभावो अथवा धार्मिक विश्वासो के कारण धमगाथा के अत्यधिक निकट होते हुए भी यदि कोई कहानी जन साधारण द्वारा कही सुनी जाती हो तो उस का अन्तर्भाव लोक-कथा में ही हो जाना चाहिए क्योकि लोक कथा की कसौटी वस्तुत 'लोक' ही है। धार्मिक विश्वासो एव अनुष्ठानो की भूमिका के रूप म प्रस्तुत किए जाने पर भी यदि किसी कहानी की लोकमधा द्वारा सष्टि हुई हो तो उस भी लोक

---

१ स्टिथ थाम्प्सन—द फोकटेल, पृ० ८ ९
२ वही , पृ० ८
३ वही ,, पृ० ९
४ फ्राज बोआज रेस लैंग्वेज एण्ड कल्चर।

कथा के क्षेत्र से बहिष्कृत नहीं किया जा सकता। इस दृष्टि से व्रतों और पर्वों के अवसर पर कही-सुनी जाने वाली कथाएँ भी कथाएँ ही कहलाती थीं। इन कथाओं के स्वतन्त्र अस्तित्व को सुरक्षित रखने के लिए इन्हें लोककथा के प्रकारों में धर्म कथा अथवा धर्माभिव्यक्ति प्रधान कथा के नाम से अभिहित करना समुचित होगा क्योंकि विषय-वस्तु का [illegible] हुए ये पुरोहितों द्वारा कही जाने वाली धर्मगाथाओं के निकट हैं परन्तु लोक से पूर्ण सम्बद्ध होने के कारण ये मुख्य लोककथाएँ ही हैं।

उपर्युक्त विवेचन के उपरान्त डा० थाम्पसन द्वारा इण्डियाना विश्वविद्यालय के लोकवार्ता विद्यापीठ अमरीका के स्पीच अधिवेशन (१९४६ ई०) में दिए गए लोककथा के वर्गीकरण पर विचार करना समीचीन होगा। उन्होंने अपने वर्गीकरण में सभी प्रकार की लोककथाओं का अन्तर्भाव करने का प्रयास किया है। वर्गीकरण इस प्रकार है—

१ अवकाश (लाउञ्ज) टेबिल गप।

उद्देश्य—मनोरंजन का उत्पादन करना।

- अ स्थानों से सम्बद्ध कथाएँ
- ब व्यक्तियों से सम्बद्ध कथाएँ
- स कारण निर्देशक कथाएँ
- द परियों, दानवों, बौनों, भूतों आदि की वे कथाएँ जिन्हें वास्तविक इतिहासों का स्रोत विश्वसनीय माना जाता है।
- इ घटना सम्बन्धी कथाएँ—बाढ़ इत्यादि।

२ मार्ग

उद्देश्य—कल्पना को उड़ान भरना।

- अ पशु सम्बन्धी कथाएँ
- ब अलौकिक कथाएँ
- स हास्य कथाएँ
- द टोना सम्बन्धी कथाएँ

संसार भर की लोककथाओं के परीक्षण के पश्चात् थाम्पसन द्वारा प्रस्तुत किया गया यह वर्गीकरण कनौजी लोक-कथाओं पर भी अधिकांशतः लागू किया जा सकता है। जितने वर्ग यहाँ दिए गए हैं[1] प्रायः वे सभी कनौजी में उपलब्ध हैं। पर कनौजी में कुछ ऐसी लोककथाएँ भी उपलब्ध हैं जिनके लिए कुछ अन्य वर्गों के बनाने की भी आवश्यकता है। देवी-देवताओं, व्रतों और पर्वों से सम्बद्ध कथाओं के

---

१ स्टिथ थाम्पसन—दी फोक टेल्स एण्ड एन्शियन्ट फार्म्स, पृ० ३४

लिए एक नया वर्ग बनाना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त श्रम सम्बद्ध कथाएँ, जाति सम्बन्धी कथाएँ और समस्या अथवा प्रश्नमूलक कथाएँ (बुझौवल) भी जो कि कनौजी में मिलती हैं[1] अलग वर्गों में रखी जानी चाहिए।

थाम्प्सन ने अपने वर्गीकरण में कथाओं के दो प्रमुख उद्देश्यों की चर्चा की है—(१) सत्य का उद्घाटन करना, एवं (२) कल्पना की उड़ान भरना। कनौजी लोक कथाओं के सम्बन्ध में कहा जा सकता है कि प्रथम वर्ग की कथाओं में भी किसी-न किसी सीमा तक कथा सुनने और सुनाने वाले कल्पना का समावेश मानते हैं और इसी प्रकार द्वितीय वर्ग की कथाएँ जिनको उपयुक्त विद्वान कल्पना प्रसूत मानता है, लोक में उन्हें भी किसी न किसी अंश तक सत्य मानकर चला जाता है। समग्ररूप से कहा जा सकता है कि कनौजी क्षेत्र में प्रायः सभी कथाओं को न्यूनाधिक सत्य कथा के रूप में स्वीकृति मिली है। यह बात कनौजी लोक कथाओं के विषय में ही नहीं है वरन् समस्त भारतीय लोक कथाओं पर भी लागू होती है। स्वयं थाम्प्सन ने इसको स्वीकार करते हुए अपना मन्तव्य प्रकट करते हैं कि यूरोप में जिस आश्चर्यपूर्ण सामान्य लोककथा को सर्वथा कल्पना प्रसूत माना जाता है, उसी को भारत में सत्यकथा के रूप में स्वीकृति मिल जाती है।[2] इस प्रकार की कहानियाँ प्रायः स्थानीयता के लिए हुए होती हैं। अतः प्रथम वर्ग की स्थानीय कथाएँ (प्लेस लीजेण्ड्स) और 'मार्खें' में भी कोई विशेष अन्तर नहीं रह जाता। अतः कहानियों के इन दो उद्देश्यों के आधार पर दो पृथक वर्ग बनाना अधिक संगत नहीं प्रतीत होता।

थाम्प्सन द्वारा कथित दो उद्देश्यों—सत्य का उद्घाटन करना एवं कल्पना की उड़ान भरना के विषय में अभी कुछ और विचार कर लेना अपेक्षित होगा। आदिम मानव के हृदय में भय के कारण धर्म भावना जाग्रत हुई और इसीलिए उसने प्रकृति की प्रत्येक क्रिया को धार्मिक अभिव्यक्ति दी। प्राचीन युग में जब मनुष्य जंगलों में रहता था तब सर्दी एवं हिंस्र पशुओं से सुरक्षित रहने के लिए अग्नि जला कर रात भर सिमटा हुआ उसके पास बैठता होगा और समय काटने के लिए किसी न किसी रूप में वाणी का प्रयोग करता होगा। वाणी का यही मनोरंजक रूप कथा का आदि रूप रहा होगा। वाणी के इस प्रयोग में उसने अपने अनुभव भी व्यक्त किए होंगे जो भविष्य के लिए उपयोगी और शिक्षाप्रद बन गए होंगे। इस प्रकार लोक-कथा का आदि रूप धार्मिक एवं मनोरंजक तत्वों के ताने बाने से बुना गया होगा। भारतीय सन्दर्भ में तो यह बात और भी सटीक प्रतीत होती है क्योंकि इस देश में तो धर्म की जड़ें अपेक्षाकृत अधिक गहरी हैं और यहाँ धार्मिक भावना से पूर्ण अनेक लोक कथाएँ मिलती हैं। अतः इन लोक कथाओं के अनुशीलन से यह निष्कर्ष निकलता

---

१ कनौजी ही में नहीं प्रायः भारत की सभी भाषाओं के लोक साहित्य में इस प्रकार की कहानियाँ उपलब्ध हैं।

२ स्टिथ थाम्प्सन दी फोकटेल, पृ० १६

हैं कि इनके निर्माण में ही नहीं वरन् सुनने और सुनाने में भी धर्म भावना उद्देश्य रूप में अवश्य ही विद्यमान रहती है। यह धर्म भावना देवी देवताओं के उल्लेख या व्रत पर्वों के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। इनका पौरोहित्य अनुष्ठानों से कोई भी सम्बन्ध नहीं है और यह शुद्ध लोक कथा का स्वरूप धारण करती है। इस प्रकार लोक कथा के तीन उद्देश्य निश्चित किए जा सकते हैं—

१ धर्म भावना की अभिव्यक्ति
२ शिक्षा
३ मनोरंजन।

उपर्युक्त तीन उद्देश्यों में से तीसरे उद्देश्य का अन्तर्भाव सम्प्रति के दूसरे उद्देश्य में हो जाता है, क्योंकि कथा का उद्देश्य मनोरंजन के अतिरिक्त और हो ही क्या सकता है। दूसरे उद्देश्य का अन्तर्भाव पहले उद्देश्य, सत्य का उद्घाटन करना, में हो जाता है। सत्य का उद्घाटन किसी न किसी प्रकार की शिक्षा प्रदान करता है और भविष्य में पथ निर्देशन का काम भी करता है। पहला उद्देश्य धर्म भावना की अभिव्यक्ति, यथा देवता व्रत-पर्व कथाओं में द्रष्टव्य है। यह आवश्यक नहीं कि इन तीनों उद्देश्यों में से एक उद्देश्य को लक्ष्य में रखकर लोक कथा चले। कुछ लोक कथाएँ ऐसी भी मिलती हैं जिनमें कभी कभी दो उद्देश्य एक साथ मिल जाते हैं। उदाहरण के लिए पंचतंत्रीय कहानियों में प्रधानता शिक्षा देने की ही रहती है पर उनसे श्रोताओं का मनोरंजन भी होता है। वर्गीकरण करते समय इस बात का ध्यान रखा जाएगा कि जिस कहानी में जिस उद्देश्य की प्रधानता होगी उसे उसी वर्ग में स्थान मिलेगा।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात अध्ययन की सुविधा के लिए कनौजी लोक कथाओं के निम्नांकित वर्ग स्थिर किए जा रहे हैं—

१ धर्माभिव्यक्ति से सम्बद्ध कथाएँ।
 अ, व्रत कथाएँ
 आ देव विषयक कथाएँ
 इ कारण निर्देशक कथाएँ

२ शिक्षा प्रधान कथाएँ
 अ पशु पक्षी सम्बन्धी कथाएँ (पंचतंत्रीय)
 आ सूत्र कथाएँ (ड्राल्स एण्ड क्युम्युलेटिव टाल्स)
 इ समस्या या प्रश्नमूलक कथाएँ (बुझौवल)

३ मनोरंजन प्रधान कथाएँ
 अ, हास परिहासपूर्ण कथाएँ

१ मूर्खों की कथाएँ
२ चालाकी पूर्ण कथाएँ
३ जाति स्वभाव चित्रण की कथाएँ
४ ठगो की कथाएँ

आ अलौकिक तत्वो से युक्त कथाएँ

१ परियों की कथाएँ
२ दानवों की कथाएँ
३ भूत प्रेत चुड़ैलो की कथाएँ
४ जादू की कथाएँ
५ शौर्य एवं विक्रम की कथाएँ
६ इतिहासाश्रित महापुरुषों अथवा साधु सतो की कथाएँ

उपयुक्त वर्गों से सम्बद्ध कथाओ का परिचयात्मक विश्लेषण आगे प्रस्तुत किया जा रहा है—

कनौजी लोक-कथाओं का विश्लेषण

१ धर्माभिव्यक्ति प्रधान कथाएँ

इस वर्ग के अन्तर्गत प्राप्त होने वाली कथाओ में कुछ ऐसी होती है जिनका किसी व्रत के अनुष्ठान के अंग के रूप में कथन एवं श्रवण होता है—कथा के अभाव में व्रत अपूर्ण ही माना जाता है। इन कथाओ को 'व्रत-कथाएँ' कहा जा सकता है। इनके अतिरिक्त कुछ ऐसी कथाएँ भी होती हैं जिनका किसी व्रत विशेष से सम्बन्ध नही होता और न वे किसी अन्य धार्मिक अनुष्ठान का अंग ही बनती हैं। नई कथाओ में सामान्य धार्मिक भाव का समावेश होता है और देवी देवताओ को पात्र बनाया जाता है। इनके द्वारा सन्मार्ग एवं कर्तव्याकर्तव्य का विवेचन होता है। इन कथाओ को देव विषयक कथाएँ या देव कथाएँ कहा जा सकता है। कुछ ऐसी कथाएँ भी मिलती हैं जिनमे किसी कार्य घटना या चरित्र की विशेषताओ के कारणो का निर्देश किया जाता है—जैसे सूर्य को दिन रात क्यो तपना पड़ता है? चन्द्रमा क्यो शीतल है? पृथ्वी और आकाश क्या एक दूसरे से अलग हो गए! गिलहरी की पीठ पर धारियाँ क्यो हैं? इन सब में किसी न किसी देवी देवता का किसी न किसी रूप में अवश्य सम्मिलित कर लिया जाता है और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में इनमे धर्म की अभिव्यक्ति हो ही जाती है। इसी कारण इन कथाओ को भी उपयुक्त वर्ग में स्थान दिया गया है। उद्देश्य की दृष्टि से इन्हे 'कारण निर्देशक कथाएँ' कहा जा सकता है।

(अ) व्रत कथाएँ

कनौजी में प्रचलित रहने वाली सभी कथाएँ स्त्री और पुरुष—दोनों के द्वारा कही-सुनी जाती हैं पर व्रत-कथाएँ केवल स्त्रियों की ही सम्पत्ति हैं। इन कथाओं में किसी स्त्री-रचना का चरित्र चित्रण नहीं होता, व्रत विशेष का महत्त्व प्रतिष्ठित करने के उद्देश्य से इनकी रचना की जाती है। प्रत्येक कहानी में व्रत विशेष का अनुष्ठान करने वाली किसी कल्पित स्त्री को मुख्य पात्र मान लिया जाता है और उस कथा के अनुसार व्रत करने वालों को अनेक प्रकार के लाभ तथा व्रत की उपेक्षा करने वाली स्त्री को विविध प्रकार की हानियाँ होती हैं। किसी किसी कथा में पुरुष को भी मुख्य पात्र के रूप में स्थान मिलता है। व्रत-सम्बन्धी इन कथाओं में धर्म के आध्यात्मिक तत्त्व का अभाव रहता है। और इनमें शुद्ध लौकिक दृष्टि से किसी कामना की पूर्ति के लिए अनुष्ठान किया जाता है। इनमें अशुभ परिणाम का निवारण करने के लिए और शुभ परिणाम को प्राप्त करने के लिए देवी-देवताओं को प्रसन्न करने का लक्ष्य परिलक्षित रहता है। सभी व्रत कथाएँ जीवन में आशावादिता का संचार करने वाली होती हैं और इनके अन्त आशीर्वादात्मक वाक्य में सबकी कामना निहित रहती है—अमुक देवता जिस प्रकार अमुक से प्रसन्न हुए उसी प्रकार सबसे प्रसन्न हों।

व्रत-सम्बन्धी जो कथाएँ कनौजी क्षेत्र से प्राप्त हुई हैं उनकी सूची इस प्रकार है—

१ करवा चौथ की कथा
२ दीवाली की कथा
३ गोधन की कथा
४ भैया दूज की कथा
५ भैया पाँचें की कथा
६ अहोई आठें की कथा
७ देवठनी एकादशी की कथा
८ सकट चौथ की कथा
९ शिव तेरस की कथा
१० जगन्नाथ की कथा
११ नागपंचमी की कथा
१२ गणेश चौथ की कथा
१३ हरितालिका की कथा
१४ अनन्त चौदस की कथा
१५ रविवार की कथा
१६ सोमवार की कथा
१७ मंगलवार की कथा
१८ बुधवार की कथा
१९ बृहस्पतिवार की कथा
२० शुक्रवार की कथा
२१ शनिवार की कथा

सभी कथाओं के अनुशीलन से ज्ञात होता है कि इनमें मुख्यतया निम्नांकित कामनाओं को लक्ष्य में रखकर कथाकार ने रचना की है—

१ सुहाग को सुरक्षित रखने की कामना—विशेषतः करवा चौथ और सोमवार की कथाओं में

२ पुत्र प्राप्ति की कामना—अहोई आठैं की कथा में।
३ भाई बहन का परस्पर प्रेम और कल्याण की कामना—भैया दूज, भैया पाथ और नागपचमी की कथाओं में।
४ धन और समृद्धि की कामना—सकट चौथ दीवाली, मगल, वृहस्पति और रविवार की कथाओ में।
५ स्त्री की आत्म सम्मान की कामना—शिव चौदस की कथा में।
६ पूर्व जन्म के पापो के निवारण की कामना—अनन्त चौदस और जगन्नाथ की कथा में।

इन कथाओं की प्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण करने के लिए कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं।

करवा चौथ की कथा

इस वर्ग मे मिलने वाली सभी कथाओं में सौभाग्य को सुरक्षित रखने की कामना की जाती है। इसमें यह भी बतलाया जाता है कि व्रत मे थोडी सी असावधानी हो जाने से महान अनर्थ हो सकता है और उसका निवारण करने के लिए बहुत अधिक प्रयत्न करना पड़ता है। अनेक साधनो के पश्चात 'चौथ' माता प्रसन्न होती हैं और व्रत करने वाली को सौभाग्य की पुनर्प्राप्ति होती है। करवा चौथ की एक कथा इस प्रकार है—

एक सेठ के सात पुत्र और एक पुत्री थी। पुत्री विवाहित थी पर 'करवा चौथ' व्रत के समय वह अपने पीहर में आई हुई थी। सात भाइयों की अकेली बहन होने के कारण उसे उनका अत्यधिक स्नेह प्राप्त था। बहन के बिना भाई कभी भोजन नहीं करते थे। करवा चौथ के दिन सध्या होते ही भाइयो ने बहन से भोजन करने के लिए कहा। बहन ने उत्तर दिया—'आज तो मैंने करवा चौथ का व्रत रखा हुआ है। चन्द्रोदय होने पर अर्घ्य देने के उपरान्त भोजन करूगी। भाइयों ने सोचा कि बेचारी बहन को बहुत देर तक भूखा रहना पडेगा। अत उसे शीघ्र ही भोजन कराने की कोई व्यवस्था करनी चाहिए। उन्हे एक उपाय सूझा। एक भाई ने चलनी और दूसरे ने दीपक लिया। बहुत दूर किसी ऊँचे टीले पर दीपक को रखकर उसे चलनी से ढँक दिया। लौटकर बहन से कहा कि चन्द्रोदय हो गया है तुम अर्घ्य दो और भोजन करो। बहन अर्घ्य देकर भाइयों के साथ भोजन करने लगी। प्रथम ग्रास ग्रहण करते ही पति के अस्वस्थ होने का समाचार मिला। वह अपने पति गृह के लिए चल दी। मां ने सोने के टके को उसके अचल में बाधकर कहा— मार्ग में जो कोई मिले उसके चरण छूना और जो सौभाग्यवती होने का आशीर्वाद दे उसे सोने का टका दे देना और अपने अचल गाठ बाध लेना। मार्ग मे मिलने वाले लोगों ने उसे अनेक आशीर्वाद दिए पर सुहाग का आशीर्वाद किसी ने न दिया। ससुराल में पहुँचते ही द्वार

पर छोटी ननद के उसने पैर छुए और उसने उसे अनेक आशीर्वादों के साथ ही सदा
सुहागिन रहने का भी आशीर्वाद दिया। सुहाग का आशीष पाकर उसने माँ के
आदेशानुसार सास का दिया ननद का दोरा अपने में गाँठ लगा ली। घर के भीतर
पहुँचते ही सास ने सुबकते हुए कहा—'तेरे पति की मृत्यु हो गई है। तू उसके
पास जाकर बैठ।' वह पति के पास बैठ गई और उसे पुनर्जीवित करने का
उपाय सोचने लगी। दिन और महीने बीतने लगे। प्रत्येक मास की चौथ
से वह अपने पति को जीवित करने का वरदान माँगे। सभी चौथ पर ताना
कसें और कहें कि अगले महीने की चौथ हमसे बड़ी है उससे वरदान माँगना। एक
के बाद एक चौथ आई पर उस पर कोई दया न की। ऐसा होते-होते कार्तिक की
चौथ (करवा चौथ) आ गई। प्रार्थिनी नारी ने अपने सुहाग की भीख माँगी। करवा
चौथ ने पहले तो ताना कसा पर जब दुखियारी नारी ने उसके पैर पकड़कर कहा—
'माँ मुझसे अपराध तो हो ही गया है तुम्हारे बिना अब मेरा कोई सहारा नहीं है।
तुम्हीं मुझे सौभाग्य दान करो।' चौथ माता के हृदय में उसके प्रति करुणा उत्पन्न
हो गई और उन्होंने आँखों में से काजल, नाखूनों में से मेंहदी तथा टीके में से रोली
निकाल दी और सेठ की पुत्री के पति पर इन सब चीजों का छींटा दिया। वह
जीवित होकर उठ बैठा और अपनी पत्नी से बोला कि उसे बहुत गहरी नींद आ गई
थी। पत्नी ने उसके सामने आदि से अंत तक का विवरण कह सुनाया। कथा का अंत
मंगल वाक्य द्वारा किया जाता है— हे चौथ माता, जैसे सेठ की बेटी को सुहाग और
सौभाग्य दिया वैसे ही सबको देना।'[1]

इस कथा का एक और रूपान्तर प्राप्त होता है जिसमें कि सेठ की बेटी अपने
पति के शव को अपनी पीठ पर ले जाती है और छोटी माता से सौभाग्य की याचना
करती है। भाभी अपनी उँगली को चीरकर रक्त की बूँदें शव के मुँह में डाल देती
है और वह पुनर्जीवित हो जाता है।

'सकट चौथ' की कथा में दिखाया गया है कि निर्धन जेठानी शुद्ध भाव से
सकट माता[2] की पूजा करती है और देवरानी के यहाँ से मिले हुए चावल के चून
और मट्ठा को स्वयं माता उसके घर में आकर ग्रहण करती हैं और मल माया फैला
कर चली जाती हैं। यही 'मल माया' कंचन के रूप में परिवर्तित हो जाती है। देव-
रानी को ईर्ष्या होने लगती है और वह भी अपनी सकट चौथ को जेठानी द्वारा बताई
गई विधि से पूजा करती है। प्रातःकाल होने पर धन के स्थान पर पूरा घर दुर्गन्ध

१ प्रस्तुत अध्याय में जो भी लोक-कथाएँ उदाहरण के रूप में दी जा रही
हैं उन्हें लेखक ने कनौजी में कही बातों से रूपान्तरित कर लिया है।

२ डा० सत्येन्द्र ने ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन (पृ० ८६१) में सकट का सम्बन्ध
गणेश से स्थापित किया। कनौजी में स्थिति दूसरी है। इसमें सकट को माता
कहकर सम्बोधित किया गया है और उन्हें देवी के रूप में प्रतिष्ठा मिली है।

से भरा हुआ मिलता है। इस कथन द्वारा संकेत किया गया है कि व्रत के लिए शुद्ध भावना का होना नितान्त आवश्यक है।

पूर्व जन्म के कर्मों के परिणामस्वरूप अनेक यातनाएँ भोगनी पड़ती हैं और व्रतों के अनुष्ठान द्वारा इन कष्टों का निवारण हो सकता है। इस प्रकार का भाव 'अनन्त चौदस' और जगन्नाथ की कथा में उपलब्ध होता है। 'जगन्नाथ की कथा' इस प्रकार है—

'एक पांडे और पड़ियाइन थी। पड़ियाइन ने चैत्र शुक्ल के सोमवार को व्रत रखा। पांडे हल जोतने गए थे। पूजा का सामान इकट्ठा किया गया पर पांडे के देर में लौटने के कारण पूजा में विलम्ब हो गया जिसके परिणामस्वरूप उनकी सम्पत्ति नष्ट हो गई और भीख माँगने की नौबत आ गई। दामाद आया। उसने स्थिति को देखकर सलाह दी कि बहुत से गावों में जाकर माँगो। पांडे भिक्षा की झोली भरकर लौटे पर जब रोटी बनी तो फिर चार चटिया। दामाद ने कहा 'जगन्नाथ' का शाप है। जगन्नाथ पुरी जाओ। पांडे चल दिए। मार्ग में टिके। वहाँ पर चार 'टड-वरिया' रोटी बना रहे थे। चारों ने पांडे को एक एक लोई दी। उन्होंने दो की रोटियाँ बनाई। दो को अपने पास रख लिया। एक गूजरी आई। उसने पांडे की लोइयों को अपने दही में रख लिया। ज्योंही घर जाकर लोइया को नाद में डालने लगी कि उसने देखा कि सभी जानवर मर गए हैं। रोना पीटना होने लगा। बहू से पूछा गया कि क्या बात है? उसने बतलाया। लोइया वापस दे दी गई। जानवर जी उठे।

पांडे आगे चलकर एक बाग में पहुँचे। पकने पर आमों में कीड़े पड़ जाते थे। आम के पेड़ों ने कहा कि हमारी फरियाद भी जगन्नाथ से कर देना। इसी प्रकार अन्य लोगों ने भी पांडे से कहा कि वे जगन्नाथ तक हमारी प्रार्थना पहुँचा दें। हाथी ने कहा कि हम सदा बाल में ही बँधे रहते हैं। लकड़हारे ने कहा कि हमारे सिर से कभी लकड़ी का गट्ठा ही नहीं उतरता। ऊँट के गले में चक्की हिलती है गाय का बछड़ा उसका दूध ही नहीं पीता है ताल-तलइया अलग रहते हैं कभी मिलते ही नहीं, कछुआ रात दिन पानी में रहता है, फिर भी उसके पेट की जलन दूर नहीं होती, सास बहू में पटा ही नहीं छूटता है, सबने अपना अपना दुख कहा। पांडे सबके संदेश वाहक बनकर चल दिए। चलते चलते थक गए पर निश्चय के पक्के थे अतः घुटन के बल, नाक के बल येन केन प्रकारेण चलते ही रहे। जगन्नाथ ने परीक्षा ली। उन्होंने पांडे से कहा— तुम जैसे जगन्नाथ क्या पहुँचोगे। पांडे ने उत्तर दिया—'चाहे जैसे पहुँचें, जाएँगे अवश्य।' जगन्नाथ ने कहा कि तुम भाड़ में घुस जाओ तो जानें। पांडे घुसने लगे। रोक दिए गए। फिर कहा कच्चे ढोल द्वारा पानी भर लाओ। पांडे भर लाए। जगन्नाथ प्रसन्न हो गए और पट पीताम्बर ओढ़कर वास्तविक रूप में प्रकट हो गए। पांडे पैरों पर गिर पड़े। पांडे ने उन लोगों के बारे में कहा जिन्होंने अपनी-अपनी प्रार्थनाएँ करने के लिए अनुरोध किया था। जगन्नाथ ने उन सबके पूर्व-जन्म

के अपराधों को बतलाया जिनके कारण ये लोग तरह-तरह के कष्ट पा रहे थे। और उनके निवारण के उपाय भी बतलाए। लौटकर पांडे सबको सुनाया करते गए। रास्ते में ही आ रहे। चरवाहे फूल फल लाए। लकड़ियां लाए। आधी न लीं। बची हुई लकड़ियां चरवाहे घर ले आए। मां ने उनसे पूछा कि ये लकड़ियां सोने की कैसे हो गयीं।

दूसरे सोमवार को पांडे अपनी बड़ी पुत्री की ससुराल पहुंचे। पाण्डे ने कहा कि फल फूल ले आओ। पुत्री ने कहा—किसका बार? कथा करके छोटी पुत्री के यहां गए। बाप की सेवा सुश्रूषा के लिए पैसे की आवश्यकता थी। निर्धन पुत्री ने अपने जेवर सेठ के यहां गिरवी रख लिए। पांडे ने नहाकर पूजा की। घर में नाना प्रकार की सम्पत्ति हो गई। पुत्री ने अपने जेवर वापस ले लिए। सेठ ने धन प्राप्ति का रहस्य पूछा। बतलाया गया। पांडे को जगन्नाथ की कथा के लिए बुलाया गया। सारी सम्पत्ति को एकत्र करके रखा गया। कथा हुई। अन्त में सारी सम्पत्ति तिगुनी हो गई।

अन्त में पांडे घर पहुंचे। कंचन-पाट पड़े किवाड़ें पड़े। पड़ियाइन बुला ले गई। जैसे पांडे-पड़ियाइन और कथा में वर्णित अनेक लोगों पर जगन्नाथ सहाय हुए वैसे ही सभी पर हों।

कनौजी क्षेत्र में २१ व्रतों से सम्बन्धित कथाएं मिली हैं। एक एक व्रत के लिए अनेक कथाएं कही जाती हैं—जैसे संकट चौथ के लिए ही चार कथाएं प्रचलित हैं और इन चारों को जब तक नहीं सुना सुनाया जाता तब तक अनुष्ठान की पूर्ति नहीं होती। इसके अतिरिक्त एक एक कहानी के अनेक रूपान्तर भी मिलते हैं। इन सभी कथाओं के विश्लेषण से हम कथाओं के मर्म तक बिना विस्तार के भी पहुंच जाते हैं। ऊपर उदाहरण के लिए जो कथाएं दी गई हैं उन्हीं से मिलता जुलता कथ्य हम अन्य कथाओं में भी देखने को मिलता है।

(आ) देव कथाएं

व्रत-कथाओं की भांति इन देव कथाओं में भी बहुधा देवी-देवताओं का उल्लेख रहता है परन्तु ये कथाएं व्रतों के अनुष्ठान के अंग के रूप में नहीं कही जाती हैं। इनमें धार्मिक भावना ओतप्रोत रहती है और पौराणिक आख्यानों में भी लोक-तत्व का मिश्रण कर लिया जाता है। परिणाम-स्वरूप ये कथाएं धर्मगाथाओं (मिथालोजी) की अपेक्षा लोकगाथा के अधिक निकट पड़ती हैं। इन कथाओं में देवी-देवता पात्र बनते हैं और वे अनेक अलौकिक गुणों से अभिमंडित होते हैं परन्तु इनमें देवत्व की अपेक्षा मानवत्व को अधिक उभारा जाता है। जिस पर इनकी कृपा होती है, उसकी सहायता में ये फिर उचितानुचित का किंचिन्मात्र भी विचार नहीं करते हैं और जिस पर क्रुद्ध होते हैं उसकी जड़ खोदने में अनुचित से अनुचित साधन का उपयोग करते

से भी झिझकते नहीं। देवी देवताओं का चरित्र प्राय इस रूप में अंकित किया जाता है कि वे सद्गुणों की प्रतिष्ठा और असत का उन्मूलन करना अपना सर्वस्व समझते हैं। किस स्थिति में मनुष्य का क्या धर्म है ? इसे वे अपने कार्यों द्वारा दृष्टांत रूप में समझाते हैं। देवी देवताओं के अतिरिक्त इन कथाओं में ऐसे पात्रों को भी प्रमुखता मिलती है जो धार्मिक जीवन बिताने में ही अपने जीवन का उत्सर्ग कर देते हैं। कुछ कथाएं ऐसी मिलती हैं जिनमें 'काल' की महत्ता का उल्लेख मिलता है—ऐसी कथाओं के शीर्षक प्राय पद्य में होते हैं, जैसे—'पुरुष बली नहिं होत है, समय होत बलवान। भीलन लूटी गोपिका वहि अर्जुन वहि बान।' इसी प्रकार कुछ कथाओं में भाग्य को सर्वाधिक महत्वपूर्ण सिद्ध किया जाता है। कनौजी क्षेत्र में इस वर्ग के अंतर्गत आने वाली कुछ कथाओं के नाम नीचे दिए जा रहे हैं—१ कृष्ण जन्म की कथा, २ कृष्ण सुदामा की कथा ३ हनुमान जन्म की कथा ४ लव कुश की कथा, ५ सीता-हरण की कथा ६ कंस वध की कथा ७ शिव-पार्वती की कथा, ८ नारद के घमंड की कथा, ९ भाग्य और लक्ष्मी की कथा, १० धर्म की कथा, ११ राजा रघु की कथा, १२ राजा अम्ब की कथा, १३ भक्त प्रह्लाद की कथा, १४ भक्त ध्रुव की कथा, १५ मोरध्वज की कथा १६ सत्यवादी हरिश्चन्द्र की कथा।

उपरिलिखित कुछ कथाओं में चमत्कार प्रवृत्ति की प्रधानता रहती है। भगवान विष्णु नारद के माध्यम से अनेक अद्भुत एवं चमत्कारपूर्ण कार्य सम्पादित करते हैं तथा लोगों को अपनी लीला से मुग्ध करते हैं। भक्तों की कथाओं में भी चमत्कार की प्रवृत्ति पुष्कल मात्रा में पाई जाती है। भक्त प्रह्लाद को पहाड़ की चोटी से गिराया जाता है पर उनका बाल बाँका नहीं होता। आग में जलाने का प्रयास किया जाता है, पर उसके स्थान पर होलिका की अग्नि में आहुति हो जाती है। अन्य भक्त भी अनेक चमत्कार दिखलाते हैं। कुछ कथाओं में तुलना की प्रवृत्ति भी पाई जाती है। इनमें यह वर्णित रहता है कि कथागत पात्रों में से कौन बड़ा है ? उदाहरण के लिए लक्ष्मी बड़ी है या भाग्य ? इन कथाओं की प्रवृत्ति को स्पष्ट करने के लिए एक कथा का सार यहाँ प्रस्तुत करना अनपेक्षित न होगा। कहानी संक्षेप में इस प्रकार है—

'सुर लोक में भाग्य और लक्ष्मी में संघर्ष छिड़ गया। भाग्य का कहना था कि मैं सब कुछ हूँ। मेरी तुलना में लक्ष्मी नगण्य है। उधर लक्ष्मी को अपनी महत्ता का अहंकार था। उसका कहना था कि मेरा लोहा त्रलोक्य मानता है। झगड़ा इतना बढ़ा कि देवताओं ने बीच में पड़कर कहा कि भगवान विष्णु ही इस विषय में विचार करके निर्णय दे सकते हैं कि कौन अधिक महत्वपूर्ण है। दोनों विष्णु के पास गए। दोनों के विवाद को दूर करने लिए विष्णु सभी देवताओं को मृत्यु लोक में ले आते हैं। एक दरिद्र ब्राह्मण का आतिथ्य ग्रहण किया जाता है। कालांतर में ब्राह्मण के पुत्र का संयोगवश एक राजकुमारी के साथ विवाह होना निश्चित हो जाता है। समस्या उठती है कि बारात का प्रबन्ध कैसे किया जाय। ब्राह्मण के पास धन के नाम

पर एक पैसा भी नहीं है। भगवान विष्णु ब्राह्मण पर सहाय हो जाते हैं। वे अपने अनेक चमत्कारों से ब्राह्मण को सब प्रकार से सम्पन्न बना देते हैं। दरिद्र ब्राह्मण के पुत्र का विवाह राजकुमारी से हो जाता है। स्वयं ब्राह्मण कभी स्वप्न में भी ऐसी कल्पना नहीं कर सकता था। उसके विवाह के सम्पन्न होते ही सब कहने लगते हैं कि ब्राह्मण पुत्र बड़ा ही भाग्यशाली है। दरिद्र होते हुए भी उसका विवाह राजकुमारी से हो गया जबकि अनेक देशों के राजकुमार समस्त धन वैभव से सम्पन्न होते हुए राजकुमारी का वरण न कर सके। भगवान विष्णु को स्वयं कुछ भी नहीं कहना पड़ा। सभा द्वारा यह घोषणा कर दी गई कि भाग्य के आगे लक्ष्मी की कुछ भी नहीं चलती है।

(इ) कारण निर्देशक कथाएँ

इस वर्ग की कथाओं में प्रकृति में होने वाले नाना व्यापारों के मूल कारणों की व्याख्या की जाती है। प्रकृति के अनेक उपादानों—जैसे सूर्य, चन्द्रमा, पृथ्वी आदि को देवता के रूप में माना जाता है। अतः इनसे सम्बद्ध जो भी विश्वास हैं उनमें धार्मिकता का पुट रहता है। इतना ही नहीं कुछ पशु-पक्षियों के स्वरूप या स्वभावगत विशेषताओं में धार्मिकता का रंग दे दिया जाता है और उनके लिए भी किसी कारण का निर्देश कर दिया जाता है।

इन कथाओं में बतलाया जाता है कि सूर्य और चन्द्रमा दोनों भाई थे। सूर्य अपनी माता का आज्ञाकारी पुत्र नहीं था जबकि चन्द्रमा माता के इंगित मात्र पर ही सब भाँति के कष्टों को सहन कर उनकी आज्ञा को शिरोधार्य करता था। सूर्य माता के खाने के लिए कभी भी कोई वस्तु नहीं लाता था, स्वयं खा जाता था। चन्द्रमा खाद्य वस्तु को पहले माता के चरणों पर रख देता था और उसके पश्चात् यदि माता उसे कुछ देती थी उसी को ग्रहण करता था। अपने दोनों पुत्रों के व्यवहार के अनुसार माता ने सूर्य को शाप दिया कि उसे कभी भी विश्राम न मिले, वह सदैव चलता ही रहे, उसे कभी भी शीतलता न मिले, सदैव भीषण ज्वाला में तपा करे। इसके विपरीत चन्द्रमा के लिए उसने वरदान दिया कि वह सदैव शीतल रहे और उसे पर्याप्त मात्रा में विश्राम मिले।

एक कारण निर्देशक कथा में इस बात की चर्चा की गई है कि 'पृथ्वी और आकाश पहले एक-दूसरे के अत्यधिक निकट थे। एक बुढ़िया सदैव पूजा पाठ में रत रहती थी। जब भी वह अपने घर को साफ करे या अन्य कोई कार्य करे आकाश से उसका सिर टकरा जाए। बहुत दिनों तक वह इस कष्ट को सहन करती रही परन्तु एक दिन उसके धैर्य का बाँध टूट गया और उसने आकाश के जोर से झाड़ू मार दिया। उसमें धर्म का इतना अधिक तेज व इतनी अधिक दिव्य शक्ति थी कि आकाश चोट को न सह सका और झाड़ू के धक्के के लगने के कारण बहुत ऊँचाई पर पहुँच गया। बुढ़िया के भय से अब भी नीचे आने का साहस नहीं कर पाता।'

गिलहरी की पीठ की धारियों के सम्बन्ध में भी एक कथा प्रचलित है। कथा में कहा गया है कि 'जिस समय राम लंका पहुंचने के लिए समुद्र में सेतु बांध रहे थे उस समय अनेकानेक लोगों ने उन्हें सहायता दी। सहायता देने वाला में से गिलहरी भी एक थी। जब राम सेतु बांधने में सफल हुए तो गिलहरी उनसे आशीर्वाद मांगने आई। राम उसके कार्य से अत्यधिक प्रसन्न थे। अतः उन्होंने आशीर्वाद देने के लिए उसकी पीठ पर हाथ रख दिया। परिणामस्वरूप उसकी पीठ पर राम की उँगलियों के चिन्ह बन गए। गिलहरी की पीठ पर जो धारियां आज भी पाई जाती हैं, वे राम के आशीर्वाद की प्रतीक हैं।

इसी प्रकार अन्य अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं, जो कारण निर्देशक कथाओं (एटयोलोजिकल स्टोरीज) के अन्तर्गत रखी जा सकती हैं।

२ शिक्षा प्रधान कथाएँ

इस वर्ग में आने वाली कथाओं का दोहरा उद्देश्य होता है। एक ओर तो ये श्रोताओं का मनोरंजन करती हैं पर दूसरी ओर इस विनोदशीलता में लिपटी हुई शिक्षा का उपदेश भी दृष्टान्त रूप में इनमें उभर आता है और अन्ततोगत्वा यह शिक्षा या उपदेश ही कथा का प्राण बन जाता है और यही तत्व इन्हें मनोरंजनात्मक कथाओं की अपेक्षा शिक्षात्मक कथाओं के अधिक निकट ले आता है। पशु पक्षियों की कथाएं इसी वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। इस वर्ग में आने वाली वे कथाएँ भी होती हैं जिनमें किन्हीं समस्याओं या प्रश्नों को लेकर कथानक का विकास होता है और कथा के समाप्त होते होते ऐसा समाधान प्रस्तुत हो जाता है जो कि श्रोताओं पर किसी आदर्श अथवा नीति की छाप छोड़ जाता है। इन कथाओं का उद्देश्य धार्मिक स्थान पर लोक व्यवहार शिक्षा पर अधिक बल देता है। धार्मिक शिक्षा के उद्देश्य को लेकर जो कथाएँ चलती हैं उनका विवेचन धर्माभिव्यक्ति प्रधान कथाओं के अन्तर्गत किया ही जा चुका है। प्रस्तुत वर्ग में शिक्षा या उपदेश की नीरसता को दूर करने के लिए कहीं तो पशु पक्षियों को पात्र बनाया जाता है और कहीं, समस्या और प्रश्नों के समाधान का समावेश किया जाता है।

(अ) पशु पक्षी सम्बन्धी कथाएँ

संसार के प्रायः सभी देशों की लोक कथाओं में पशु एवं पक्षियों को विशिष्ट स्थान मिला है। इनमें वर्णित पशु एवं पक्षी मनुष्य से टक्कर लेते हैं। मनुष्य उनसे बातें करते हैं तथा दोनों एक दूसरे को परास्त करने में निरन्तर प्रयत्नशील रहते हैं। पशु एवं पक्षी मनुष्य से भी अधिक ज्ञानवान हैं और कभी-कभी वे अपनी बुद्धि के द्वारा मनुष्य की रक्षा करते हैं और आगे सावधान रहने की शिक्षा भी देते हैं। देखा

कहा गया है कि अपेक्षाकृत अविकसित जातियों की कथाओं में अधिकांश पात्र पशु या पक्षी ही होते हैं और इनकी भाषा और कार्य मनुष्य की भाषा और कार्य से अत्यधिक साम्य रखते हैं और कथक्कड़ इन कथाओं को इतनी अधिक गम्भीरता के साथ कहता है कि ऐसा प्रतीत होने लगता है कि उसे मनुष्य और पशु की स्पष्ट भेद रेखा का ज्ञान ही नहीं है।[1] पशु-पक्षियों से सम्बन्धित इन कथाओं की बहुत पुरानी परम्परा है। यद्यपि इस प्रकार की कथाओं की पुस्तक पंचतन्त्र को प्राचीनतम पुस्तक माना जाता है तथापि इस प्रकार की कथाएँ पंचतन्त्र से पूर्व भी प्रचलित रही होंगी और पंचतन्त्रकार ने इन्हीं से प्रेरणा प्राप्त करके इस ग्रन्थ की रचना की होगी।[2] यों तो पुराणों एवं धर्म गाथाओं (माइथालोजी) में भी पशु-पक्षियों को स्थान मिला है और इन में कभी कभी स्वयं देवता या ईश्वर पशु रूप में अवतार लेता है।[3] परन्तु यहाँ ऐसी कथाओं को लोक कथा की संज्ञा नहीं दी गई है। लोक-कथा उन्हीं को माना गया है जिनमें विशुद्ध लोक-दृष्टि हो, जो धर्म गाथाओं के प्रभाव से अछूती हो और जिनकी रचना में एक पशु की बुद्धिमत्ता और दूसरे पशु की मूर्खता को दिखाना उद्देश्य हो। तथा कथा के इस तन्तु से किसी प्रकार की शिक्षा भी मिलती हो।

पशु-पक्षियों से सम्बद्ध कथाओं को दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है। एक वर्ग में वे कथाएँ आती हैं जिनमें शिक्षा या उपदेश की प्रमुखता रहती है। इस वर्ग को पंचतन्त्रीय कथाओं के नाम से अभिहित किया जा सकता है। इस वर्ग में वे कथाएँ भी आती हैं जिनमें प्रकट रूप में मनोरंजन की अधिकता रहती है। परन्तु प्रच्छन्न रूप में कोई-न-कोई शिक्षा अवश्य ही निहित रहती है। ये कथाएँ शिक्षा की इसी प्रच्छन्नता के कारण पंचतन्त्रीय कथाओं से कुछ पार्थक्य सा लिए हुए होती हैं। दूसरे वर्ग में वे कथाएँ आती हैं जिन्हें मन्द कथाएँ या लघु छन्द कथाएँ (ड्रोल्स) कहा जाता है। इन कथाओं में भी प्राय सभी पात्र पशु एवं पक्षी ही होते हैं। इनके द्वारा बालकों का मनोरंजन के साथ साथ नैतिक या बौद्धिक शिक्षा भी दी जाती है।

प्रथम वर्ग में आने वाली कथाओं का तो कहीं कहीं पंचतन्त्र की कथाओं से न्यूनाधिक साम्य मिलता है। अधिकांश कथाएँ तो अपना स्वतन्त्र अस्तित्व रखती हैं परन्तु समग्र रूप से कहा जा सकता है कि इनकी प्रवृत्ति और ढांचा पंचतन्त्रीय कथाओं जैसी ही है। अत इन्हें पंचतन्त्रीय कथाएँ नाम दिया जा सकता है। हो सकता है सुदीर्घ परम्परावाली इन्हीं कथाओं से पंचतन्त्र कथाओं ने कभी प्रभाव ग्रहण किया हो, क्योंकि सदा से ही शिष्ट साहित्य लोकवार्ता से कुछ न कुछ अवश्य आदान करता रहा है। इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर लॉ फाउण्टेन ने कहा है— पशु

1 डा० एस० दत्त—हैण्ड बुक आफ फोकलोर पृ० ४२
2 होरेस हेमन विल्सन—हिन्दू फिक्शन वाल्यूम ४, पृ० ८६
3 विष्णु का मत्स्यावतार और नृसिंहावतार।
4 प्रफुल्ल गोस्वामी—बैलेड्स एण्ड टेल्स आव् आसाम पृ० ७८

पक्षियों की ये कथाएँ आदिम और असंस्कृत मानव की प्रथम सूझ हैं। इन्हीं कथाओं को सन ईस्वी के पूर्व चतुर्थ शताब्दी में ईसप की कथाओं को सुना दी गई है।[1] उपर्युक्त मत के आधार पर कहा जा सकता है कि प्राचीन काल में लोक प्रचलित कथाओं का संग्रह करके उन्हें पचतन्त्र नाम दे दिया गया हो तो इसमें अधिक आश्चर्य की बात नहीं है।

इस वर्ग में आने वाली कथाओं में सियार का महत्त्वपूर्ण स्थान है। यह इतना अधिक चालाक एवं दुष्ट है कि अन्य पशुओं का कहना तो क्या, शेर भी इससे पराजित होता है। दूसरे जानवरों को धोखा देने में यह हस्तसिद्ध है और कठिन से कठिन परिस्थिति में अपनी रक्षा करने का कोई उपाय निकाल ही लेता है। कुछ कथाएँ ऐसी भी हैं जिनमें उसे मुँह की खानी पड़ी है। अन्य पशुओं की तुलना में शेर को अधिक भोला भाला एवं मूर्ख के रूप में चित्रित किया गया है। मनुष्य तो उसे हैरान करता ही है सियार भी उसको नाकों चने चबवाता है। एक कथा में तो वह सिंह पछाड़ नाम धारण करके सिंह के घर में ही पिल पड़ता है। एक अन्य कथा में जगल के राजा शेर के आतंक से त्रस्त होकर जगल के सभी जानवर यह निश्चय करते हैं कि प्रतिदिन एक जानवर शेर के पास आ जाया करेगा और नित्यप्रति की आतंकपूर्ण स्थिति समाप्त हो जाएगी। कालान्तर में सियार की बारी आती है। 'सियार विलम्ब से पहुँचता है और भूखा शेर उस पर क्रोध दिखलाता है। बड़े दीन स्वर में सियार कहता है कि मैं तो समय पर ही आ रहा था परन्तु रास्ते में एक दूसरा शेर मिल गया और इसीलिए विलम्ब हो गया।' शेर क्रोध से व्याकुल हो जाता है और कहता है कि 'उस स्थान पर मुझे ले चलो जहाँ पर दूसरा शेर है। उसने मेरे राज्य में हस्तक्षेप करने का कैसे साहस किया। सियार एक कुएँ के पास उसे ले जाकर बतलाता है कि शेर इसी कुएँ के अन्दर रहता है। शेर कुएँ में अपने प्रतिबिम्ब को देखता और जोर से गर्जन करता है। गर्जन की प्रतिध्वनि को सुनकर उसका क्रोध द्विगुणित हो जाता है और आवेश में आकर अपने शत्रु का विनाश करने के लिए कुएँ में कूद पड़ता है और अपने सर्वनाश का स्वयं कारण बनता है।'[2] सियार की चतुराई से जगल के सभी जानवर प्रसन्न एवं आनन्दित होते हैं।

एक अन्य कथा में सियार को मनुष्य के सहायक के रूप में भी दिखलाया गया है। शेर किसी जाल में फँस गया है। वह किसी आदमी से बन्धन मुक्त होने की प्रार्थना करता है। ज्यों ही आदमी उसे बन्धन मुक्त करता है त्यों ही वह उसे ही खा जाने को तैयार हो जाता है। ऐसी स्थिति में भी आदमी शेर से पूछता है कि 'शेर जैसा वीर एवं धर्मात्मा क्या अपने उद्धारक को ही खा जाएगा ? शेर हाँ में

१ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, वाल्यूम ६, पृ० २० २१
२ कहीं कहीं इस कथा में सियार के स्थान पर खरगोश का नाम आता है।

उत्तर देता है। आत्मा नैतिक निर्णायकता से निर्णय कराना चाहता है। इस बार नदी की धारा तेज़ के बीच में ही निर्णय देते हैं। तीसरा निर्णायक सियार निर्णय देने से पहले स्थिति का अध्ययन करना चाहता है। वह पूछता है कि शेर को जब मनुष्य ने उपकार किया उस समय वह किस स्थान में फँसा हुआ था। ज्यों ही शेर जाल में आकर दिखाना चाहता है, सियार आदमी से कहता है कि अब तुम मन चाहो और इसका नाश ही अपना न कर दो। यों तो सियार मनों में दानों माना जाता है पर बुद्धि में उसे पराजय ही होना पड़ता है। एक कहानी में तो ऊँट ने भी उसका बदला लिया है। ऊँट और सियार ने मिलकर सलाह की कि नदी के उस पार चलकर ईख खाये जायें। सियार ने ऊँट की पीठ पर बैठकर नदी पार की। सियार ने जल्दी जल्दी गन्ने खाये और खाकर हुआ हुआ करने लगा। ऊँट अभी गन्ने खाने में ही संलग्न था और खेत के मालिक के आने की उसने आहट ही न सुनी। किसान ने उसकी खूब पिटाई की। लौटते समय ऊँट ने सियार से शिकायत करते हुए कहा कि यदि वह हुआ हुआ न करता तो किसान के डंडे उसकी पीठ पर न पड़ते। सियार ने अपने स्वभाव की विवशता बतलाई। ऊँट ने भी ये बातें मन में तय कर लिया। ज्यों ही नदी पार कर रहा था सियार से बोला—मुझे [illegible] लगी है और अपने स्वभाव की विवशता बतलाते हुए लेट गया। सियार नदी में डूब गया। मूर्ख की विद्या का प्रदर्शन दिखाने वाला और इस प्रकार से ठगने वाला सियार लोककथाओं में भी अपमानित होता है। अन्य नहीं तो उसके दांव को स्वीकार कर लेते हैं पर लोककथा आरम्भ में दांव को स्वीकार करके भी जब लौटने लगता है तो अपने दांव को दिखाकर सियार के सारे गौरव को नष्ट भ्रष्ट कर देता है।

कुछ कथाओं में इस बात का भी उल्लेख होता है कि भिन्न पशु भाषा भी जानते हैं परन्तु या तो कुछ ही इनको समझ पाते हैं या किसी और कारण से ही इनका उल्लेख आ जाता है। एक कथा में बतलाया गया है कि एक बुढ़िया ने सोते समय कुछ ऐसी बात कहनी चाही जिसको सुनकर यदि कोई चोर आसपास बैठा हो तो सुन ले। उसने सोच विचारकर चोर को डराने के लिए स्वर में प्रार्थना करते हुए कहा — हे भगवान लमटागर (लम्बी टाँग वाला) से मुझे बचाना। कहीं वह मुझ पर आक्रमण न कर दे। गाय चुराने के लिए घर के पीछे खड़े चोर ने जब यह सुना तो इस असमंजस में पड़ गया कि यह लमटागर कौन-सी बला है। उसी समय घर के पीछे अँधेरे में बुढ़िया की गाय को उठा ले जाने के लिए एक शेर भी आया था। वह भी लमटागर के चक्कर को न समझ पाया। चोर लमटागर को पहचानने का प्रयत्न करके भयभीत होकर भागना चाहता है और अँधेरे में शेर की पीठ समझकर उस पर चढ़ बैठता है। शेर समझता है कि उसको पकड़ने वाला यह व्यक्ति है जिसके बारे में बुढ़िया ने ईश्वर से प्रार्थना की थी। इतना सोचते ही वह अपने प्राण बचाने

के लिए तेजी से जंगल की ओर भागने लगता है। अपनी सवारी की तेज दौड़ को देखकर चोर समझता है कि उससे भूल हो गई है और वह रामटौगर पर चढ़ गया है। साहस करके वह उसकी गर्दन मोड़कर रोकना चाहता है पर शेर भय के कारण दौड़ता ही चला जाता है। चोर डर के कारण शेर की पीठ से गिरकर नीचे आ जाता है पर गिरते समय अपने सम्हलने के लिए शेर की पूछ को दबाने के साथ वह पकड़ लेता है और परिणामस्वरूप पूछ की खाल उसके हाथ में रह जाती है। शेर भाग जाता है और बाद में समझता है कि यह खाल उधेड़ने वाले के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकता। अतः वह शेरों की सभा बुलाता है और आदमी से बदला लेने का निर्णय किया जाता है। उधर जब आदमी पूछ की खाल को देखता है तो उसे आश्चर्य होता है कि वह तो अब तक शेर पर चढ़े हुए था। भय के कारण वह एक पेड़ पर चढ़ जाता है। सवेरा होने पर शेर पता लगा लेते है कि वह आदमी पेड़ पर चढ़ा है। वह लोग एक के ऊपर एक चढ़कर आदमी तक पहुँचने की सीढ़ी बना लेते हैं और सबसे नीचे वही शेर रहता है जिसका बदला लेने के लिए यह उपक्रम किया गया है। आदमी समझता है कि अब उसका अंत होने वाला है। इस समय उसे युक्ति सूझती है कि डरे हुए शेर को डरा दिया जाए तो उसके भागने से यह सीढ़ी ही अस्त व्यस्त हो जाएगी। वह जोर से चिल्लाता है कि पूछ कटा यही है, होशियार हो जा। पूछकटा शेर आदमी की चिल्लाहट सुनकर भयभीत हो जाता है और भाग जाता है। और भागने ही सभी शेर एकदम नीचे गिर पड़ते हैं। इसी बीच में आदमी भाग जाता है।

जिन पशुओं का उल्लेख ऊपर हो चुका है उनके अतिरिक्त बिल्ली, रीछ, बकरी, चूहा, साँप इन सभी को अनेक कथाओं में स्थान मिलता है। पक्षियों में मोर, कौवा, हंस, तोता, पिड़की, गौरैया और कबूतर या तो कथा के मुख्य पात्र बनते हैं या कथा का विकास कराने में योगदान करते हैं।

(आ) सूत्र कथाएं (ड्राल्स एवं क्युम्युलेटिव ड्राल्स)

ये कथाएँ अन्य कथाओं से अपना कुछ वशिष्ट्य रखती हैं। इनका कथानक अति संक्षिप्त होता है और स्थान-स्थान पर इसे दोहराया जाता है। प्रभुविष्णु अंश संक्षिप्त पद में होता है अतः इन्हें सूत्र कथा कहा जा सकता है। इनके दो भेद किए जाते हैं—१ सामान्य ड्राल्स २ क्रम सबद्ध (क्युम्युलेटिव ड्राल्स)।

१ सामान्य सूत्र कथाएँ

कनौजी क्षेत्र में इस भेद से सम्बन्ध रखने वाली अनेक कथाएँ उपलब्ध होती हैं। इनकी प्रकृति को समझने के लिए कुछ उदाहरण देने अपेक्षित होंगे।

'साझे की खेती' नामक कथा में एक पिड़कुलिया और कौआ का साझे में खेती

करना तय होता है। गन्ने की जुताई के लिए पिड़कुलिया कौए से चलने के लिए कहती है। कौआ उत्तर देता है—

पहुँचा प बइठ हैं।
पाव गड़ात हैं।
तुम चलो हम आत हैं।

पिड़कुलिया मन में जान जाती है पर कौआ महाशय आते भी नहीं। इसी प्रकार कौए से बोआई, सिंचाई, निराई, कटाई, मड़ाई और ओसाई के लिए चलने को कहती है। परन्तु कौआ वहीं पूर्व निश्चित उत्तर देता है। ज्यों ही अनाज तैयार होता है, वह उस बँटवारे के लिए पहुँच जाता है और स्वयं तो गेहूँ ले लेता है और पिड़कुलिया के लिए भूसा बच रहता है। पिड़कुलिया भूसे में ही सन्तुष्ट हो गई और कौआ गेहूँ पाकर भी प्रसन्न नहीं हुआ।

उपर्युक्त कथा में दिखलाया गया है कि कुछ बहाना करने में इतने कुशल होते हैं कि अपने कर्तव्य का पालन करने की आवश्यकता का ही अनुभव नहीं करते। अतः उनका जीवन सुखमय नहीं बीतता। अतः मनुष्य को चाहिए कि वह कर्तव्यशील रहकर अपना जीवन बिताये। सुख मिलने की इसी में सम्भावना है। इस प्रकार यह कहानी एक ओर तो बालकों का मनोरंजन कराती है दूसरी ओर उन्हें नैतिक शिक्षा भी देती है।

एक अन्य कथा में दिखलाया गया है कि माता अपने पुत्रों की रक्षा करने के लिए भीषण रूप धारण कर लेती है। जब भेड़िया बकरी के बच्चों को खा जाता है तो वह भेड़िये के पेट को फाड़ कर उसमें से अपने बच्चों को निकाल लेती है। कहानी इस प्रकार है। एक बकरी के चऊ, मेऊ, आल और बाल चार बच्चे थे। जब वह बाहर जाती थी तो किवाड़ बन्द कर जाती थी और लौटकर कहती थी—

चऊ खोलो किवार।
मेऊ खोलो किवार।
आल खोलो किवार।
बाल खोलो किवार।'

इसे सुनकर बच्चे किवाड़ खोल देते थे। एक दिन भेड़िये ने बकरी के किवाड़ खुलवाने की बात सुन ली। दूसरे दिन बकरी के चले जाने पर उसने भी उसी [illegible]। बच्चों ने किवाड़ खोल दिए और वह उन्हें चट कर गया। बकरी ने जब किवाड़ खुले देखे और बच्चों को न पाया तो समझ गई कि भेड़िये ने ही उनको खा लिया है। वह सीधे बढ़ई के यहाँ जाकर सींग तेज करा लाई और तेली के यहाँ

उनमे तेल लगवा आई। फिर भेडिये के पास गई। उसका पेट अपने सींगो से फाड डाला और अपने जीवित बच्चे निकाल लिए।

(२) क्रम सवृद्ध सूत्र कथाएँ (क्युम्युलेटिव ड्वाल्स)

प्रस्तुत प्रकार की कथाओ मे कथानक लघु एव सन्तुलित वाक्यो की पुनरावृत्ति के द्वारा अग्रसर होता है। काय पात्र नाम सवाद अथवा जोडने की जो भी सामग्री होती है, उसका इस ढग से सयोजन होता है कि उससे चरम सीमा तक पहुचा जा सके और अनिवाय रूप से तो नहीं पर प्राय होता यही है कि चरम सीमा तक पहुँचने के बाद समस्त चरणो को विपरीत क्रम मे चलाया जाकर कथा की परिसमाप्ति की जाती है।[1]

कनौजी क्षेत्र मे इस वग की भी कई कथाएँ उपलब्ध हुई हैं। इनकी प्रकृति को समझने के लिए एक उदाहरण दिया जा रहा है। कहानी का शीर्षक है खूटे मे चना। एक कौए को कहीं से एक चना मिल गया है। बडी प्रसन्नता के साथ वह एक खूटे पर बठकर उसे खाने का उपक्रम करने लगा। कुछ असावधानी हो जाने के कारण चना खूटे के अन्दर चला गया क्योकि खूटा फटा हुआ था। निकालने का उसने बहुत प्रयत्न किया पर असफल रहा। उसने सोचा कि बढई की सहायता से खोई वस्तु प्राप्त की जा सकती है। बढई के पास जाकर उसने निवेदन किया—

बढई बढई खूँटा फार।
खूँटा चना देय ना।
मैं चब्बूँ का ?

बढई ने आनाकानी की तो वह राजा के पास गया। वहा भी काम न बना तो वह क्रमश रानी, चूहा, बिल्ली कुत्ता, लाठी, आग नदी हाथी सभी के पास गया, पर किसी ने सहायता ही नही की। अन्त मे वह चींटी के पास पहुँचा। चींटी को उस पर दया आ गई। वह हाथी की सूड मे घुस गई। हाथी घबराया और वह नदी को सुखा डालने के लिए तयार हो गया और फिर इसी प्रकार सभी अविलम्ब काय भी करने को तत्पर हो गए। अन्ततोगत्वा बढई का क्रम आया। उसने खूटा को फाड चना निकाल दिया और कौआ उसे लेकर प्रसन्नता के साथ उड गया।

कथा के प्रारम्भ होने के बाद प्रत्येक चरण पर तत्सम्बन्धी पूव के सभी चरण दोहराए गए हैं। चींटी तक पहुँचने का उसका यह रूप निर्मित हो जाता है—चींटी

१ डिक्शनरी आफ फोक लोर, माइथालोजी एण्ड लीजेण्ड, वाल्यूम, १, पृ० २६६

चींगी हाथी बिडार। हाथी नदी सोख ना। नदी आग बुझाय ना। आग लाठी बार ना। लाठी कुत्ता मार ना। कुत्ता बिल्ली दौर ना। बिल्ली मूस खाय ना। मूसा कपड़ा कुतरे ना। रानी राजा रूठे ना। राजा बढ़ई डाँड़ ना। बढ़ई खूटा फारै ना। खूटा चना देय ना। मैं पदूनू का ? कथा को देखने से तो इस सूत्रावली में कुछ लगता है परन्तु बाद में हाथी से लेकर बढ़ई तक सब अपने अपने काम को करने और करने जाते हैं। कौवे को किसी से प्रार्थना करने की आवश्यकता नहीं पड़ती।

इस कथा का रूपान्तर ब्रज में भी उपलब्ध होता है। कनौजी और ब्रज में उपलब्ध रूपों में बहुत कम अन्तर है। ब्रज के रूप में ठूँठ में दाना गिर जाता है और बाद में कथा में दाने के स्थान पर चना मिल भी जाता है।[1] कनौजी में ठूँठ के स्थान पर खूँटा आया है। सम्भवतः खूँटे का होना अधिक सम्भव जान पड़ता है। क्योंकि तभी तो उसको फाड़ने के लिए बढ़ई की आवश्यकता हुई अन्यथा ठूँठ (अनाज के पौधे का ठूँठ) के लिए कौआ बढ़ई को बुलाने का कष्ट क्यों करता ? उसकी चोंच ही उसके लिए पर्याप्त होती।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि समस्त सूत्र-कथाओं में बालकों के व्यावहारिक ज्ञान का विकास कराया जाता है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी अवसर आने पर अपने काम को पूरा करके ही मानता है। इससे बच्चों की कल्पना-बुद्धि जाग्रत की जाती है साथ साथ मनोरंजन तो होता ही है।

(इ) समस्या अथवा प्रश्नमूलक कथाएँ

इस वर्ग की कथाओं में कुछ ऐसी बातों को लिया जाता है जिनकी व्यावहारिक जीवन में परीक्षा की जाती है। ये बातें नीति वाक्य के रूप में रखी जाती हैं परन्तु कथानक का विकास उन्हीं के समाधान के रूप में होता है। अतः ये देखें समस्या का रूप धारण कर लेती हैं और इसीलिए इन्हें समस्यामूलक कथा की संज्ञा प्रदान की जा सकती है। इसके अतिरिक्त इस वर्ग में आने वाली वे कथाएँ भी हैं जिनमें कुछ बातें प्रश्न के रूप में अर्थ स्पष्ट कराने के लिए रखी जाती हैं। इन्हें प्रश्नमूलक कथाओं के नाम से अभिहित किया जा सकता है। उपयुक्त दोनों प्रकार की कथाओं को बुझौवल नाम भी दिया गया है।[2]

इन कथाओं के माध्यम द्वारा श्रोताओं को लोक-व्यवहार एवं नीति का

१ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक-साहित्य का अध्ययन पृ० ४०६

२ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृ० ४३० तथा लोक साहित्य विज्ञान पृ० २१०
डा० शंकरलाल यादव—हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य पृ० ३४५

शिक्षा प्राप्त होती है, जीवन के अनेक पहलुओं पर प्रकाश डाला जाता है और पग पग पर सम्भल कर चलने की सूझ बूझ पैदा करना इन कथाओं का मूल उद्देश्य रहता है।

कनौजी में दोनों प्रकार की कथाएँ प्रचुर मात्रा में उपलब्ध होती हैं। 'राजकुमार और साहूकार का पुत्र' नामक कथा में साहूकार का पुत्र दो हजार रुपये लेकर चले खरीदने जाता है। राजकुमार भी उससे चार सार मंगवाता है। रास्ते में एक चतुर मिलता है। वह चार सौ रुपया लेकर चार सार' लिख देता है—

१ रन जागे सार'
२ बरी आन्दर सार
३ गम सार'
४ तिरिया तरामे सार'

साहूकार पुत्र लौट आता है। राजकुमार इन सारों की परीक्षा करता है। वह रात भर जागकर नगर भर में घूमता रहता है। दक्षिण दिशा में एक स्त्री के रोने की आवाज आती है। वह स्त्री से रोने का कारण पूछता है। स्त्री उत्तर देती है— आज से सात दिन बाद राजकुमार को सर्प डस लेगा। राजकुमार उससे बचने का साधन पूछता है। वह बतलाती है कि चारों ओर सफाई करवाकर गुलाब के फूल के गुच्छे फैलवा देना और गुलाब जल छिड़कवा देना। चार कूँडे दूध भरवाकर उनमें मेवे डलवा देना। पत्नी को ये अथवा इसी प्रकार की अन्य रहस्यपूर्ण बात नहीं बतलाना अन्यथा तत्काल मृत्यु हो जाएगी। राजकुमार ने सारी क्रियाएँ सम्पन्न कराइं। सातवें दिन साँप आया तो दूध पीकर गुच्छों पर लेट कर चला गया। राजा वासुकि ने दूसरा साँप भेजा वह भी उसी प्रकार लौट गया। इसी प्रकार क्रमश सात साँप लौट गए। राजकुमार ने 'रन जाग सार' की परीक्षा कर ली।

राजकुमार की पत्नी और बहन पुरुष वेश में रामलीला देखने गईं। बहन लौटकर उसी वेश में सो गई। राजकुमार ने समझा कि उसकी पत्नी के साथ कोई सो रहा है। उसके मन में पहले तो यह आया कि सोए हुए व्यक्ति का वध कर दे। पर उसे 'गम सार' का स्मरण हो आया और उसने धैर्य धारण करके अपने शत्रु को सचेत करना चाहा क्योंकि उसे इसी समय बरी आन्दर सार की बात याद आ गई। सचेत करने पर उसे ज्ञात हुआ कि वह शत्रु नहीं है वरन उसकी बहन है और इस 'गम सार' और 'बरी आदर सार' की परीक्षा हो गई और उसकी बहन के प्राणों की भी रक्षा हो गई।

एक बार राजकुमार भोजन कर रहा था। चींटा चींटी में इस बात पर

झगड़ा हो रहा था कि यदि धींगा चोर से देखा जाएगा तो सारा भोजन 'भूत' हो जाएगा। राजकुमार ने चींटा चींटी की रहस्यमयी वाणी को समझ लिया और उसे हँसी आ गई। पत्नी ने हँसी का कारण पूछा पर राजकुमार ने अपनी मृत्यु के भय से बातों तक को बतलाने का वचन देकर उस समय उत्तर को टाल दिया। रास्ते में एक कुएँ के पास बकरे ने बकरी से कहा कि हमारी पिछली टाँगें पकड़ लो। हम लटककर कुएँ के भीतर की घास चुगेंगे। बाद में बकरी ने भी बकरे से वैसा ही करने को कहा। बकरे ने उत्तर में कहा कि हम राजकुमार की तरह मूर्ख नहीं हैं जो पत्नी की बात मान लें। राजकुमार को चाहिए कि वह पत्नी की खूब पीटे क्योंकि वह अपने पति के प्राण लेकर ही रहेगी। राजकुमार को इसे सुनकर तिरिया तराम मार का स्मरण हो आया। उसने लौटकर अपनी पत्नी की खूब पिटाई की। पत्नी ने वचन दिया कि अब वह कभी भी ऐसे प्रश्न का उत्तर नहीं पूछेगी। इस प्रकार तिरिया तरामन से राजकुमार के प्राणों की रक्षा हो गई।

प्रश्नमूलक कथाओं में कोई प्रश्न प्रस्तुत किया जाता है और अन्त में उसका समाधान किया जाता है। एक कथा में प्रश्नावली इस प्रकार है—'तब अब अब न जब'। समाधानकर्ता वृद्धा उसकी पुत्री और एक हिजड़े को लेकर आता है और वृद्धा स्त्री की ओर संकेत करके कहता है, यह जब (पहले) सुन्दरी थी। कन्या पुत्री अब सुन्दर है और हिजड़ा न जब सुन्दर था और न अब सुन्दर है। इस उसके समाधान प्रस्तुत करने पर उसे पुरस्कृत किया जाता है।

एक अन्य कथा में प्रश्न रखा गया है कि 'इसके साथ किसका विवाह हो?' संक्षेप में कथा इस प्रकार है। बढ़ई, दर्जी, सुनार और ब्राह्मण चारों मित्र देशाटन के लिए निकले। निर्जन वन में रात रहे। एक एक ने क्रम से पहरा दिया। बढ़ई ने पहरा देते हुए समय बिताने के लिए लकड़ी से स्त्री की एक प्रतिमा बनाई। दर्जी का पहरा आया तो उसने कपड़े पहना दिए। इसी प्रकार सुनार ने गहने पहना दिए। ब्राह्मण ने अपनी छिंगुनी (कनिष्ठिका) अंगुली के अमृत से उसमें प्राण प्रतिष्ठा कर दी। उस प्रतिमा के जीवित होने पर उसे हस्तगत करने के लिए चारों विवाद करने लगे और झगड़ा इतना बढ़ा कि अन्ततोगत्वा राजा के सम्मुख न्याय के लिए वे लोग पहुँचे। राजा ने निर्णय देते हुए कहा—बढ़ई और ब्राह्मण ने इसका निर्माण किया है और इसमें प्राण दिए हैं अतः वे पिता तुल्य हुए। दर्जी ने कपड़े पहनाए अतः वह भ्राता तुल्य रहा। सुनार ने आभूषण पहनाए अतः वही पति हुआ, क्योंकि आभूषण पहनाने का दायित्व पति का है।

३ मनोरंजन प्रधान कथाएँ

अब तक जिन कथाओं का निरूपण किया गया है उनका या तो धार्मिक व्यक्ति उद्देश्य रहा है या किसी प्रकार के लोक व्यवहार का निर्देश करना रहा है। इन

कहानियों मे किसी न किसी प्रकार का मनोरजन होता है पर वह अपेक्षाकृत अप्रत्यक्ष होता है। प्रस्तुत वग मे आने वाली कथाओ का लक्ष्य विशुद्ध मनोरजन होता है। जा सकती है। हास्य, व्यग्य अथवा अलौकिक तत्व, किसी के द्वारा भी इस मनोरजन की सष्टि इन कथाओ मे श्रोताओं की उत्सुकता वृत्ति को भली भाँति जाग्रत किया जाता है।

कनौजी मे उपलब्ध होने वाली जितनी भी लोक-कथाए हैं, उनम व्यापकता और मात्रा, दोनो दृष्टियों से मनोरजन प्रधान कथाए अधिक महत्वपूण हैं। व्रतो की कथाओ के सम्बन्ध म कहा ही जा चुका है कि इनका कथन-श्रवण स्त्रियों द्वारा होता है और वह भी नित्य प्रति नहीं वरन व्रत विशेष के अवसर पर ही। देव विषयक कथाए भी लोगो मे अधिक लोकप्रिय नहीं हैं। कारण निर्देशक कथाओ का भी अपेक्षाकृत कम प्रचार है तथा क्रम-सवद्ध-कथाए केवल बच्चो के लिए होती हैं। प्रचार की दष्टि से पशु-पक्षियो की कथाए तथा मनोरजन प्रधान कथाओ मे अधिक व्यापकता है। इन दोनों की भी यदि तुलना की जाए तो दूसरे वग की कथाए अधिक लोकप्रिय हैं। इन कथाओं में हँसी, व्यग्य, धोखा, चालाकी, अलौकिकता आदि ऐसे तत्व होते हैं जो लोक मानस को अधिक आह्लादित करते हैं। यही कारण है कि इन कथाओ का कथन-श्रवण प्राय चला ही करता है और ये आबालवद्ध, पुरुष, नारी, सभी द्वारा ग्राह्य होती हैं। मात्रा की दृष्टि से इन कथाओ पर विचार किया जाए तो इस निणय पर पहुँचा जाता है कि अन्य सभी वर्गों की कथाए मिलकर भी मनोरजन प्रधान कथाओ के वग म आने वाली कथाओं से सख्या मे बहुत कम हो पड़ेंगी। इस वग मे आने वाली कथाओ में इतनी अधिक विविधता है तथा इनकी सख्या इतनी अधिक है कि सब पर प्रकाश डालना सम्भव नहीं है। इन कथाओं की सामान्य प्रवृत्तियो को स्पष्ट करने के लिए कुछ का परिचयात्मक विश्लेषण आगे प्रस्तुत किया जाएगा।

(अ) हास परिहास पूण कथाए

हास-परिहास पूण कथाए सभी देशो और सभी वर्गों के लोगो म सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। प्रोफेसर थाम्प्सन के मतानुसार मूर्खों के बेतुके और बेहूदे कार्यकलाप, हर प्रकार के धोखा, चालाकी एव अश्लीलतापूण स्थितियो का इन लोकप्रिय हास्य कथाओ म चित्रण किया जाता है। इन कथाओ म एक ही नायक को कभी तो बहुत बड चालाक व्यक्ति के रूप म चित्रित किया जाता है और कभी-कभी उसी की बडी से बडी मूखता भी कथा का वण्य-विषय बन जाती है। उस व्यक्ति क विषय म भददे से भददे और अश्लील प्रसगों को भी जोड दिया जाता है। इनमें से कुछ कथाए सावदेशिकता गुण से युक्त होती हैं और कुछ ऐसी भी कथाए आज प्रचलित हैं जो तीन चार हजार वष पुरानी हैं और जिन्होंने विश्व भर का भ्रमण किया है।[1] हास-

१ स्टिथ थाम्पसन, दी फोक टेल, पृ० १०

परिहासपूर्ण अधिकांश कथाएँ प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से चालाकी से संबद्ध कही जा सकती हैं।[1]

कनौजी में प्राप्त होने वाली कथाओं में मूर्खों का परिहासपूर्ण चित्रण मिलता है। एक कहानी में 'सात मूर्ख कुछ धाम खोजने चले। रास्ते में एक नदी मिली। तैर कर पार किया। दूसरे किनारे पर पहुँचकर साथियों को गिना गया। छ ही निकले। इतने में गुजरते हुए ब्राह्मण ने डूबते हुए मूर्ख को बचाया। साथी बहुत प्रसन्न हुए। परोपकार का बदला देने के लिए उन्होंने ब्राह्मण के घर में रह कर सहायता देनी प्रारम्भ कर दी। जो जो काम ब्राह्मण बतलाए उस मूर्खतापूर्ण ढंग से करें और ब्राह्मण की हर प्रकार से हानि हो। एक बार तो उन्होंने ऐसी मूर्खता दिखलाई जिससे ब्राह्मणी को प्राण से हाथ धोने पड़े। बात यह थी कि इन मूर्खों की मूर्खता से ब्राह्मणी परेशान थी। एक दिन जब वे मूर्ख खेत से कट हुए धान के भारी गट्ठर सिर पर रखकर लाए और उन्होंने ब्राह्मणी से पूछा कि इन्हें कहाँ रखा जाए? ब्राह्मणी को क्रोध आ गया और उसने व्यंग्यभरी वाणी में कहा—मेरे सिर पर रख दो। मानो मूर्खों ने अपने-अपने भारी गट्ठे ब्राह्मणी के सिर पर पटक दिए और परिणामस्वरूप ब्राह्मणी की मृत्यु हो गई।

एक कहानी में एक ठाकुर की लड़की की मूर्खता का मनोरंजनपूर्ण वर्णन मिलता है। 'वह अपना विवाह संसार के सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति से करने के लिए निकल पड़ती है। रास्ते में एक राजा को सेवक द्वारा झुक झुककर प्रणाम करते देखकर वह समझती है कि वह सबसे अधिक शक्तिशाली है। वह उसके पीछे चल देती है। आगे चलकर आते हुए साधु को राजा को प्रणाम करते हुए देखकर वह 'साधु' को राजा से भी अधिक शक्तिशाली समझती है और उसके पीछे चल देती है। आगे चलकर एक मंदिर में जाकर साधु शिव की मूर्ति को प्रणाम करता है। लड़की समझती है कि मूर्ति साधु से अधिक शक्तिशाली है। वह मन्दिर में ही रुककर सोचने लगती है कि विवाह का क्या उपक्रम किया जाए। इतने में ही एक कुत्ता आता और मूर्ति पर चढ़ी हुई वस्तु खाकर अपने स्वभाव के अनुसार टाँग उठाकर पेशाब कर देता है। लड़की समझती है कि कुत्ता तो मूर्ति से भी अधिक शक्तिशाली है। वह कुत्ते के पीछे चल देती है। कुत्ता अपने मालिक किसान को देखकर दुम हिलाता हुआ उसके पैरों को चाटने लगता है। लड़की उस किसान को उस कुत्ते से भी अधिक शक्तिशाली समझती है और उससे विवाह कर लेती है।'

इस वर्ग में आने वाली कथाओं में कनौजी प्रदेश की कुछ जातियों की मूर्खता का चित्रण भी मिलता है। 'कानी' अहीर को 'परले दर्जे' का बेवकूफ माना जाता है। इन जातियों से सम्बद्ध अनेक कथाएँ मिलती हैं। एक कथा में अहीर अपना ससुराल में जाकर पहली बार दिया देखता है और उसे चन्द्रमा का बच्चा समझता

१ स्टिथ थाम्पसन, दी फोकटेल, पृ० १८६

है। पहले तो निश्चय करता है कि विदा के समय अपने सास ससुर से चन्द्रमा के इसी बच्चे को माँगेगा, परन्तु उसके मन में आशका होती है कि यह चीज मुझे मिले या न मिले। ऐसा सोचकर वह उस 'दिये' (दीपक) को चुराकर छप्पर म खास देता है। छप्पर म तत्काल आग लग जाती है और सारा घर स्वाहा हो जाता है। सभी लोग रोने हैं। 'मेरा भी चन्द्रमा का बच्चा जल गया है,' कहकर अहीर (दामाद) भी रोने लगता है। पूछने पर वस्तुस्थिति का ज्ञान होता है और सास ससुर सोचते हैं कि उनके सवनाश का कारण उनका दामाद ही बना है। अत वे उसे मारकर भगा देते हैं।

कोली की मूखता से सम्बद्ध एक कथा इस प्रकार है। सास-ससुर द्वारा निमन्त्रण भेजा जाता है कि वह अकेला ही आए। वह ससुराल के लिए चल देता है और देखता है कि उसकी परछाई उसका अनुगमन कर रही है। निमन्त्रण के अनुसार वह अकेला ही जाना चाहता है। अत वह परछाइ को समझाता है कि वह उसका पीछा न करे। पर वह मानती ही नहीं है। उसके पास जितना सामान और पैसा था, वह परछाइ को रिश्वत म दे देता है। वह फिर भी नहीं मानती। अन्त म वह एक एक करके अपने सभी कपडो को परछाई को देता है। इसी बीच म रात हो जाती है और उसकी परछाइ गायब हो जाती है। परछाइ ने उसके आग्रह को मान लिया यह समझकर वह प्रसन्न होता है। पर अब दूसरी समस्या उत्पन्न होती है। अँधेरे के कारण उसे रास्ता नही मिल रहा है। इतने म वहाँ चरने वाले बैल को देखकर वह पहचान लेता है कि यह ससुर का है। उसकी पूँछ पकडकर वह चल देता है। ससुर के घर के निकट पहुँचकर उसे इस बात का स्मरण होता है कि वह नगा है। इस स्थिति म कैसे जाए। अत घर के पीछे अँधरे मे छिप रहता है। बतनो का जूठा पानी सास घर के पिछवाडे फेंकती है जो दामाद के ऊपर गिरता है और दामाद एकदम चिल्ला पडता है। सास अपने दामाद की आवाज को पहचान लेती है और उसे घर लाकर कपडे तथा भोजन देती है। भोजन म उसे एक नई चीज मिलती है—राब। राब उसे बहुत पसन्द आती है। जब सब लोग सो जाते हैं तो अँधेरे में वह घडे से सब राब निकालता है और उसका शरीर बुरी तरह सन जाता है। राब को छुडाने के लिए वह घर म रखी हुई रुई के ढेर पर लेट जाता है। उसके शरीर म रुई लिपट जाती है और वह सो जाता है। रात में चोर आते हैं और रुई लिपटे हुए शरीर को देखकर वे समझते हैं कि यह भेड है। अत उसे ही उठाकर वे ले जाते हैं। रास्ते म नदी पार करते समय पानी म भीगने के कारण उसकी नींद खुल जाती है और वह चिल्लाने लगता है। चोरों को अपनी भूल का ज्ञान होता है और वे उसे पानी में छोडकर भाग खडे होते हैं। पानी से भीग कर रुई उसके शरीर से छुट जाती है। इतने म उसका ससुर उसे खोजता हुआ आता

है और उसे अपने घर ले आता है।' कोली की कुछ कथाओं में इस प्रकार भी रखा गया है कि उसकी मूर्खता के कारण ही कभी उसका भाग्य भी खुल जाता है।

कुछ कथाओं में कुछ जातियों की चालाकी का चित्रण किया गया है। नाई चालाक, धूर्त और दुष्टता का शिरोमणि है। ठाकुर भी कम चालाक नहीं होता। परन्तु नाई से उसे भी हार माननी पड़ती है। एक कहानी में 'नाई किसी ठाकुर के साथ उसकी ससुराल जाता है। ससुराल वालों से चुपके से कह देता है कि मालिक की तबियत ठीक नहीं है। अतः इनके लिए भोजन मत बनाना। स्वयं स्वादिष्ट भोजन करता है और ठाकुर रात में तारे गिनते हैं। स्वयं अपने खाने के लिए वे बहुत भी तो बस। इसी प्रकार वह अन्य उपायों से ठाकुर को खूब हैरान करता है। एक अन्य कहानी 'मूसर चन्द्र' में ठाकुर ने नाई की सहायता से बनिये की पत्नी को अपनी पत्नी बना लिया और बिना खेती किए अपने बुद्धि कौशल से ५०० मन चावल भूत प्रेतों से प्राप्त किए।

ठगों से सम्बद्ध कथाएँ भी प्रस्तुत वर्ग के अन्तर्गत आती हैं। इन कथाओं में ठगों के कौशलपूर्ण कार्य कलापों का चित्रण किया जाता है। ये ठग दूसरों को ठगते हैं। ठग जाने वाले लोग अनेक प्रकार से इन्हें परास्त करना चाहते हैं और समझते हैं कि इनका उन्होंने सर्वनाश कर दिया है परन्तु वे ठग फिर किसी न किसी उपाय से उन लोगों को बार बार धोखा देते हैं और उनका सर्वनाश कर देते हैं। इन कथाओं में दिखलाया जाता है कि ठगों को चाहे कितना कष्ट क्या न दिया जाए उन पर कोई प्रभाव ही नहीं पड़ता है। उनके चरित्र की ये विशेषताएँ बड़ी ही मनोरंजक होती हैं।

ठगों से सम्बद्ध अनेक कथाएँ मिलती हैं। एक कथा में एक ठग का बैल मर जाता है। अपने बैल की खाल लेकर वह गाँव से बाहर जाता है। रात होने पर जंगल में एक पेड़ पर चढ़ जाता है। चोरी का धन बाँटने के लिए चोर उस पेड़ के नीचे बैठते हैं। ऊपर से ठग बैल की खाल को उनके ऊपर फेंक देता है। ज्योंही उनके ऊपर खाल गिरती है, वे डरकर भाग जाते हैं। ठग नीचे उतरकर धन इकट्ठा करता है और घर जाकर पड़ोसी से तराजू लेकर धन तौलता है और तराजू एक सोने का एक सिक्का चिपकाकर उस पड़ोसी को वापस कर देता है। पड़ोसी में समझ जाते हैं कि यह कहीं से बहुत धन लाया है और इसके विषय में वे उससे पूछते हैं। वह बतलाता है कि खाल बेचकर उसे इतना धन मिला है। पड़ोसी लोग अपने बैलों को मारकर उनकी खाल निकालकर बेचने जाते हैं। पर उन्हें बहुत कम पैसे मिलते हैं। वे समझ जाते हैं कि ठग ने हमें ठग लिया है, अतः वे लोग मिल कर उसके घर में आग लगा देते हैं। ठग जले हुए घर की राख को बोरे में भरकर बाहर चला जाता है। एक आदमी को बोरे में भरे हुए सोने के बोझ से दबा हुआ समझकर उसमें थोड़ी देर के लिए बोरा लदवा देता है और चकमा देकर भाग निकलता

है। लौटकर गाँव वालो से कहता है कि वह राख को बेचकर इतना सारा धन लाया है। वे लोग अपने घर म आग लगा देते हैं और उसकी राख बेचने को चल देते हैं। पर उसे कोई खरीदता ही नहीं। लौटकर वे उस ठग को बोरे म भरकर नदी म डाल आते हैं। मछुआ के जाल मे बोरा आ जाता है और वह उसे निकाल लेता है। ठग मछली वाले से कहता है कि तुमने मुझे क्यों निकाला, मैं तो वरुण देवता के महल म कमचारी हूँ। मछुआ उस महल को देखने के लिए ठग से प्रार्थना करता है। ठग उसे उसी बोरे में बन्द करके पानी मे डाल देता है और उसकी मछलिया को लेकर गाँव वापस आ जाता है। उसके पडौसी भी वरुण देवता के महल को देखना चाहते हैं। सबको बोरो मे भर भरकर वह नदी म डुबो देता है।

(आ) अलौकिक तत्वो से युक्त कथाएँ

इस वग म उन कथाओं को स्थान दिया गया है जिनके या तो पात्र अलौकिक हैं, जसे—परिया, दानव, भूत प्रेत, चुडल या पात्रों को लौकिक होते हुए भी उनके कार्यों म पर्याप्त मात्रा में अलौकिकता भरी हुई होती है—ये पात्र जो कुछ भी काय करते हैं उनम लोकोत्तर चमत्कार रहता है और कभी कभी य जादू द्वारा भी अपने काय की सिद्धि तथा दूसरे के विनाश का कारण बनते हं। कुछ लोक साहित्य ममज्ञो ने कथाओ का वर्गीकरण करते समय अलौकिक कथाओ का पृथक वग तो बनाया ही पर इसके साथ ही साहस एव शौय पूर्ण ऐतिहासिक आदि वग बनाए हैं।[1] वास्तविकता यह है कि लोक कथाओ म वीरो, महात्माओ या अन्य ऐतिहासिक विशिष्ट पुरुषो का इस रूप म चित्रण किया जाता है कि उनकी वीरता, माहात्म्य या महान चरित्र में स्थान स्थान पर अलौकिकता मिलती है। लोकमेधा की विशेषता ही है कि बिना अलौकिक तत्वो का समावेश किए उसकी तुष्टि ही नही हो पाती, अत उपयुक्त जितने भी वग हैं उन सबका अन्तर्भाव अलौकिक तत्वो से युक्त वग मे ही हो जाता है। हाँ, यह बात अवश्य ह कि अध्ययन की सुविधा के लिए प्रस्तुत वग के उपवर्गों के रूप म इन्हें स्वीकृति मिल सकती ह। इसी बात को लक्ष्य म रखकर परियो दानवो भूत प्रेत, चुडलो, वीरो, साधु-सन्तो और इतिहास विश्रुत महान पुरुषो स सम्बद्ध कथाओ को इसी वग म समाहित कर लिया गया है।

एक बात को यहाँ स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा। जितनी भी लोक-कथाएँ मिलती हैं अधिकाश मे अलौकिक तत्वो का न्यूनाधिक समावेश होता है, परन्तु सबको अलौकिक तत्वो से युक्त कथाओ मे नही रखा जाता। इसका कारण यह है कि इस वग म उन्हीं कथाओ को स्थान मिलता है जिनका मूल स्वर अलौकिकता लिए हुए होता है और आदि से अन्त तक इसी की व्याप्कता रहती ह। उदाहरण के लिए व्रत कथाओ को ही लिया जाए। इनम अलौकिक तत्व रहते हैं, परन्तु इनके मूल कथ्य म

१ डा० शकरलाल यादव—हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० ३५२

व्रता का माहात्म्य और उनके निष्ठा से न रखने पर हानियों का निरूपण होता है। एक बात और भी है। अन्य कथाओं में अलौकिक तत्वों में धार्मिक या नैतिक भावना की मरण का प्रयत्न होता है जबकि प्रस्तुत वर्ग में अलौकिकता का लक्ष्य विशुद्ध मनोरंजन और उत्सुकता की सृष्टि करना होता है। इन कथाओं में विचित्र विचित्र पात्रों एवं घटनाओं का सयोजन रहता है, जिससे कि निरन्तर उत्सुकता एवं कौतूहल की वृद्धि होती रहती है और श्रोता कथा के आदि से अन्त तक निरन्तरध्यानस्थ रहता है।

परियों की कथाओं में दिखलाया जाता है कि मनुष्य-लोक में आकर वे मनुष्यों से विवाह करती हैं और कुछ दिन पश्चात् अपने लोक को वापस चली जाती हैं। उनको परम सुन्दरी के रूप में चित्रित किया जाता है। वे मनुष्य की भाँति भाँति से सहायता करती हैं। चार परियों की कहानी में दिखलाया गया है कि एक राजा के चार पुत्र शिकार खेलने के लिये जाते हैं। उनका शिकार भागता है और वे उसका पीछा करते समुद्र में कूद पड़ते हैं। वहाँ रात हो जाती है। वे वहाँ इन्द्र की परियों के यहाँ रहने लगते हैं। चारों परियाँ उन चारों को अलग-अलग पति के रूप में ग्रहण कर लेती हैं। प्रत्येक रूप में तो वे उन्हें प्रेम करती हैं परन्तु उनकी योजना है कि किसी दिन इन राजकुमारों का समाप्त कर दिया जाय। सबसे छोटी परी इस बात से असहमत है। अतः एक दिन दुःखी होकर वह अपने पति को वस्तुस्थिति का ज्ञान करा देती है तथा उसे तीन पुड़ियाँ देती है। जब राजकुमार अपने घर के लिए लौटते हैं तो वे तीन परियाँ चील बनकर उनका पीछा करती हैं। आपत्ति को आया जानकर राजकुमार ज्योंही एक पुड़िया उनकी ओर फेंकता है, आंधी आ जाती है और वे उनका कुछ नहीं बिगाड़ पातीं। इसके बाद वे फिर पीछा करती हैं। क्रमशः आग और पानी बरसाने की पुड़िया छोड़ी जाती हैं जिससे उनकी रक्षा होती है और इसी बीच में उनकी यात्रा समाप्त होती है और वे कुशल पूर्वक अपने घर पहुँच जाते हैं।

दानवों से सम्बद्ध कथाओं में दिखलाया गया है कि भीषण और भयंकर दानवों का भी मनुष्य अपनी बुद्धि द्वारा विनाश करता है। प्रायः दानव-पुत्री मनुष्य से प्रेम करने लगती है और वही दानव के विनाश का उपाय बतलाती है। दानव के प्राण किसी गुप्त स्थान में सुरक्षित होते हैं। मनुष्य उस स्थान पर पहुँचकर जिस पक्षी में दानव के प्राणों की स्थिति होती है उसको मार डालता है, उसके मरते ही दानव की भी मृत्यु हो जाती है और मनुष्य निर्विघ्न होकर उसकी पुत्री से विवाह करके सुखपूर्वक जीवन बिताता है।

इस वर्ग की कुछ कथाओं में मनुष्य दानवों को किसी अन्य युक्ति द्वारा भी भयभीत बना देता है। एक कथा में एक राजा के चार नौकर राजकुमार के मरने पर उसे फूँकने के लिए जाते हैं। रास्ते में रात हो जाती है। क्रमशः पहरा देते हैं। सब लोग सो जाते हैं तो पहला नौकर उस लाश को लेकर ऊपर दिया को गया। वहाँ दानव मिले। नौकर ने कहा कि राजा की आज्ञा से वह दानवों को पकड़ने के लिए

आया है। 'दानवों' ने कहा कि कभी कोई 'दानव' पकड़ा भी है? उस आदमी ने 'दानवों' की तरफ शीशा कर दिया। अपना प्रतिबिम्ब देखकर वे समझे कि इस आदमी ने इतने सारे दानवों को बंदी बना लिया है। सब डर कर भागे। अंधा दानव तेज नहीं दौड़ सका। नौकर ने उसके कान और पूँछ काट लिए और अपने स्थान पर आ गया। दूसरा नौकर पश्चिम को गया। वहाँ पर चार छड़ियाँ 'उसीसे' (सिर की तरफ) और चार 'पैंतान' रखी थी। उसने उनके क्रम को बदल दिया और राजकुमार तत्काल राम राम कहकर उठ खड़ा हो गया। जिस आदमी की ये छड़ियाँ थीं उसने देख लिया और ललकारा। पर नौकर ने फिर से क्रम बदल दिया और छड़ियों तथा शव को लेकर वापस आ गया। तीसरा दक्षिण को गया। वहाँ एक 'डाइन' एक बच्चे को उठा लाई थी। नौकर ने उसे ललकारा—तू कौन है? उसने उत्तर दिया कि मेरा बच्चा पेड़ पर है। मैं उसको दूध पिलाऊँगी। तुम चढ़ने में मुझे सहायता दो। उसकी सहायता से वह पेड़ पर चढ़ गई और ज्योंही बच्चे को खान लगी, उसने उसके हाथ पर काट लिये। चौथा पूर्व दिशा को गया। वहाँ देखा कि जिस राजा का वह नौकर है उसी की राजकुमारी को एक दानव, उठा लाया है और वहाँ बठाकर किसी कार्य विशेष से कहीं चला गया है और थोड़ी देर में वापस आयेगा। नौकर ने राजकुमारी के कपड़े स्वयं पहन लिये और अपने कपड़े राजकुमारी को पहनाकर उसे वहीं छिपा दिया। दानव आया और उसने राजकुमारी वेशधारी नौकर से आगे चलने को कहा। नौकर ने उत्तर दिया कि मैं आगे चलते हैं। दानव चल दिया। जिस कड़ाह में वह राजकुमारी को डालना चाहता था उसी में नौकर ने उसे ढकेल दिया और राजकुमारी का फिर से वेश बदलकर उसे अपने स्थान पर ले आया। राजकुमारी सहित चारों नौकर वापस आए और सबने अपने अपने चमत्कार दिखलाए। राजकुमार जीवित हो गया और खोई हुई राजकुमारी भी वापस मिल गई। राजा ने उन नौकरों को आधा राज-पाट दे दिया।

जादू की कथाओं में भी बड़ी ही विलक्षणता का दर्शन होता है। 'जादू की अगूठी' नामक कथा में अँगूठी का ईंटों में स्पर्श कराते ही सोने का विशाल पुल निर्मित हो जाता है और अँधे और अन्धी की आँखों में अँगूठी रगड़ने से ज्योति वापस आ जाती है। 'लखटकिया' और 'सच्चो यार' नामक कथाओं में भी मनोरंजकपूर्ण अलौकिक कार्यों का आकलन किया गया है।

राजा विक्रमादित्य, राजा भोज, बीरबल आदि इतिहास विश्रुत पात्रों का इन कथाओं में अलौकिक कार्यों से युक्त दिखलाया जाता है। वीरों की वीरता को इस रूप में चित्रित किया गया है कि उन्हें दैवी शक्ति प्राप्त है और वे जैसा भी चाहें वैसा चमत्कार दिखला सकते हैं। साधु सन्तों के महत्व वर्णन में भी इसी चमत्कार की प्रवृत्ति के दर्शन किए जा सकते हैं।

प्रस्तुत विश्लेषण के उपरान्त समग्र रूप से कहा जा सकता है कि इस वर्ग में आने वाली कथाओं के नायक एवं नायिकाएँ अलौकिक बुद्धि एवं कार्य व्यापारों से

अभिमण्डित होते हैं। इनके प्रतिद्वन्द्वी प्रायः मानवेतर प्राणी होते हैं और कार्य साधना में जादू का उपयोग किया जाता है।[1]

कन्नौजी लोक-कथाओं की सामान्य प्रवृत्तियाँ

कन्नौजी लोक-कथाओं के उपर्युक्त परिचयात्मक विश्लेषण द्वारा यह स्पष्ट किया गया है कि इस प्रदेश में प्राप्त होने वाली कथाओं में पर्याप्त विविधता है। इनमें धर्म की अभिव्यक्ति, शिक्षा तथा मनोरंजन के तत्त्व पुष्कल मात्रा में विद्यमान रहते हैं। इन कथाओं में जो सामान्य प्रवृत्तियाँ उभरती हैं उन्हें निम्नांकित प्रकार से दिया जा सकता है—

१ रोचकता।
२ मानव वृत्तियों का सरल एवं स्वाभाविक चित्रण।
३ विविध जातियों के स्वभाव का चित्रण।
४ अधिकांश पात्र एवं स्थान सुपरिचित।
५ मंगलकामना की भावना।
६ जघन्य कृत्यों का दुष्परिणाम।
७ सत्य की विजय।
८ सत्कार्यों का सत्परिणाम।
९ नैतिकता का समादर।
१० भाग्यवाद पर विश्वास।
११ अन्ध विश्वासों की अधिकता।
१२ कथानक में अलौकिकता लाने के प्रति आग्रह।
१३ मानव का मानवेतर अर्थात् परियों और दानव कुनियों से ही नहीं सर्पों और रीछों तक से विवाह।

कन्नौजी लोक-कथाओं की शिल्पगत विशेषताएँ

अन्य साहित्यिक विधाओं की ही भाँति लोक-कथा भी रचना की एक विशिष्ट विधा है। विभिन्न तत्त्वों की अन्विति के परिणाम-स्वरूप इसकी संरचना होती है। अभिप्रायों (मोटिफ्स) का इसमें विशिष्ट स्थान रहता है परन्तु उनका सम्बन्ध शिल्प विधि से न होकर कथ्य विषय से होता है। कथानक रूप (टेल टाइप) का सीधा सम्बन्ध कथा के शिल्प से होता है क्योंकि कथानक रूप वस्तुतः एक परम्परागत कथा ही है और इसका स्वतन्त्र अस्तित्व होता है। ऐसा भी हो सकता है कि इसे किसी दूसरी कथा में सम्मिलित कर लिया जाता है परन्तु वहाँ

1 प्रफुल्ल गोस्वामी—बैलड्स एण्ड टेल्स ऑव आसाम, पृ० ८७

पर भी अपनी विशिष्टता के कारण अपनी निजी सत्ता को यह नही खोता। इस कथानक रूप म एक ही अभिप्राय (मोटिफ) हो सकता है, अधिकाश हास्य-कथाए एक ही अभिप्राय वाली होती हैं। कुछ कथाओ मे कई कथानक रूप हो सकते हैं।[1] इस प्रकार कथानक रूप अपने में पूणता लिए हुए होता है। इसकी इस पूणता की परीक्षा करने के लिए भौगोलिक परिस्थितिया, आदिम लोक मानस,, पूणता की प्रतीति, कथानक म सभी अभिप्रायो का उपयोग आदि तत्वो पर विचार किया जाता है। यद्यपि लोक-कथाओ के निर्माण अथवा कथन की प्रक्रिया म कल्पना पर किसी प्रकार का नियन्त्रण नही रहता, तथापि अच्छी कही जाने वाली कथा मे निम्नांकित विशेषताओ का होना आवश्यक माना जाता है[2]—

१ काय (ऐक्शन) सर्वाधिक महत्वपूण स्थल से कथा का आरम्भ नहीं होता और न इसका अ त ही आकस्मिक होता है। भूमिका मन्थर गति से आगे बढती है और कथा को चरम सीमा पर पहुचाने के बाद भी आगे बढाकर विश्राम बिन्दु तक पहुँचाया जाता है।

२ केवल उत्सुकता बढ़ाने क लिए ही नहीं वरन् कथा के अ तरायो को पूरा करने के लिए भी अनेक स्थलो पर पुनरावत्ति की जाती है।

३ चरित्र चित्रण म सरलता है। केवल उन्ही चारित्रिक विशेषताओ को स्थान दिया जाता है जिनका कथानक के विकास के साथ सीधा सम्बध होता है।

४ कथानक सरल होता है, उलझा हुआ कभी भी नही। एक समय एक ही कथा कही जाती है, उसम उप-कथानक नही होते। कथानक के साथ उप कथानक या उप कथानको का होना निश्चित रूप से परिनिष्ठित स हित्य के प्रभाव का सूचक है।

५ कथा के सभी तत्वो मे यथासम्भव सरलता रहती है। एक ही प्रकार की अनेक वस्तुओ का, जहा तक सम्भव हो सकता है, एक ही जसा चित्रण होता है तथा विविधता लाने का प्रयास नहीं किया जाता।

उपयु क्त शिल्पगत विशेषताओं के सदभ मे कहा जा सकता है कि प्रथम, द्वितीय और ततीय विशेषताए प्राय सभी कनौजी लोक-कथाओं म इतनी अधिक स्पष्टता से पाई जाती है कि उनके विश्लेषण पर विशेष बल देने की आवश्यकता ही नही है। किसी कथा को भी उठाकर देख लिया जाए उसम पहले पात्रों का परिचय दिया जाता है और अच्छी प्रकार भूमिका बांधकर कथानक का विकास होता है। किसी भी कथा का आकस्मिक या चरमोत्कष पर पहुँचकर ही अन्त

---

१ स्टिथ थाम्पसन—दी फोक टेल, पृ० ४१५

२ वही, पृ० ४५६

नहीं होता—किसी के विवाह होते ही कथा की परिसमाप्ति नहीं होती, आग कहा जाता है कि 'फिर वे लोग सुखपूर्वक जीवन बिताने लगे।' इतना ही नहीं, कथक्कड़ इसके साथ यह भी कहना भूलता नहीं—'जसो उनके लिए हुआ वसा सभी के लिए हो।'

सभी कथाओं में पुनरावृत्ति होती है तथा इसके द्वारा उत्सुकता जगाई जाती है। कथानक अंतरायों को भरने के लिये भी कथक्कड़ पुनरावृत्ति का ही सहारा पकड़ता है। क्रम सम्बद्ध कथाओं में तो एक कड़ी आगे बढ़ने के लिए समस्त पूर्ववर्ती कथानक को दोहरा दिया जाता है।

चरित्र चित्रण सम्बन्धी विशेषता भी इन सभी कथाओं पर पूर्ण रूप से लागू होती है। प्राय सभी कथाएं जिन पात्रों को चरित्र चित्रण का केन्द्र बनाती हैं, उनकी उन्हीं उन्हीं विशेषताओं का उद्घाटन करती हैं जिनके बिना कथानक का विकास हो ही नहीं सकता। उदाहरण के लिए 'लड़की की मूर्खता की कथा'[1] को लिया जाए। लड़की सबसे अधिक शक्तिशाली व्यक्ति से अपना विवाह करना चाहती है। शक्तिशाली मानकर उससे विवाह करने को सोचती है। उसके चरित्र की केवल एक ही विशेषता का उद्घाटन किया गया है। शक्तिशाली व्यक्ति की तलाश। अलौकिक तत्वों से युक्त कुछ ऐसी अवश्य ही कथाएँ हैं। जिनमें चरित्र चित्रण में कुछ विविधता आ गई है। ठगों से सम्बद्ध कथाओं में भी कभी-कभी किसी एक ही कथा में ठग को बहुत चालाक और उसी कथा में उसे महामूर्ख के रूप में चित्रित किया जाता है और इस प्रकार उसके चरित्र को उलझा दिया जाता है।

यों तो अधिकांश कथाओं में कथानक सीधा सादा होता है। उनमें उप कथानक होते ही नहीं हैं, परन्तु कुछ ऐसी कथाएं भी हैं जिनके कथानक जटिलता से युक्त होते हैं। 'सच्चो प्यार'[2] नामक कथा तीन कथानकों का मिश्रण प्रतीत होती है—१ सांप को मारकर रानी प्राप्त करना २ दूती और मनिहार, ३ तोते द्वारा भविष्यवाणी। इसमें लोक कथा के शिल्प की दृष्टि से कथानक की सरलता के अभाव का दोष आ गया है। सम्भवत इस विकार के मूल में परिनिष्ठित साहित्य का प्रभाव रहा हो। कुछ अन्य भी ऐसी कथाएं हैं जिनमें इस प्रकार के शिल्पगत दोष देखे जा सकते हैं।

शिल्पगत पांचवी विशेषता भी कनौजी लोक कथाओं में पाई जाती है, क्योंकि इनमें भाषा, शैली, उद्देश्य—सभी को सरल से सरल रूप में रखने की प्रवृत्ति होती है।

---

१ इसी अध्याय में इस कथा का विश्लेषण किया जा चुका है।

२ ब्रज में यह कहानी 'बाद होय तो एसो होय' के रूप में मिलती है। डा० सत्येन्द्र द्वारा सम्पादित ब्रज की लोक-कहानियों में इसे संकलित किया गया है।

शिल्पगत विशेषताओं के संदर्भ में निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि अधिकांश कथाओं में उपयुक्त पाँचों विशेषताएँ मिलती हैं और ये लोक-कथाएँ कलात्मक सौन्दर्य से पूर्णतया अभिमंडित हैं। आकार में छोटी कथाओं पर ही यह बात पूर्णतः घटित होती है। जो कथाएँ अपेक्षाकृत लम्बी हैं और जिनका कथानक उलझा है—जिसमें कई उप कथानक जुड़ गये हैं। उनके वर्णन में शिथिलता आ गई है और इसीलिए लघु कथाओं की अपेक्षा उनमें मनोरंजकता भी कम हो गई। इन कथाओं में चरित्र चित्रण जटिल हो गया है जिससे लोक कथागत शिल्प भी विकृत हो गया है। वस्तुतः ये कथाएँ शिल्प की दृष्टि से कमजोर पड़ गई हैं।

पंचम अध्याय

कनौजी कहावतें

अवतरणिका

'लोक गीतों', पवारों और 'लोक कथाओं' में विस्तार की भावना रहती है जबकि 'कहावतें' और पहेलियाँ गागर में सागर भरने का प्रयास करती हुई सूत्र शैली का प्रयोग करती हैं। इसी शैली के कारण इन्हें घनीभूत रत्न की संज्ञा दी जाती है। संक्षिप्तता के अतिरिक्त इन विधाओं का अन्य विधाओं से इससे भी बड़ा भेद यह है कि इनमें बुद्धि-तत्व की प्रधानता रहती है, जबकि अन्य विधाओं में प्रायः हृदय-तत्व को ही सब कुछ मानकर चला जाता है।

कुछ विद्वानों ने अपने शोध प्रबन्धों[1] में इन विधाओं को प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत रखा है। प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत उन्हीं साहित्य प्रकारों को रखा जाता है, जिनका अपना स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं होता। प्रकीर्ण (फुटकर) शब्द से सम्भवतः यह ध्वनि निकलती है कि आलोच्य विषय का महत्व अपेक्षाकृत कम है। अपने जादू से जन जन के सिर पर चढ़कर बोलने वाला सूक्ष्म अनुभव, निरीक्षण और ज्ञान की पिटारी को हँसा-हँसा कर गुन-गुनाकर जन जन को आलोकित करने वाला साहित्य फुटकर साहित्य नहीं कहा जा सकता। इसी बात को ध्यान में रखकर कहावतों और पहेलियों को 'प्रकीर्ण-साहित्य' के अन्तर्गत न रखकर इनकी स्वतन्त्र सत्ता को स्वीकार किया गया है—इनका पृथक् अध्यायों में विवेचन किया गया है।

---

१ (अ) भोजपुरी लोक-साहित्य।
(आ) नीमाडी भाषा और उसका साहित्य।
(इ) हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य।

कहावत की व्युत्पत्ति

'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में बहुत अधिक मतभेद है। संक्षेप में उन पर विचार किया जा रहा है—

१ 'कहावत' शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत शब्द 'कथावत' से हुई है। कथाओं की भांति कहावतें भी लोक प्रसिद्धि युक्त होती हैं। वस्तुतः इनका आधार भी कथाओं का ही खंडित मंडित एवं विकसित रूप है, इसी से कहावत को लोकोक्ति की संज्ञा मिलती है।[1]

टर्नर ने अपने 'नेपाली शब्द कोश' में 'कहावत' का अनुमानित मूल रूप 'कथा'वार्ता' बतलाया है। कथा का थ 'ह' और वार्ता 'वत' के रूप में परिवर्तित हो गया है। इस प्रकार कथावार्ता' ने 'कहावत' का रूप धारण कर लिया है। डा० बाबूराम सक्सेना के मत में भी 'कहावत' का सम्बन्ध संस्कृत शब्द 'कथावार्ता से' है मगर हिन्दी शब्द का अर्थ कथावार्ता के अर्थ से बिलकुल भिन्न है और यहां अर्थादेश स्पष्ट है।[2]

'कहावत' का एक अर्थ 'कही हुई बात' भी हो सकता है। राजस्थान में कहावत के अर्थ में प्रचलित 'कहवत' शब्द इस प्रसंग में हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।[3]

कहावत का सीधा अर्थ किया जाए तो उसके दो टुकडे होते हैं 'कह+आवत' अर्थात जिसके कहने की एक सुदीर्घ परम्परा हो।[4]

डा० सिद्धेश्वर वर्मा के मतानुसार हिन्दी शब्द कहावत का अभिप्राय उक्ति है। इसकी व्युत्पत्ति हिन्दी 'कहना' से हुई है जिसके आगे दो प्रत्यय जुड़े हैं—(१) 'आव' जैसा कि सुझाव में देखा जाता है और (२) 'अत' प्रत्यय कहावत की संक्षिप्तता और सारगर्भिता का सूचक है।[5]

विभिन्न विद्वानों के जो मत ऊपर उद्धृत किए गए हैं, उनसे कोई ऐसा निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता जिसके सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कहा जा सकता हो कि कहावत की व्युत्पत्ति का स्वरूप निश्चित रूप से यही है। वस्तुतः बात यह है कि भाषा पहले बनती है और व्याकरण बाद में। अतः व्याकरण के नियमों से प्रत्येक शब्द के सम्बन्ध में अंतिम निर्णय नहीं किया जा सकता। परन्तु इतना तो है ही कि व्युत्पत्ति का आश्रय लेकर निकट सम्भावनाओं तक तो पहुँचा जा सकता है।

---

१ पं० रामदहिन मिश्र—मुहावरे (भूमिका)।
२ डा० बाबूराम सक्सेना—अर्थ विज्ञान, पृ० १२५
३ डा० कन्हैयालाल सहल—राजस्थानी कहावतें पृ० ६
४ 'राजस्थानी कहावतें' में उद्धृत महावीर प्रसाद पोद्दार का मत।
५ राजस्थानी कहावतें—पृष्ठ ४ में उद्धृत डॉ० सिद्धेश्वर का मत।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहावत की व्युत्पत्ति के संदर्भ में दो सम्भावनाएँ उभरती हैं—

१ कहावत शब्द की व्युत्पत्ति यदि किसी संस्कृत शब्द से हुई है तो उसके लिए सर्वाधिक सम्भावना कथावत् शब्द से की जा सकती है, क्योंकि ध्वनि के नियमों के अनुसार 'थ' का 'ह' हो ही जाता है और जहाँ तक अर्थ का सम्बन्ध है कथावत कहावत के अत्यधिक निकट है और इसमें 'कथावार्ता' की भाँति अर्थादेश की संभावना के खोजने की भी आवश्यकता नहीं पड़ती।

२ 'कहावत' सुदीर्घ परम्परा से कही जाने वाली उक्त का अवबोध कराती है। अतः यह भी संभावना की जा सकती है कि कह-आवृत्ति से इसकी व्युत्पत्ति हुई हो।

३ यदि सादृश्य के आधार पर 'कहावत' शब्द का प्रचलन हुआ हो तो लिखावट आदि के सादृश्य पर कहावट शब्द का बन सकना असंभव नहीं है। राजस्थानी में *कथन के अर्थ में कुहावट, कुवावट' इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं।*[1] कनौजी में भी कहावत के लिए कहनौति कहाउति और कहाउट' शब्द मिलते हैं। लिखावट और सजावट के लिए भी कनौजी में लिखाउटि और 'सजाउटि' शब्द रूप मिलते हैं। इस तथ्य को दृष्टि में रखकर सादृश्य के आधार पर इस शब्द की व्युत्पत्ति की बात कष्ट कल्पना नहीं प्रतीत होती।

कहावत की रचना प्रक्रिया

लोक-साहित्य की अन्य विधाओं की भाँति ही अधिकांश लोकोक्तियाँ (कहावतें) *में भी अनाम रचयिता होते हैं। प्रत्येक लोकोक्ति या सूक्ति का रचयिता अपनी कृति* को लोक के हाथों में समर्पित कर देता है और धीरे धीरे उस रचयिता का मानस लोकमानस में विनिमज्जित हो जाता है और कृतिकार का नाम विस्मृत हो जाता है। कोई भी उक्ति तभी लोकोक्ति या कहावत का नाम धारण करती है जब लोकमानस की छाप उस पर अंकित हो जाती है—लोक-हृदय उस उक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित कर लेता है। अतः किसी उक्ति को लोकोक्ति बनाने में एक व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों का हाथ नहीं रहता, समस्त लोक उस लोकोक्ति को रूप देने में अपना योगदान देता है।[2] समस्त लोक की उक्ति ही *लोकोक्ति है यह अर्थ 'कहावत' में भी निहित रहता है। कहावत है का अर्थ* होता है कहा जाता है (इट इज सेड या दे से) इस अर्थ के अनुसार भी कहावत व्यक्ति की वस्तु न होकर समष्टि से अपना सम्बन्ध स्थापित करती है। लोक द्वारा ग्रहण किए जाने पर तथाकथित सूक्तियाँ भी लोकोक्तियाँ ही बन जाती हैं।

---

१ डा० कन्हैयालाल सहल—राजस्थानी कहावतें, पृ० ६

२ वही पृ० १८

कुछ 'कहावतें' ऐसी भी होती हैं जिनमें रचयिता की छाप भी रहती है जैसे खेती की कहावतों में घाघ भड्डरी का नाम रहता है अथवा उन्हें उनकी रचना के रूप में स्वीकृति मिल जाती है। वस्तुतः इस संदर्भ में जो भी नाम आते हैं वे व्यक्ति न होकर न होकर सम्प्रदाय (स्कूल) सूचक हैं। अतः इन कहावतों को भी प्राज्ञोक्ति या सूक्ति न कहकर लोकोक्ति ही कहना अधिक संगत प्रतीत होता है क्योंकि इन्होंने भी लोक मानस पर पूरा अधिकार जमा लिया है और वे जन जन के कंठ पर विराजमान हैं।

कहावत की परिभाषा एवं स्वरूप

यों तो किसी भी साहित्य विधा को परिभाषा के 'चौखटे' के अन्दर बन्द नहीं किया जा सकता और न उस परिभाषा में पूर्ण वैज्ञानिकता ही हो सकती है परन्तु फिर भी परिभाषा का इतना तो उपयोग है ही कि उससे परिभाषित वस्तु के स्वरूप का स्पष्टीकरण अवश्य हो जाता है। इसी लक्ष्य को दृष्टि में रखकर कहावत को परिभाषित करने का यहाँ प्रयास किया जा रहा है।

आर० सी० ट्रेंच ने संक्षिप्तता, सारगर्भिता और सजीवता को कहावत के तीन अनिवार्य तत्वों के रूप में ग्रहण किया है।[1] कहावत में बुद्धि तत्व संक्षिप्तता में ही सजीव रूप में प्रकट हो सकता है। 'कहावतों' में संक्षिप्तता गुण व्यापक रूप में पाया जाता है कुछ कहावतों को तो संक्षिप्तता के कारण सूत्र की संज्ञा भी दी जा सकती है। कुछ कहावतें अवश्य ऐसी होती हैं, जो अपेक्षाकृत कुछ लम्बी कही जा सकती हैं, यथा—

जहाँ चारि काछी। हुआँ बात आछी।
जहाँ चारि कोरी। हुआँ बात बोरी।
जहाँ चारि भुज्जी। हुआँ बात उज्झी।

कहावत का दूसरा तत्व सारगर्भिता है। कहावतों के अनुशीलन करने पर बलपूर्वक कहा जा सकता है कि इनमें हास्य व्यंग्य, ललकार चेतावनी—सभी के द्वारा तात्विक बातों की शिक्षा दी जाती है। किसी भी कहावत को देखा जाए उसमें सारगर्भिता अवश्य विद्यमान होगी। साधारण से साधारण उक्ति में भी सारपूर्णता को देखा जा सकता है यथा—

'पढ़िओ पूत सोई। हड़िआ खुद्द बुद्द होई।'

तीसरा तत्व सजीवता सभी 'कहावतों' पर लागू नहीं होता। अधिकांश कहावतों में तो पर्याप्त मात्रा में वाग्वदग्ध्य दर्शनीय होता है। और वास्तविकता यह है कि इसी तत्व के कारण ये लोकप्रिय भी होती हैं। इसी गुण के कारण कुछ ऐसी कहावतें जो नित्य प्रति के व्यावहारिक जीवन के लिए अधिक उपयोगी न होने पर भी

१ आर० सी० ट्रेंच—लेसन्स इन प्राॅवर्ब्स, पृ० ७

अधिक लोकप्रियता प्राप्त करती हैं। खेती, ज्योतिष और स्वास्थ्य-सम्बन्धी कहावतें व्यवहार और ज्ञान की दृष्टि से अधिक महत्वपूर्ण होती हैं परन्तु उनमें अपेक्षाकृत सजीवता कम मात्रा में होती है अतः दैनिक जीवन में सामाजिक कहावतों की अपेक्षा उन्हें कम लोकप्रियता प्राप्त होती है। उत्कृष्ट कही जाने वाली कहावतों में सजीवता तत्व अवश्य ही विद्यमान रहता है।

संक्षिप्तता, सारगर्भिता और सजीवता—इन तीन गुणों के होते हुए भी कोई उक्ति कहावत कही जा सके यह आवश्यक नहीं है क्योंकि उस उक्ति को कहावत नाम तभी मिलेगा जब उसे लोक-स्वीकृति भी प्राप्त हो जाए।[1] अतः इन तीन गुणों में लोकग्राह्यता नामक चौथा गुण जोड़ लिया जाए तो उपर्युक्त परिभाषा कहावत के रूप को अधिक स्पष्ट करने में समर्थ हो सकती है।

ऑक्सफोर्ड डिक्शनरी में कहावत की परिभाषा करते हुए कहा गया है कि 'जनता में प्रचलित कोई छोटा-सा सारगर्भित वचन, अनुभव अथवा निरीक्षण द्वारा सबको ज्ञात किसी सत्य को प्रकट करने वाली कोई संक्षिप्त उक्ति कहावत है।' इस परिभाषा को पर्याप्त मात्रा में पूर्ण माना जा सकता है। क्योंकि कहावत के प्रायः सभी पहलुओं को इसमें समेट लिया गया है। इसमें एक तत्व छूट गया है और वह है सप्राणता (चटपटापन)। सभी कहावतों में सप्राणता अनिवार्य रूप से रहती ही है। अतः इस तत्व का भी परिभाषा में उल्लेख होना ही चाहिए।

डा० वासुदेव शरण अग्रवाल ने कहावत (लोकोक्ति) को परिभाषित करते हुए कहा है—'लोकोक्तियां मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुए सूत्र हैं। वे मानवीय ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणों से सदा फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती रहती है।'[2] इस परिभाषा में एक ऐसे तत्व का समावेश कर लिया गया है जिसकी ओर प्रायः अन्य विद्वानों का ध्यान नहीं गया है और वह तत्व है—कहावतों की प्रसंगानुकूल सर्वाधिक उपयुक्तता—बार-बार कहे जाने वाली प्रभावोत्पादकता या चुभन। साहित्य के किसी अंग में भी इतना अधिक प्रसंगानुकूल उपयुक्तता नहीं मिलती जितनी कहावतों में। इसीलिए अन्य गुणों की ओर संकेत करते हुए विद्वान ने इन्हें 'चुभते हुए सूत्र' कह कर इस शब्द में महत्वपूर्ण योगदान करके अपेक्षाकृत परिभाषा को अधिक पूर्ण बना दिया है।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर संक्षेप में कहावत का स्वरूप इस रूप में उभरता है—*संक्षिप्तता, सारगर्भिता और सजीवता से युक्त जन-जन के कंठ पर* विराजित प्रसंगानुकूल चुभती हुई उक्ति लोकोक्ति अथवा कहावत की संज्ञा प्राप्त करती है।

अधिकांश कहावतें अन्योक्तियां होती हैं जिसमें कहावत का अभिप्राय निहित

---

१ एनसाइक्लोपीडिया आव रिलिजन एण्ड एथिक्स, वाल्यूम १०, पृ०४१२

२ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथिवीपुत्र, पृ० १११

हो जाता है, उकित म वर्णित 'विशेष' में जो 'सामान्य' रहता है, उसी 'सामान्य' के अर्थ म उसका चाहें जहा उपयोग किया जा सकता ह ।[1]

कहावतों का क्षेत्र, विस्तार एव महत्त्व

मानव जीवन की कोई ऐसी गतिविधि नही जिसे कहावतो के क्षेत्र से बाहर कहा जा सके । इनमें मानव जीवन के सुख—दुःख हर्ष विषाद, रुचि अरुचि ईर्ष्या लोभ-सभी की सरल रूप म व्याख्या होती ह । जातियो के आचार विचार, रीति रिवाज, मनन चिन्तन आर्थिक धार्मिक, राजनीतिक सांस्कृतिक जीवन—सभी की अभिव्यञ्जना इन कहावतो में होती है । सांसारिक व्यवहार पटुता और सामान्य बुद्धि का जसा निदर्शन कहावतो म मिलता है वसा अन्यत्र दुर्लभ है । इनमें जीवन के सत्य बडी खूबी से प्रकट होते हैं ।[2] और ये अनुभूत ज्ञान की निधियाँ होती हैं ।

कहावतो को ज्ञान की पिटारी कहा जा सकता है । अनन्त काल तक धातुओं को तपा कर सूर्य रश्मियाँ नाना प्रकार के रत्न उपरत्नो का निर्माण करती हैं जिनका आलोक सदा छिटकता रहता है उसी प्रकार लोकोक्तियाँ मानवी ज्ञान के घनीभूत रत्न हैं जिन्हें बुद्धि और अनुभव की किरणो से फूटने वाली ज्योति प्राप्त होती है । लोकोक्तियाँ प्रकृति के स्फुल्लिगो रेडियो एक्टिव तत्वो की भांति अपनी प्रखर किरणें चारो ओर फलाती रहती हैं । उनसे मनुष्य को व्यावहारिक जीवन की गुत्थियो या उलझनो को सुलझाने म बहुत बडी सहायता मिलती है । लोकोक्ति का आश्रय पाकर मनुष्य की तर्क बुद्धि शताब्दियो से संचित ज्ञान से आश्वस्त सी बन जाती है और उसे अधेरे म उजाला दिखाई पडने लगता है वह अपना कर्तव्य निश्चित करने म तुरन्त समर्थ बन जाती है ।[3]

कहावतें ग्रामीण जनता के लिए न्याय शास्त्र का काय करती हैं । विषम से विषम परिस्थिति म मनुष्य को क्या करना चाहिए, इसके लिए वे निर्णय देती हैं । वे अपने आप म दलील होती हैं । ऐसी दलील जिसके आगे किसी की कुछ चल ही नही सभी को हार माननी ही पडती है । कहावतो न्यायालय म निर्णय हो जाने के बाद उसकी कहीं कोई अपील नहीं हो सकती । कहावत ने जो निर्णय दे दिया वही अन्तिम है । किसी तथ्य की प्रामाणिकता का कहावत से बडा कोई प्रमाण नही समझा जाता ।[4]

साहित्य की दृष्टि से भी कहावतें महत्वपूर्ण हैं । उन्हें भाषा का शृंगार कहा जा सकता है और इसीलिए परिनिष्ठित साहित्य म 'लोकोक्ति' को अलंकार के रूप म प्रतिष्ठा हुई है । कहावतो द्वारा भाषा म सजीवता, स्फूर्ति और चोखापन आता

---

१ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृ० ५३२
२ कृष्णानन्द गुप्त—लोकवार्ता वर्ष स० ३ पृ० १
३ डा० वासुदेवशरण अग्रवाल—पृथिवी पुत्र पृ० १११
४ डा० कन्हैयालाल सहल—राजस्थानी कहावतें, पृ० २

है। भाषा विज्ञान वेत्ता के अध्ययन के लिए भी कहावतें बहुत सामग्री का काम करती हैं। समाजशास्त्र और संस्कृति के अध्येता के लिए भी ये कहावतें अनेक समस्याओं का रहस्योद्घाटन करती हैं।

कन्नौजी कहावतों का वर्गीकरण

कहावतों के वर्गीकरण की अनेक पद्धतियाँ हो सकती हैं। यहाँ दो प्रमुख पद्धतियों पर विचार किया जा रहा है। कहावतों के भीतर कौन-सा दृष्टिकोण या उद्देश्य निहित है, इस पर विचार किया जाए तो सामान्यतया चार दृष्टिकोण मिलते हैं[1]—

१ पहला दृष्टिकोण है अर्थ पोषण का। जब किसी व्यक्ति को अपनी बात की पुष्टि करनी होती है तो वह कुछ विशिष्ट कहावतों का आश्रय लेता है।

२ दूसरा दृष्टिकोण शिक्षा का हो सकता है। इस वर्ग से सम्बद्ध कहावतों में कोई न कोई शिक्षा रहती है। यह शिक्षा नीति विषयक हो सकती है या ज्ञान विषयक।

३ तीसरा दृष्टिकोण हो सकता है आलोचना का। इस वर्ग की कहावतों में गम्भीर और कटु आलोचना रहती है।

४ चौथा दृष्टिकोण हो सकता है सूचना देने का। इस वर्ग में ऋतु, खेती, व्यवसाय और व्यवहार आदि के लिए उपयोगी परामर्शात्मक ज्ञान सामग्री का समावेश रहता है।

दृष्टिकोणों के आधार पर १ पुष्टि-सम्बन्धी, २ शिक्षा-सम्बन्धी, ३ आलोचना-सम्बन्धी और ४ सूचना-सम्बन्धी—चार वर्गों में कहावतों को बाँटा जा सकता है। सामान्यतया तो यह वर्गीकरण बहुत सन्तोषजनक प्रतीत होता है, परन्तु सूक्ष्मता से विचार करने पर ज्ञात होता है कि इसमें एक वर्ग की कहावतें दूसरे वर्ग में भी अपना स्थान पा सकती हैं। बात की पुष्टि में जो कहावत आएगी वह या तो नीति से सम्बद्ध होगी अथवा ज्ञान विषयक होगी तथा उसमें पोषण की नीति भी मिल सकती क्योंकि पुष्टि तो किसी सिद्धान्त से ही हो सकती है। आलोचना-सम्बन्धी कहावतों का दृष्टिकोण शुद्ध आलोचना का नहीं होता। यह आलोचना ध्वंसात्मक न होकर रचनात्मक होती है और इसमें व्यंजना के द्वारा किसी प्रकार की शिक्षा ही दी जाती है। इन दृष्टिकोणों पर विचार करके हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वर्गीकरण करने के लिए इनका विशेष उपयोग नहीं है, हाँ इतना अवश्य है कि कहावतों के स्वरूप और विशेषताओं को जानने के लिए ये दृष्टिकोण बड़े ही उपयोगी हैं।

विषय विन्दु के आधार पर कहावतों के वर्ग स्थिर करने का सिद्धान्त सरल और वैज्ञानिक जान पड़ता है और इसमें सबसे बड़ा गुण यह है कि एक वर्ग की कहावतें

---

१ डॉ० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान पृ० ४१० ५०

दूसरे को अनिच्छादित (ओवरलप) नहीं करती। इस पद्धति में यह दोष अवश्य है कि वर्ण्य विषयों की इतनी अधिक विविधता होती है कि वर्गों की बहुत लम्बी सूची तैयार हो जाती है पर तु इससे अधिक उपयोगी पद्धति के अभाव में प्राय विद्वानों ने इसी का आश्रय लिया है।

वर्ण्य विषय के आधार पर कनौजी कहावतों के अनेक वर्ग बनाए जा सकते हैं। प्रस्तुत अध्ययन में कुछ प्रमुख वर्गों का ही अध्ययन किया जा रहा है। वे वर्ग इस प्रकार हैं—

१ विविध जातियों पर हास्य व्यग्य की बौछार करने वाली
२ देश व स्थान-सम्बन्धी
३ ऐतिहासिक वृत्त-सम्बन्धी
४ धर्म भावना सम्बन्धी
५ नीति सम्बन्धी
६ कृषि सम्बन्धी

१ विविध जातियों पर हास्य व्यग्य की बौछार करने वाली कहावतें

कनौजी कहावतों में ब्राह्मण ठाकुर बनियाँ कायस्थ, अहीर नाई कोरी (हिन्दू जुलाहा) भुज्जो (भड़भूजा) कुम्हार तेली सुनार लुहार मुसलमान आदि जातियों पर हास्य व्यग्य किया गया है।

लोक साहित्य की अन्य विधाओं में अनेक जातियों के अनेक सदगुणों की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई, परन्तु कहावतों में ऐसी कोई भी जाति नहीं जिसके किसी एक गुण तक उल्लेख हुआ हो। इन कहावतों में ऐसी कोई भी जाति नहीं है जिसे लोकोक्तिकार ने 'बख्शा' हो सभी के अवगुणों का ही चित्रित किया है। इससे स्पष्ट रूप में लक्षित होता है कि लोकोक्तिकार किसी पूर्वग्रह अथवा द्वेष के कारण नहीं, वरन् हास्य-व्यग्य और मनोरंजन की वृत्ति से प्रेरित होकर प्राय सभी पर हास्य व्यग्य की बौछार करता है। कुछ कहावतें ऐसी भी होती हैं जिनमें जाति विशेष की तुलना किसी पशु पक्षी के स्वभाव से की जाती है और कुछ में कई जातियों की तुलना एक साथ ही एक ही कहावत में कर दी जाती है। इस वर्ग की कुछेक कहावतों का यहाँ दिया जा रहा है—

ब्राह्मण-सम्बन्धी

'बाम्हन कुत्ता हाथी, ई ना चाहैं साथी' बाम्हन कुत्ता नाऊ अपनी जाति देखि गुर्राऊ' 'अहीर को पेट गहिर बाम्हन को पेट महार, आए कनाग्त फूले कास बाम्हन ऊलें नौ नौ बाँस' 'करिआ बाम्हन और चमार' ता के संग न उतरे पार' 'आगम बुद्धी बनियाँ पच्छिम बुद्धी जाट, तुरत बुद्धी तुरकड़ी

बाम्हन मपट पाट', 'मरी बछिया बाम्हन का', 'चौड़ छत्र हीन गए हुआं दुबई रहि गए,'पीर बवर्ची, भिस्ती खर ला व वजीर अहमा नर।

टाकुर-सम्बन्धी—

'हसुआ टाकुर ससुआ चोर, इन्हें ससुरवन गहिरे बार नाऊ-नाऊ बार कितन बड़े, टाकुर अबहीं सामन आवत टाकुर और पहाड़ की टाकर सो महिए, टाकुर फुसिलाए, बाम्हन पुजाए मूड़ मुंड़ियाए।

वैश्य (बनियां) सम्बन्धी—

अम्बा नीबू बानियाँ गाव प रस देय, कायथ कउआ करहटा मरे तेऊ लेय' बाम्हन बूढ़ी बनिया पच्छिम बूढ़ी जाट बनियाँ जब उठाओ चाहे तो दुकान मार 'बनियाँ जब उठाओ चाहै तो मिरचन की धनी हुवाव 'ठलुआ बइठे बनिया का कर हिआ की धान हुआं धर ठलुआ बनिया बांगनोल बनियां स सयाना, सो दिवाना,' साहु का दाव हाट म चोर को घाट म डीठी धोनी बानियाँ उनकी मूछ मुतार, बड़े पैर कुम्हार क तीनों की पहिचान कुछ हांथ की सफाई कुछ डंडी का फर, अउरन का तीन पाव बनिएँ को सेर, बनिया देय उधार', 'बनियाँ मीत न बिसुआ सती' ओका बनिया यार उहका ना बइरी दरकार, बनिया यार दबे का, 'भूत बनियाँ मह खाइ अब खाऊँ ता राम पुआइ जानि मरा बनिया पहिचानि मार धार', 'जा घर लागो बानिया सो घर गआ जानियो।

कायस्थ-सम्बन्धी—

कायथ का बच्चा कबहु न सच्चा, 'जो सच्चा तो गदहा को बच्चा', 'कायथ बच्चा पढ़ो भलो या मरा भला कायथ कउआ एक', कायथ कउआ करहटा मुर्गी हुं त लय, तीन जाति ना पाल कायथ कागा कूकरा।

अहीर-सम्बन्धी—

'अहीर की बुद्धि भइसा मे सींग म 'जा अहीर विगुल पढ़ तऊ तीन गुन हीन, बुलिबो उठिबो बइठिबो लआ विधाता छीन' 'अहिर गड़रिया एक जात हुगे दुपहरी सौंवें राति', 'अहिरा मित्र न कीजिए जा बात मतभाव घन्न रूस कराय दे काए मे पाछें घाव। 'सब जात गोपाल की प दुइ जाति बरीर आगर बानो बानियाँ बगो चोर अहीर, अहि अहीर गति एक-सी अहि त बडो अहीर, बन्हि बाबा म बंधि सक बधि ना सक अहीर'।

नाई-सम्बन्धी—

पनिन म कउआ औ मनइन म नउआ, नाउन की बरात म सब टाकुर

ठाकुर' 'नाऊ छत्तीसा', 'बाम्हन कुत्ता नाऊ अपनी जाति देखि गुराऊ' 'नई नउनिया बाँस की नहन्नू', 'जहाँ चारि नाऊ तहा बात बनाऊ'।

कोरी (हिन्दू जुलाहा) सम्बन्धी—

'सूत न कपास कोरी की लठमलठा', 'जहा चारि कोरी तहाँ बात बोरी,।

भुज्जी (भड़भूजा)-सम्बन्धी—

'जहाँ चारि भुज्जी तहाँ बात उज्झी', 'एक तो भुज्जिन दूसरे लहसुन खाए',।

कुम्हार सम्बन्धी—

जब कुम्हरिया प चलै ना तो गदहा के कान उमेठ, 'ढीली धोती बानियाँ उल्टी मूछ सुनार बेंडे पैर कुम्हार के तीनो की पहिचान, कहे ते कम्हार गदहा पे नाईं चढ़त।

तेली-सम्बन्धी—

तेली खसम करि के पानी म हनाय', तेली को तेल जर मसालची की छाती फट तनी रे तली तेरे सिर पर कोल्हू 'तली त का घोवी घाट, उइप मुगरा उहि प लाठ।

सुनार सम्बन्धी—

उलटी मूछ सुनार की ', बावन बुद्धी बानिया तिरपन बुद्धी तेली, चौवन सुनार की दव रुपया म घेली,' करिआ बाम्हन गोर चमार उलटी मूछ सुनार इन तीनों को का इतबार' 'सौ सुनार की एक लुहार की।

लुहार सम्बन्धी—

'लोहो जान लुहार जानें धौंकन वाले की बलाय जानै, सौ सुनार की एक लुहार की।

धोबी सम्बन्धी—

नओ धोबी पुरानो नाऊ 'नई धोबिन उपलन की तकिया।

मुसलमान सम्बन्धी—

जोह चिकनी मियाँ मजूर, एक तो मियाँ दुसरे खाईं भाग मूड भओ नीचे ऊपर भई टाग, तुरत बुद्धी तुरकडी बाम्हन सपट पाट' तुरक भए तब बेहना।

२ देश व स्थान सम्बन्धी कहावतें

इस वग म आने वाली कहावतो म भिन्न भिन्न देशो व स्थानों की विशेष-

यही मत है कि संसार में कर्मयोगी बनकर ईश्वर का स्मरण करना ही जीवन का चरम लक्ष्य है। एक कहावत में भक्त को जाति पाति की उपेक्षा करके भगवान के अपनाने की बात कही है—'जाति पाति पूछै ना कोय, हरि को भजै सो हरि का होय'। ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता एवं भक्त परायणता की भी एक कहावत में अभिव्यक्ति हुई है—जी को राखं साइयां मार सकै ना कोय। एक अन्य कहावत में मूर्ति के प्रति आस्था अनास्था विषयक चर्चा हुई है। भावना से मूर्ति देवत्व को प्राप्त करती है जिसकी उसके प्रति निष्ठा नहीं है उसके लिए तो वह पत्थर ही है—'मानो तो दिउता नाइं तो पत्थर हुई।

५ नीति सम्बन्धी कहावतें

मनुष्य का अपने प्रति, अपने परिवार के प्रति, अपने मित्र व सम्बन्धियों तथा समस्त समाज के प्रति क्या कर्त्तव्य है? जीवन की सम विषम सभी परिस्थितियों में उसे किस प्रकार आ दाल्लास, साहस एवं धैर्य के साथ आगे बढ़ना चाहिए? इन्हीं सारी बातों का निदर्शन इस वर्ग में आने वाली कहावतों में होता है। इनमें औचित्य और अनौचित्य पर सदैव दृष्टि रखी जाती है अतः इन्हें नीति सम्बन्धी कहावतों की संज्ञा दी जा सकती है। सामाजिक जीवन में सामाजिकता की सुरक्षा करते हुए मनुष्य आगे बढ़े, इस उद्देश्य से युक्त होने के कारण इन्हें सामाजिक कहावतें भी कहा जा सकता है।

इस वर्ग में आने वाली कहावतों में अन्य कहावतों की अपेक्षा कहीं अधिक विविधता है। कोई भी ऐसा सामाजिक पहलू नहीं है जो इस वर्ग में आने वाली कहावतों की पकड़ से छूट गया हो। विविधता के साथ ही संख्या की दृष्टि से भी ये विपुल मात्रा में उपलब्ध होती हैं। यों तो सभी प्रकार की कहावतें चाहे वे ऐतिहासिकता लिए हों चाहे कृषि वर्षा या ज्योतिष से सम्बन्ध रखने वाली हों, लोकप्रिय होती हैं परन्तु नीति सम्बन्धी या सामाजिक कही जाने वाली कहावतें अपेक्षाकृत अधिक लोकप्रियता से अभिमंडित होती हैं लोकतत्वों और लोकरुचि की इन्हीं में अधिक सफल एवं प्रभावोत्पादक अभिव्यक्ति होती है और इसीलिए ये कहावतें लोक-नीति शास्त्र का कार्य करती हैं। इस वर्ग में आने वाली कहावतों में हास परिहास आलोचना व्यंग्य चमत्कार—सभी कुछ है परन्तु सभी का अन्ततोगत्वा लक्ष्य है लोक शिक्षण। सामान्य जनता की शिक्षा के लिए इनसे अधिक उपयुक्त साधन और हो ही क्या सकते हैं? उदाहरण के लिए कुछ कहावतें दी जा रही हैं—

(अ) खेती पाती बीनती औ घोड़े को तंग।
अपने हाथ सम्हारी लाग लोग होय संग।

(आ) उपरा काढ़ि बिउहरो कर छप्पर डार तारो।
सारे के संग बहिनि पठाव तीनों को मुँह कारो॥

(इ) पूरी पर जो पूरी खाए सब कोई पूरी खाय।
चार दिनन के घुन मुन में निकरि दिवाला जाय॥

(ई) मीन न मीठी होय सिचौ घी गुड़ ते।

(उ) कांटो बुरो करील को औ बदरी को घाम।
सउति बुरी है चून की औ साझे को काम।

६ कृषि-सम्बन्धी कहावतें—

कन्नौजी प्रदेश में कृषि से सम्बन्ध रखने वाली अनेक ऐसी कहावतें हैं जो घाघ भड्डरी के नाम से प्रचलित हैं। साहित्य की प्रत्येक विधा की रचना में जब कालान्तर में रचयिता का नाम तिरोहित हो जाता है सामान्यतया लोक में तभी उसे लोक-साहित्य की संज्ञा मिलती है परन्तु कभी-कभी कुछ नामों के रहने पर भी कृति को लोक-साहित्य के अन्तर्गत इसलिए समाहित कर लिया जाता है, क्योंकि लोक मानस उसके साथ तादात्म्य अनुभव करने लगता है—विशिष्ट मानस लोक मानस में परिवर्तित हो जाता है और कृतिकार का नाम मात्र-सम्प्रदाय (स्कूल) का वाचक रह जाता है। अतः घाघ भड्डरी की भी वे कहावतें जो जन जन में प्रचलित हैं लोकोक्तियों के अन्तर्गत आ जाती हैं। जनश्रुति के अनुसार घाघ का निवास-स्थान कन्नौज के पास का एक गाँव था। घाघ के नाम पर जो कहावतें आज कन्नौजी के अतिरिक्त अन्य बोलियों में प्रचलित हैं यद्यपि इन कहावतों ने उन बोलियों का परिधान पहन लिया है पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर लक्षित होता है कि इनमें कन्नौजी बोली का कुछ अंश अब भी विद्यमान है। पं० रामनरेश त्रिपाठी द्वारा संगृहीत एवं सम्पादित घाघ की कहावतों में विभक्तियाँ और क्रियारूप कन्नौजी से अपेक्षाकृत अधिक साम्य रखते हैं। यदि जनश्रुति का आधार किसी तथ्य पर निर्धारित सिद्ध किया जा सकता, इन कहावतों को कन्नौजी लोक साहित्य की अपनी निजी सम्पत्ति कहा जा सकता है। घाघ भड्डरी के अतिरिक्त इस प्रदेश में और भी कहावतें पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध होती हैं।

इस वर्ग के अन्दर वे सभी कहावतें रखी जाती हैं जिनमें हल बैल जोताई बोआई सिंचाई निराई मांड़ कटाई मड़ाई ओसाई फसलों के रोग उनसे बचने के उपाय तथा खेती से सम्बन्ध रखने वाले और भी जितने विषय हैं इन सब का चित्रण होता है। खेती के लिए ये कहावतें कृषि शास्त्र का कार्य करती हैं। अधिकांश कहावतों में अन्य वर्गों की कहावतों की भाँति चमत्कार को विशेष स्थान न मिलकर शुद्ध तथ्य कथन का प्राधान्य रहता है। कुछ कहावतों में चमत्कार की प्रवृत्ति भी परिलक्षित होती है। इन कहावतों के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए कुछ उदाहरण नीचे दिए जा रहे हैं—

मती की मर्ि मा— हब कर, हर वर

(सब के हाथ हल के नीचे हैं अर्थात किसान सबका अन्नदाता है।)

अच्छे बल की पहचान—छोटो मुँह औ अइठे कान।
यहै बल की होय पहिचान' ॥

जोताई—उतिम खेती जो हर गहै। मद्धिम खेती जो सग रहै।
जो पूछ हरवाहो कहा बीज बूडि गम्रो तिनको तहाँ॥

खाद की उपयोगिता— खाद पर तो खेत नाहीं त कूडा रेत'।

सिंचाई—धान पान भ्रौ खीरा ई तीनों पानी के कीरा।

प्राचीन काल मे खेती पूणत वर्षा पर ही निभर थी, किमी सीमा तक आज भी वैसी ही स्थिति है। वषा ही खेती का प्राण है। अत किसाना ने वर्षा विनान को जानन की ओर बहुत ध्यान दिया है और अनुभव पर अनुभव करके उन्होंने इस सम्बध म अदभुत जानकारी प्राप्त की है। वर्षा विनान स सम्ब धित भी बहुत-सी कहावतें मिलती हैं। वर्षा का खेती स अपरिहाय सम्बध है, अत इन कहावता का पथक वग म न रखकर खेती की कहावतो मे ही इनका अन्तर्भाव कर दिया गया है।

इन कहावतो म वायु की गति, बिजली बादल और गजन के लक्षणा क अनुसार वष्टि अतिवृष्टि या अनावष्टि की भविष्यवाणी की जाती है कुछ उदारहण इस प्रकार हैं—

वर्षा के आगमन के लक्षण—भ्रम्वाझोर 'बहे पुरवाई।
तो जानो बरसा रितु आई॥

अनावष्टि के लक्षण— साउन सुक्ला सप्तमी चदा छिटक परै।
की जल देखौ कूप में की कामिनसीस धर॥

ओला के गिरने के लक्षण—महाँ में बादर लाल घिर।
साचो जानों पाथर गिर॥

विशिष्ट वायु के चलन स अच्छी उपज—
पौन चल उत्तरा। नाज खाँय ना कुत्तरा।

षष्ठ अध्याय

कनौजी पहेलियाँ

पहेली की उत्पत्ति एवं परम्परा

संस्कृत शब्द 'प्रहेलिका' ध्वनि-परिवर्तन की लम्बी मंजिल पार करके हिन्दी में पहेली बन गया है। इसका अर्थ 'विषम अवस्था' या 'उलझन' होता है। हिन्दी की पूर्वी बोलियों में इसके लिए 'बुझौवल' और कनौजी में 'बुझउनिआ' शब्द व्यवहृत होता है।

पहेली की परम्परा बहुत पुरानी है। पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार 'पहेलियाँ तब से हैं जब से मनुष्यों का समाज बना, जब विचारों का आदान-प्रदान जारी हुआ, व्यावहारिक तजुरबे हुए और प्रकृति एवं मनुष्यकृत चीजों को देखकर लोगों में कौतूहल उत्पन्न हुआ।'[1] फ्रेजर के अनुसार पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी।[2] बातचीत के प्रसंग में भी साधारणतया यह देखा है कि जब हम यह नहीं चाहते कि उपस्थित लोगों में से सभी हमारी बात समझें तो जिन लोगों से हमें जो कहना होता है उसे ऐसी पद्धति के आश्रय से कहते हैं कि अन्य लोगों के लिए वह दुर्बोध हो जाय। गोपनीयता की इसी प्रवृत्ति से पहेली का जन्म होता है।[3]

पहेलियों का प्रयोग अनुष्ठानों के अंग में भी होता रहा है। भारतीय दृष्टि से देखें तो वेदों में ये पहेलियाँ 'ब्रह्मोद्य' नाम से विद्यमान हैं और इनका उपयोग के रूप में हुआ है। अश्वमेध-यज्ञ में अश्व का बलिदान करने से पूर्व होता और ब्राह्मण में पहेली बुझौवल अनिवार्य रूप में होती थी।[4] पहेलियों का इस प्रकार

---

१ पं० रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य (तीसरा भाग), पृ० २८१

२ डा० जे० जी० फ्रेजर—दी गोल्डन बाउ, नवाँ भाग, पृ० १२१

३ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक साहित्य की भूमिका, पृ० १५६

४ डा० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ४६२

का आनुष्ठानिक प्रयोग अब लुप्त सा हो गया है, परन्तु कुछ आदिम जातियों में यह अब भी विद्यमान है। भारत के मूल निवासी मध्यप्रान्त के 'गोंड', 'प्रधान' और 'बिहोर' जातियों के वैवाहिक अनुष्ठानों में पहेली बुझाना भी एक आवश्यक बात मानी गई है।[1]

पहेली के स्वरूप का विश्लेषण

प्रायः बुद्धि की परीक्षा तथा बुद्धि को तीव्र बनाने के लिए ही आजकल पहेली का उपयोग होता है। ग्रामीण जनता में तो इन पहेलियों का बड़ा ही व्यापक प्रचार है परन्तु किसी सीमा तक नागरिक लोग भी इनका उपयोग करते ही हैं। इन पहेलियों में बुद्धि विलास तो होता ही है परन्तु मनोरंजकता भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मनोरंजन को लक्ष्य में रख कर ही ग्रामीण और नागरिक जनता इन पहेलियों के द्वारा बुद्धि विलास करती है और अपनी बुद्धि को तीव्रतर बनाने का प्रयास करती है। पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार 'पहेलियाँ बुद्धि पर शान चढ़ाने का यन्त्र हैं। ये स्मरण शक्ति और वस्तु ज्ञान बढ़ाने की कलें हैं। पहेलियों से गाँव वालों का ज्ञान वृद्ध न होता है उनको विद्यालयों में जाने की फुरसत ही नहीं इससे पहेलियाँ उनकी विद्या की कमी को पूरा कर देती हैं।"[2]

पहेली की उपयुक्त परिभाषा में ज्ञान-तत्व पर अधिक बल दिया गया है और उन्हें विद्यालयों का स्थानापन्न बतला दिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहेलियाँ ज्ञानवर्द्धक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं, परन्तु विद्यालयों की शिक्षा से उसका साम्य बढ़ाने से सामान्य पाठक उनमें नीरसता, अरुचि, पूर्णता की सम्भावना कर सकता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक के शिक्षालयों की विद्या को कठोर तप और त्याग का अंग मान कर चला जाता है। कमसे कम उस शिक्षा को उतना रुचिकर तो कोई नहीं मानता जितना कि पहेलियों को माना जाता है। अतः पहेलियों के स्वरूप के विश्लेषण करते समय उनकी मनोरंजकता चमत्कारिता और सर्वग्राह्यता को विस्मृत नहीं किया जा सकता। पहेली रूपी ज्ञान की भारी गठरी को अपने सिर पर लाद कर भी जन जन के आनन्दित होने के मूल में मनोरंजकता और चमत्कार के तत्व ही विद्यमान हैं। इन्हीं तत्वों के कारण ये पहेलियाँ आबाल-वृद्धवनिता के लिए कंठहार बनी हुई हैं और इन्हीं के कारण इन्हें विज्ञान की कोटि में न रख कर ज्ञान के साहित्य (लिटरेचर आफ विजडम) की कोटि में रखा जाता है और अन्तिम विश्लेषण में पहेली का मूल्य काव्य का मूल्य बन जाता है।[3]

---

१ वरियर एलविन तथा डब्ल्यू० जी० आर्चर लिखित मैन इन इंडिया में लम्ब भाग २३, सं० ४, वर्ष १९४३ पृ० सं० ३१६

२ पं० रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य, तीसरा भाग पृ० २८५

३ डब्ल्यू० जी० आर्चर— मैन इन इंडिया' का दिसम्बर १९४३ का अंक, पृ० २६६

षष्ठ अध्याय

कनौजी पहेलियाँ

पहेली की उत्पत्ति एवं परम्परा

संस्कृत शब्द 'प्रहेलिका' ध्वनि-परिवर्तन की लम्बी मंजिल पार करके हिन्दी में पहेली बन गया है। इसका अर्थ 'विषम अवस्था' या 'उलझन' होता है। हिन्दी की पूर्वी बोलियों में इसके लिए 'बुझौवल' और कनौजी में 'बतउनिआ' शब्द व्यवहृत होता है।

पहेली की परम्परा बहुत पुरानी है। पं० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार पहेलियाँ तब से हैं जब से मनुष्यों का समाज बना, जब विचारों का आदान-प्रदान जारी हुआ, व्यावहारिक वस्तुएँ बनीं और प्रकृति एवं मनुष्यकृत चीजों को देख कर लोगों में कौतूहल उत्पन्न हुआ।[1] फ्रेजर के अनुसार पहेलियों की रचना उस समय हुई होगी जब कुछ कारणों से वक्ता को स्पष्ट शब्दों में किसी बात को कहने में किसी प्रकार की अड़चन पड़ती होगी।[2] बातचीत के प्रसंग में भी साधारणतया यह देखा है कि जब हम यह नहीं चाहते कि उपस्थित लोगों में से सभी हमारी बात समझें, तो जिन लोगों से हमें जो कहना होता है उसे ऐसी पद्धति के आश्रय से कहते हैं कि अन्य लोगों के लिए वह दुर्बोध हो जाय। सांकेतिकता की इसी प्रवृत्ति से पहेली का जन्म होता है।[3]

पहेलियों का प्रयोग अनुष्ठानों के अंग में भी होता रहा है। भारतीय दृष्टि से देखें तो वेदों में ये पहेलियाँ ब्रह्मोद्य नाम से विद्यमान हैं और इनका उपयोग यज्ञ के रूप में हुआ है। अश्वमेध-यज्ञ में अश्व का बलिदान करने से पूर्व 'होता' और ब्राह्मण में पहेली बुझौवल अनिवार्य रूप से होती थी।[4] पहेलियों का इस प्रकार

१ पं० रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य (तीसरा भाग), पृ० २८३

२ डा० जे० जी० फ्रेजर—'दी गोल्डन बाउ' नवाँ भाग पृ० १२१

३ डा० कृष्णदेव उपाध्याय—लोक साहित्य की भूमिका, पृ० १५६

४ डा० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान, पृ० ४६२

का आनुष्ठानिक प्रयोग अब लुप्त सा हो गया है, परन्तु कुछ आदिम जातियों में यह अब भी विद्यमान है। भारत के मूल निवासी भाण्डना के 'गाड' प्रधान' और 'बिरहोर' जातियों के वैवाहिक अनुष्ठानों में पहेली बुझाना भी एक आवश्यक बात मानी गई है।"[1]

पहेली के स्वरूप का विश्लेषण

प्रायः बुद्धि की परीक्षा तथा बुद्धि को तीव्र बनाने के लिए ही आजकल पहेली का उपयोग होता है। ग्रामीण जनता में तो इन पहेलियों का बड़ा ही व्यापक प्रचार है परन्तु किसी सीमा तक नागरिक लोग भी इनका उपयोग करते ही हैं। इन पहेलियों में बुद्धि विलास तो होता ही है परन्तु मनोरंजकता भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान रहती है। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि मनोरंजन को लक्ष्य में रख कर ही ग्रामीण और नागरिक जनता इन पहेलियों के द्वारा बुद्धि विलास करती है और अपनी बुद्धि को तीव्रतर बनाने का प्रयास करती है। प० रामनरेश त्रिपाठी के अनुसार 'पहेलियाँ बुद्धि पर शान चढ़ाने का यन्त्र हैं। ये स्मरण शक्ति और वस्तु ज्ञान बढ़ाने की कलें हैं। पहेलियों से गाँव वालों का ज्ञान वर्द्धन होता है उनको विद्यालयों में जाने की फुर्सत ही नहीं इससे पहेलियाँ उनकी विद्या की कमी को पूरा कर देती हैं।"[2]

पहेली की उपर्युक्त परिभाषा में ज्ञान-तत्व पर अधिक बल दिया गया है और उन्हें विद्यालयों का स्थानापन्न बतला दिया गया है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि पहेलियाँ ज्ञानवर्द्धक साहित्य के अन्तर्गत आती हैं, परन्तु विद्यालयों की शिक्षा से उसका साम्य बढ़ाने से सामान्य पाठक उनमें नीरसता, अरुचि, पूर्णता की सम्भावना कर सकता है। प्राचीन काल से लेकर आज तक के शिक्षालयों की विद्या को कठोर तप और त्याग का अंग मान कर चला जाता है। कम से कम उस शिक्षा को उतना रुचिकर तो कोई नहीं मानता जितना कि पहेलियों को माना जाता है। अतः पहेलियों के स्वरूप के विश्लेषण करते समय उनकी मनोरंजकता, चमत्कारिता और सवग्राह्यता को विस्मृत नहीं किया जा सकता। पहेली रूपी ज्ञान की भारी गठरी को अपने सिर पर लाद कर भी जन जन के आनन्दित होने के मूल में मनोरंजकता और चमत्कार के तत्व ही विद्यमान हैं। इन्हीं तत्वों के कारण ये पहेलियाँ आबाल-वृद्धवनिता के लिए कण्ठहार बनी हुई हैं और इन्हीं के कारण इन्हें विज्ञान की कोटि में न रख कर ज्ञान के साहित्य (लिटरेचर आफ विज़डम) की कोटि में रखा जाता है और अन्तिम विश्लेषण में पहेली का मूल्य काव्य का मूल्य बन जाता है।[3]

---

१ वरियर एलविन तथा डब्ल्यू० जी० आर्चर लिखित 'मैन इन इण्डिया' में लेख भाग १३ सं० ४, वर्ष १६४ पृ० सं० ३१६

२ प० रामनरेश त्रिपाठी—ग्राम साहित्य, तीसरा भाग पृ० २८५

३ डब्ल्यू० जी० आर्चर— मैन इन इण्डिया' का दिसम्बर १६४३ का अंक, पृ० २६६

पहेलियों के वर्ण्य विषय में पर्याप्त विविधता और व्यापकता होती है। लोक-जीवन की अनुभूति और कल्पना की सूक्ष्मातिसूक्ष्म अभिव्यक्ति इनमें सूत्र शैली में होती है। इनमें वस्तुओं का सांकेतिक चित्र प्रस्तुत किया जाता है—कुछ स्पष्ट और कुछ अस्पष्ट। इनमें अप्रस्तुत द्वारा प्रस्तुत का संकेत किया जाता है। समस्त अप्रस्तुत योजना की आधार शिला चिरपरिचित एवं अनुभूत लोक जीवन पर रखी जाती है—समस्त उपमान ग्रामीण वातावरण से ही ग्रहण किए जाते हैं।

पहेलियों में प्राय सार्थक शब्दों का ही प्रयोग किया जाता है पर कभी कभी निरर्थक वस्तु वैचित्र्यपूर्ण शब्दों की भी इनमें योजना हो जाती है। वस्तुत ये वैचित्र्य-पूर्ण शब्द एक ओर तो कौतूहल वर्द्धन का कार्य करते हैं तो दूसरी ओर निरर्थक होते हुए भी अपने वैचित्र्य के कारण अर्थ द्योतन में भी सहायक होते हैं इन्हें पहेलियों की कुंजी कहा जा सकता है। जिसने कुंजी के उपयोग को जान लिया उसे ताला खोलने में फिर देर ही क्या लगेगी?

पहेलियों के स्वरूप को अधिक स्पष्ट करने के लिए कहा जा सकता है कि इनमें वस्तु को सुझाने वाले उपमानों में निर्मित शब्द चित्रावली होती है जिसमें चित्र प्रस्तुत करके यह पूछा जाता है कि यह किसका है? पर इससे यह न समझना चाहिए कि उपमानों के द्वारा यह चित्र पूर्ण होता है। उपमानों द्वारा जो चित्र निर्मित होता है, उसमें अस्पष्टता रहती है उसमें अभिप्रेत वस्तु का बहुत अधूरा संकेत मिलता है, पर वह संकेत इतना निश्चित होता है कि यथासम्भव उसमें किसी अन्य वस्तु का बोध नहीं हो सकता।[1]

कनौजी पहेलियों का वर्गीकरण

कनौजी में जो पहेलियाँ उपलब्ध होती हैं उनका क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत एवं व्यापक रहता है और साधारण से साधारण एवं लोक जीवन से सम्बद्ध असाधारण से असाधारण वस्तु को पहेली ने अपना वर्ण्य विषय बनाया है। इनके प्रस्तुत एवं पृष्ठभूमि ग्रामीण वातावरण से तैयार हुई है। यदि केवल पहेलियों अप्रस्तुतों के आधार पर ही लोक जीवन का अध्ययन करना हो तो समाज के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं। पहेलियों की इस विविधता के कारण इनको कुछ सुनिश्चित वर्गों में बाँट देना सामान्यतया कठिन है परन्तु अध्ययन की सुविधा के लिए वर्गीकरण करना आवश्यक हो जाता है।

ब्रज की कहावतों के डा० सत्येन्द्र ने सात वर्ग बनाए हैं[2]—

१ खेती सम्बन्धी

---

१ डा० सत्येन्द्र—लोक साहित्य विज्ञान पृ० ८६२

२ डा० सत्येन्द्र—ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन पृ० ४७१

२ भोजन सम्बन्धी
३ घरेलू वस्तु सम्बन्धी
४ प्राणि सम्बन्धी
५ प्रकृति सम्बन्धी
६ अंग प्रत्यंग सम्बन्धी
७ अन्य ।

डा० शंकरलाल यादव ने इन वर्गों में आठवाँ वर्ग जोड़ दिया है। उनका मत है कि डा० सत्येन्द्र का मत सामान्यतया समीचीन है, परन्तु हरियाना में 'पौराणिक कथा सम्बन्धी पहेलियाँ प्रस्तुत वर्गों में नहीं रखी जा सकतीं, अतः एक नए वर्ग के बनाने की आवश्यकता पड़ी है।'[२] इस सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि डा० सत्येन्द्र के वर्गीकरण में पौराणिक वृत्त से सम्बद्ध पहेलियाँ ही नहीं और भी पहेलियों के अन्तर्भाव की भी गुंजाइश हो सकती है क्योंकि 'अन्य' वर्ग में पर्याप्त लचीलापन है। कनौजी पहेलियों के वर्गीकरण के लिए भी डा० सत्येन्द्र का वर्गीकरण स्वीकार किया जा सकता है। इन्हीं वर्गों को लेकर पहेलियों का संक्षिप्त विश्लेषण आगे किया जा रहा है।

कनौजी पहेलियों का विश्लेषण

१ खेती सम्बन्धी पहेलियाँ

इस वर्ग की पहेलियों में खेती से सम्बद्ध प्रायः सभी उपकरणों पर पहेलियाँ बूझी जाती हैं। कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(अ) आड़क बैंड़ा दम्मदार ।
दस पाँव औ तीन कपार ॥ (हल)

(आ) आस पास घास फूस बीच में तलैलो ।
दिन में तो भीरभार राति में अकेली ॥ (कुआ)

(इ) सिर प सोहै गंग जल मुँड माल मुंड गल माँहि ।
वाहन वाको वृसभ है सिव कहिए तौ नाँहि ॥ (पानी निकालने का रहट)

२ भोजन-सम्बन्धी

इस वर्ग में ग्रामीण जीवन में उपलब्ध होने वाली समस्त खाद्य वस्तुओं का पहेलियों में उल्लेख होता है। हर प्रकार के अनाज, फल, शाक सब्जी और हर प्रकार के व्यंजनों को इनमें स्थान मिलता है।

(अ) करिया नदी फलूटा पानी। बड़ि परी चन्द्रावलि रानी ॥ (पूड़ी)

---

२ डा० शंकरलाल यादव—हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य, पृ० ४३७

(आ) पहिले म हम पुन्न-पुन्न त नारि घराए ।
   दा पूछ अन्नाग बन्द सब पाय कराए ।
   बड़ा निता म जद्द पानि म घर लगाय ।
   पर उदधि म डूबि पुन्न क पुन्न कराय । उदर में बना हुआ
   दहा बड़ा

(इ) चार कचार चार रंग । इसका भीतर एक रंग । 'पान'

(ई) हरा तौ हुए भरी ती ।
   गला जौ क याग में दुगाला ओढ़ लाल ती । 'भट्टा

(उ) कारी ती कुसारी ती कार बन म रहती ती ॥
   डिबुला का पानी पीती पल में दुबि रहती ती ॥ बैंगन'

३ घरेलू वस्तु-सम्बन्धी

इस वर्ग में अनेक आन शाला गृहस्थी म काम आ क घर में आने वाली समस्त वस्तुएँ पहेली के विषय होते हैं।

(अ) तुम्हारे घर में कबी कारा । झाडू
(आ) चारि परा चार खड़ी । चारों म दुइ-दुइ गड़ी ॥ चारपाई
(इ) तनक सी नटिया । जान भाइ पनिया । मूड़
(ई) दिन में लम्बा । रात म मटकी ॥ मोंकन
(उ) तनक सी धनियाँ । ससम का सग कमियाँ । किवाड़ का गुल्लू'
(ऊ) पिटी गुलगुली पेट हड़प्पा ।
   ना बताव तोरा बाप कड़प्पा ॥ (हुक्का)

४ प्राणि-सम्बन्धी

इस वर्ग में मनुष्य, पशु-पक्षी, कीड़े मकोड़े—सभी का वर्णन रहता है।

(अ) एक जनावर ऐसा । जाके हड्डी ना पसली ॥ (जोंक)
(आ) एक पक्षी ऐसा । जाकी दुम में पइसा ॥ (मोर)
(इ) तापनाव तीरा । हरी सा चीरा ।
   चन्दन घूमी सड़ गई । बड़ी दुख दह गई ॥ (घर)
(ई) तन के कोमल मुँह के जोर । घास घम जस तुरका घोर । 'खटमल'

५ प्रकृति-सम्बन्धी

इस वर्ग में आकाश, तारे, सूर्य, चन्द्रमा, बिजली, वर्षा, नदी, दिन, रात, महीना, वर्ष, वर्षा आदि का वर्णन होता है।

(अ) एक थार मोतिन ते भरो। सब के ऊपर औंधो परो ॥
(आकाश)

(आ) थरिया भर राई। आगन मे फलाई ॥ (तारे)

(इ) चार खूँट को एक खेत। कक्री घनो मतीरा एक ॥
(तारे और चँद्रमा)

(ई) सर सर सतरी सरकइबे वालो कौन।
सीता चली ससुरे मगइवे वालो कौन ॥ (नदी)

६ अग प्रत्यग-सम्बन्धी

इस वग के अन्तगत आख कान, हाथ, पैर आदि सभी अगो का उल्लेख होता है।

(अ) आव तो दुख देय जाव तो दुख देय।
उठें तो दुख देय, बइठ तो दुख देय ॥(आख)

(आ) चले रोज प हटे न तिलभर। जिह्वा'

(इ) राम नहीं रावन नहीं नहीं ग्रस्त भगवत।
एक हाथ के आगे देखो चार नारि को अत ॥
'हाथ का अँगूठा'

७ अन्य

इस वग म उन पहेलियो का रखा जा सकता है जिनका अतर्भाव ऊपर के वर्गों में नहीं हो पाया है। कुछ एसी पहेलिया होती हैं जिनम पौराणिक वत्तो की झलक मिलती है यथा—

(अ) सौरी पाटी पाए चारि। तो पर तकिया गद्दा डारि।
दुई जन सोवें बाइस कान। बूझ कोई चतुर सुजान ॥
'रावन मदोदरी

कुछ ऐसी पहेलियाँ मिलती है जिनम सामान्य रूप से तो हास्य की सष्टि की जाती है परन्तु पहेली के उत्तर को सोचने पर पता चलता है कि इनम ईश्वर देवी देवताओ या किसी अन्य सामान्य घटना या काय पद्धति की ओर लक्ष्य किया गया था।

(अ) चारि पहर चौंसठ डयो। ठाकुर प ठकुराइन चढ़ो।
'ईश्वर और तुलसी'

(आ) अइठे जाय न गु इठे जाय। थूँक लगाए सहँ जाय ॥
'सुई और डोरा

(इ) आधो घुसो घुसाए ते। आधो हाथ लगाए ते ॥
जूते में पर'

सप्तम अध्याय

कनौजी लोक-साहित्य मे समाज का स्वरूप

कनौजी लाक साहित्य मे चातुवर्ण्य विभाजित सुव्यवस्थित समाज का चित्रण हुआ है। लोकसाहित्य के प्राय सभी रूपा म ब्राह्मण विद्याध्ययन धर्माचरण एव पौरोहित्य कम में सलग्न हैं क्षत्रिय राज कम युद्ध और लोकमगल म रत है, वश्य व्यापार म त मय है और शूद्र सेवा-काय म तल्लीन है।

ब्राह्मण

सामाजिक प्रतिष्ठा की दष्टि से ब्राह्मण का स्थान सर्वोपरि है। ब्राह्मण का चित्रण सवत्र कुल पुरोहित के रूप म किया जाता है। पूजा पाठ, दान-तथा सस्कारो के विधि विधान सचालन का काय उसी क द्वारा सपादित होता है। जन्म से मरण तक जितने भी सस्कार होत हैं उनमे वह पुरोहित बनता है। वह ज्योतिषी का भी काय करता है। क या क लिए वर खोजन के लिए भी उसे भेजा जाता है। या तो कही कहीं ईर्ष्यालु, पेटू और दान क लिए लालची के रूप मे भी उसका चित्रण हुआ है पर तु समग्र रूप म ब्राह्मण का लोक साहित्य म जिस प्रकार स चित्रण हुआ है, उसक आधार पर निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि समाज म उसका सर्वाधिक आदर कनोजी लोक साहित्य की मा यता है कि ब्राह्मण की कृपा के बिना कोई गति ही नही है।

क्षत्रिय

कनौजी लोक साहित्य के कथा गीतो, लोक कथाओं एव पँवारा के अधिकांश नायक क्षत्रिय ही हैं। इनम क्षत्रियो का जीवन लाक मगल भावना से परिचालित होता है। क्षत्रियो के राज्य शासन, युद्ध त्याग तपस्या, उदारता परोपकार—सभी का चित्रण क्षात्र धम के अनुकूल हुआ है। वे दुष्टो का दलन और सज्जनो का परित्राण करते हैं। युद्ध उनके जीवन का परम लक्ष्य होता है और इसीलिए वे क्षत्रिय को

ग्यारह वर्ष से अधिक जीवित रहने का अधिकारी ही नहीं मानते।[1] बालकों और दूसरों की रक्षा में सब-कुछ न्योछावर कर देने के कारण क्षत्रियों को समाज में प्रतिष्ठा का स्थान मिला है। कुछ लोक कथाओं में ठाकुर को शक्करबाज, झगड़ालू, मान करने वाले तथा अपनी आन पर मर मिटने वाले के रूप में भी चित्रित किया गया है।

वैश्य

कन्नौजी लोक-साहित्य में दिखलाया गया है कि वैश्य व्यापार व कारोबार में इतना अधिक संलग्न रहता है कि वह अपने व्यक्तिगत सुखों को भी विस्मृत कर देता है। एक कहावत में यहाँ तक दिखलाया गया है कि बनिया व्यापार को इतनी अधिक प्राथमिकता देता है कि गौने में आई हुई प्रिय पत्नी के साथ सुहाग रात भी नहीं मनाता। लोक-साहित्य में चित्रित वैश्य दूर विदेश तक में व्यापार करते हैं। कभी कभी तो बारह वर्षों के पश्चात अपनी मातृ भूमि का दर्शन कर पाते हैं। लोक कथाओं में वैश्यों को कंजूस, मुनाफाखोर और धोखेबाज के रूप में चित्रित किया गया है।

शूद्र

कन्नौजी लोक साहित्य की प्रायः सभी विधाओं और विशेष प्रकार से संस्कार गीतों में शूद्रों को सेवा कार्य में रत दिखाया गया है। नाई, कहार, माली, सुनार, बारी, धानुक, चमार, भंगी—सभी अपने परम्परागत कर्मों को समुचित रूप से सम्पन्न करते हैं। नाई को बहुत चतुर चालाक व्यक्ति बतलाया गया है। कुछ एक शूद्रों की भी चर्चा की गई है जो परम्परागत कार्यों के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी अपना जौहर दिखाते हैं। आल्हखण्ड में ऊदल बारी महान् वीर के रूप में चित्रित किया गया है। वह अनेक क्षत्रियों से युद्ध करके उन्हें पराजित करता है। शूद्रों को कहीं कहीं खल-नायक और खलनायिका के रूप में भी चित्रित किया गया है। सामाजिक प्रतिष्ठा की दृष्टि से शूद्रों को बहुत नीचा स्थान मिला है।

समाज की सर्वाधिक महत्वपूर्ण इकाई परिवार है। पारिवारिक जीवन के विश्लेषण से समाज के स्वरूप की स्पष्ट झाँकी मिल जाती है। इसी तथ्य को ध्यान में रखकर इस अध्याय में पारिवारिक जीवन के चित्रण को प्राथमिकता दी गई है। तदुपरांत समाज में नारी का स्थान, समाज का रहन-सहन, खान-पान, धार्मिक, राजनीतिक जीवन तथा लोक-साहित्य में वर्णित विविध संस्कारों का विश्लेषण किया गया।

कन्नौजी लोक-साहित्य में पारिवारिक जीवन का चित्रण

संसार के प्रायः सभी देशों का समाज छोटे छोटे परिवारों में बँटा हुआ है।

---

१ बरस अठारा छत्री जीवैं आगे जीवे को धिक्कार।

परन्तु इसके विपरीत भारतीय समाज की सबसे बडी विशेषता है यहा सयुक्त परिवारों का होना। लोक साहित्य समाज के स्वरूप का सच्चा प्रतिनिधि होता है यही कारण है कि पारिवारिक जीवन के जो विशद चित्र भारतीय लोक-साहित्य म उपलब्ध होते हैं वे अन्यत्र दुलभ हैं। अन्य भारतीय भाषाओ मे प्राप्त होने वाले लोक साहित्य की भाति ही कनौजी लोक साहित्य म वर्णित परिवारो म सदस्यो की दीघ सूची मिलती है। विभिन्न अवसरो पर इन सदस्यो का परस्पर क्या व्यवहार होना चाहिए, कनौजी लोक साहित्य इस सम्बध मे भी मौन नही है। वस्तुत ये परिवार प्रेम, स्नेह आदर, श्रद्धा सहनशीलता क्षमा, सहानुभूति तथा त्याग के प्राणवान चित्र हैं।

परिवार के सभी सदस्य परस्पर प्रेमपूवक सुख दु ख दोनो में समान रूप से साथ देते हैं—एक सदस्य का सुख सभी का सुख और एक का दु ख सभी का दु ख बन जाता है। साथ साथ रहने से कभी कभी परस्पर कलह का हो जाना अस्वाभाविक नही है। स्वभाव भेद और अवस्था भेद कलह के दो ही कारण होते हैं। कभी कभीसामाजिक मर्यादा का उल्लघन भी परस्पर कलह-द्वेष उत्पन्न कर देता है। परिवार में कुछ सम्बन्ध तो ऐसे होते है जो स्नेह, प्रेम, बलिदान तथा करुणा जसे सदगुणों का सहज उद्रेक करते हैं और कुछ ऐसे भी होते हैं जिनमे ऐसा प्रतीत होता है कि स्वाभाविक वैर हो। कुछ सम्बन्ध सामान्यत तो आदर श्रद्धा स युक्त दिखलाय जाते हैं परन्तु परिस्थिति विशेष म परस्पर घणा उत्पन्न करने वाले हो जाते हैं—जसे देवर भाभी ससुर बहू एव जेठ बहू। अध्ययन को व्यवस्थित करने के लिए इन सभी सम्बन्धो को तीन उपशीषको म विभक्त किया जा रहा है—

(अ) वात्सल्य स्नेह और प्रेम उत्पन्न करने वाले सम्बन्ध—

१ माता और पुत्री
२ पिता और पुत्र
३ माता और पुत्र
४ पिता और पुत्र
५ भाई और बहन
६ पति और पत्नी
७ देवर और भाभी

(आ) स्वाभाविक वैर वाले सम्बन्ध—

१ सौत और सौत
२ सास और बहू
३ ननद और भाभी

(इ) सामाजिक मर्यादा के उल्लघन होने पर घणा उत्पन्न करने वाले सम्बन्ध—

१ ससुर और बहू
२ जेठ और 'सहुरी' (छोटे भाई की पत्नी)

माता-पुत्री

कनौजी समाज में कन्या जन्म का अवसर समस्त परिवार के लिए विषादमय वातावरण उत्पन्न कर देता है। कन्या को जन्म देने के कारण माता पर अनेक व्यंग्य बाण चलाए जाते हैं—अनेक प्रकार से उसे त्रस्त किया जाता है। परन्तु इन सारी बातों के होते हुए भी पुत्री के प्रति माता की स्नेह-वल्लरी मुर्झाती हुई नहीं दिखाई पड़ती। यहाँ के लोक साहित्य में माता का पुत्री के लिए जो प्रेम है, वह अन्यत्र दुर्लभ ही है पुत्री को इस बात का दृढ़ विश्वास होता है कि जितना उसका ध्यान माता रखती है उतना और कोई नहीं रखता और यही कारण है कि संकट के प्रत्येक अवसर पर दुःख के प्रत्येक क्षण में, उसे अपनी स्नेह मयी माता की स्मृति आती है। माता पुत्र और पुत्री दोनों का समान रूप से पालन पोषण करती है, पर सम्भवतः पुत्री के प्रति माता के स्नेह की तीव्रता का एक कारण यह भी होता है कि पुत्री अपने विवाह होने तक दिन रात उसी के साथ रहती है जबकि पुत्र का माता के साथ इतना अधिक सम्पर्क नहीं रह पाता। पुत्री के प्रति अगाध स्नेह का एक और भी कारण है कि माता का हृदय सदैव इसलिए सशंकित रहता है कि पुत्री को ससुराल में जाकर कष्ट न भोगना पड़े। पुत्री की जब विदा होती है, उस समय गाये जाने वाले गीत करुणा से सराबोर होते हैं। पुत्री के लिए माता के रोने से अश्रु की नदी प्रवाहित होने लगती है।[1]

जब पुत्री को ससुराल में बहुत अधिक कष्ट होता है। तो उसे अपने नैहर की याद और भी सताने लगती है। वह अपनी माता के पास समाचार भेजती है कि वह उसे नैहर बुला ले। माता बुलाए भी तो किसके द्वारा? विवश होकर पुत्री के पास समाचार भेजती है—

बाबुल[2] तुम्हारे बड़ा देस के राजा भैया बसत परदेस।
जेठो बिरन तुम्हरा धनियाँ[3] को लोभी निन उठि जइए ससुरारि।
लहुरो बिरन बेटी निपट अनारी नदि रारे देखि डिराय।

एक गीत में दिखलाया गया है कि पुत्री को लाने के लिए भाई उसकी ससुराल गया है। अब माता ऊँची अटारिका पर चढ़कर पुत्री के आगमन के लिए मार्ग में पलक-पाँवड़े बिछाती है। पर होता है आशा के विपरीत ही। कहार खाली

१ माया के रोए ते नदिया बहत हैं।
बबुल रोए बला ताल।
२ पिता।
३ धन्या (पत्नी)।

डोली लेकर वापस आते हैं। पुत्र से बहन का समाचार कहने के लिए माता कहती है। जब भाई बहन के विविध कष्टों का वर्णन करता है तो माता आक्रोश में कहने लगती है, हे पुत्र तुम निपट कुपुत्र निकले। रोती बहन को यों ही छोड़कर चले आए।[1]

पुत्री के माता के प्रति प्रेम को भी कनौज प्रदेश के लोकसाहित्य में वर्णित किया गया है। पुत्री को ससुराल में बहुत कष्ट हैं। भाई से तो अपने कष्टों के सम्बन्ध में वह कहती है पर साथ ही उससे यह अनुरोध भी करती है कि माता से इनको न कहा जाय अन्यथा वे पुत्री के दुःखों के कारण अपना प्राण दे देंगी—

माया अगाए जनि कहिओ बिरना पेट मारि मरि जाय।[2]

यों तो प्रायः सभी गीतों में पुत्री का माता के प्रति अगाध प्रेम दिखलाया गया है पर कुछ ऐसे भी गीत हैं जिनमें पुत्री उपालम्भ देती है कि माता ने भाई का ध्यान उससे कहीं अधिक रखा है। भाई बहिन के झगड़ने पर माता ने भाई का पक्ष लिया है। इतना ही नहीं खाने-पीने की वस्तुओं तक में भेद रखा गया है—

भइया को पिआओ दूध कटोरन हम को पिआई छाछ।[3]

पिता-पुत्री

पुत्री के जन्म लेते ही पिता को अनेक चिन्ताएं घेर लेती हैं। उसके विवाह के लिए बहुत बड़े दहेज की चिन्ता तो है ही पर उससे भी बड़ी कठिनाई है योग्य वर ढूँढने के लिए उसे न जाने कहाँ-कहाँ मारे मारे फिरना पड़ता है। यदि वर मिल गया और विवाह निश्चित भी हो गया तो वर-पक्ष द्वारा उसे अपमान का जो घूँट पीना पड़ता है स्थान स्थान पर जो अपनी पगड़ी उतारनी पड़ती है उससे उसका हृदय अत्यधिक पीड़ित होता है।

कनौजी लोकगीत कृषक संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते हैं और कृषकों को घर में अधिक रहने का अवसर ही कहाँ मिलता है। अतः परिणाम यह होता है कि पिता-पुत्री में अधिक सम्पर्क नहीं रह पाता। एक बात और भी है यहाँ स्त्री और पुरुषों के रहने के लिए घरों में पृथक पृथक स्थान होते हैं। अतः पुत्री माता के पास ही रहती है और उसका माता के प्रति ही स्नेह प्रगाढ़ होता रहता है। लोकगीतों में पिता-पुत्री के प्रसंग को लेकर जो सामग्री मिलती है उसका वर्ण्य विषय होता है—पिता का पुत्री के लिए वर *खोजना, पुत्री का अप्रत्यक्ष रूप से अपने मनोनीत या* मनोवांछित वर के लिए पिता से कहना और विदा के समय पिता का रोना।

इसी प्रसंग को लेकर एक लोकगीत में उल्लेख हुआ है। विवाह के लिए आया

---

१ अनिल—कनउजी लोकगीत, पृ० २६७

२ वही, पृ० २६७

३ मट्ठा

हुआ वर सुन्दर नहीं है। माता पिता तथा अन्य सम्बन्धी वर को लौटा देना चाहते हैं, पर पर्दे के भीतर से पुत्री कहती है कि यदि ऐसा हुआ तो वह विष पान करके अपने प्राण दे देगी। विवाह करेगी तो इसी से।[1] विदा के समय पिता का रुदन सीमा तोड़ देता है और पुत्री इस सम्बन्ध में कहती है कि पिता के रोने से गंगा ताल बहने लगते हैं। पुत्री की विदा के पश्चात जब पिता घर लौटते हैं तो उन्हें घर अन्धकारमय प्रतीत होता है। घर और आंगन उन्हें अस्वच्छ दिखाई पड़ता है और बिना पका हुआ गागर सूख रहा है।[2] पुत्री का विवाह हो जाने के उपरान्त पिता पुत्री से सम्बद्ध प्रसंग में कनौजी लोकगीत मौन हो जाते हैं।

माता-पुत्र

माता का पुत्र के प्रति सबसे दृढ़ एवं पवित्र स्नेह माना गया है। उसमें न तो कुछ स्वार्थ ही होता है न बदला लेने की भावना ही। उसका हृदय ऐसा बना है कि पुत्र के प्रति प्रेम के अभाव में सम्भवतः वह जीवित भी नहीं रह सकती। मानव के लिए माता सदृश अमूल्य निधि स्वर्ग में भी दुर्लभ है।

गर्भाधान से ही पुत्र के लिए माता के कष्ट का आरम्भ हो जाता है। वह उसे नौ मास तक अपने उदर में रखती है, धातक प्रसव पीड़ा सहती है और जन्म के पश्चात पालन-पोषण में भी अपने सुखों की चिन्ता न करके पुत्र को अधिकाधिक सुख देती है। इतने सारे दुःखों को देने वाले पुत्र को न जाने वह क्यों इतना स्नेह करती है? माता के इसी स्वर्गीय स्नेह का वर्णन कनौजी लोकगीतों में मिलता है। सोहर, चक्की के गीत और भजनों में तथा लोक कथाओं में माता पुत्र विषयक प्रेम का वर्णन रहता है। कहावतें भी इस प्रसंग में प्रकाश डालती हैं।

जब माता को देवी देवताओं से कुछ माँगना करनी होती है तो उस समय भी वह पुत्र प्राप्ति को प्राथमिकता देती है। पुत्र के साथ ही उसे दूध भी वांछित रहता है पर दूध का उपयोग भी तो उसका पुत्र ही करेगा। ललिता देवी[3] के लिए गाए जाने वाले गीतों में से एक में माता याचना कर रही है—

काए के काजें मइया धजा रे नारियर काए के काज मइया भरि भरि दोना।
दूध के काज मइया धजारे नारियर पूत के काज मइया भरि भरि दोना।[4]

अनेक लोकगीतों में माता अपने पुत्र को विदेश जाने से रोकती है। वह नहीं चाहती कि उसका पुत्र एक क्षण के लिए भी उसके दृष्टि पथ से ओझल हो। जब भी वह बाहर जाता है माता फूट फूटकर रोती है। कहना न होगा कि लोक गीतों में

१ परदा भीतर नाना बाढ़ी लाय जहर मरि जाय। मउरी डार य ही वर त।
२ अनिल—कनउजी लोकगीत पृ० २६०
३ सप्त मातकाओं में से एक।
४ अनिल—कनउजी लोकगीत पृ० २७३

कौशल्या माता प्रतीक स्वरूप हैं। एक स्थान पर एक लोकगीत मे कौशल्या माता, राम सीता लक्ष्मण के वन जाने की आज्ञा माँगने के लिए आन पर उन्हें आज्ञा नही द पाती। वे कहती हैं कि 'राम तो मेरे प्राण हैं, लक्ष्मण मेरी आखों की पुतली, सीता मेरी राजदुलारी है भला मैं इह वन मे कसे भेजू ?—

'अरे राम तो मोरे जियरवा लखन मोरी पुतरी हो।
अरे सीता मोरी राज दुलारि कहो कइसे पठमैं हो॥'

वन गमन के समय पर कौशल्या के भावा की अभिव्यक्ति की स्वाभाविकता जो इन गीता म है उसको न तो वाल्मीकि ही सुरक्षित कर सके हैं न तुलसीदास ही। उन्होने तो कौशल्या द्वारा आदश की प्रतिष्ठा कराई है।

पुत्र के प्रति माता का इतना अधिक प्रेम होता है कि उस पर वह एकाधिकार चाहती है। उस इस बात का पूरा पता है कि विवाह के पश्चात पुत्र का पत्नी के पति इतना अधिक प्रेम होग कि वह माता की उपेक्षा करने लगेगा। सास बहू का झगडा होगा और स्वभावत पुत्र के लिए उसन अनेक कष्ट उठाए हैं, उसकी वह उपेक्षा सहन भी कसे कर सकता है ?

जब पुत्र विवाह करने के लिए चलता है और माता का आशीर्वाद चाहता है, उस समय माता कुएँ म गिरकर मर जाने के लिए सम्बद्ध होने का प्रदशन करती हैं। पुत्र उसको आश्वासन देता ह कि वह उसके लिए सेविका लाएगा और अपने लिए जीवन साथी—

'कुआ गिरन को माया बइठीं बन्ना गिरन ना देय।
तुम को तौ माया मोरी बहुवा लइबो अपने को जलम सहेज॥'

विवाह हाने के पश्चात सास बहू म तना-तनी आरम्भ हो जाती ह और पुत्र की स्थिति चिन्तनीय हो जाती ह। विवाह के थोडे दिन तक पुत्र अपनी पत्नी द्वारा माता के अपमानित होन पर क्रुद्ध होता है और पत्नी को क्षमा याचना करनी पडती ह—

हम ते भई तिसकरिआ[1] सासु पाय लगिह हो।
बलमा सासु मनाय हम लीबो सो तुम हसि बोलउ हो॥',

पर अन्ततोगत्वा वह अपनी पत्नी का ही पक्ष लेने लगता ह। एक गीत म पुत्र के परदेश जाने पर माता अपनी पुत्री की सहायता से 'बहू' को मरवा डालती हैं। जब पुत्र वापस आता ह और उसे पत्नी नही मिलती तो वह बहुत दु खी होता है। माता कहती ह कि हे पुत्र तुम दु खी क्या हो ? मैं तुम्हारा दूसरा विवाह कर दूगी। पुत्र विरक्त होकर उत्तर देता है—

---

1 तिरस्कार।

घन्द सूरज अइसी धनिया जो घूगी टूटी रजन समुरारि।
लावौ न माया मोरी जुगिया के कपड़ा हम जुगिया हुइ जाय।'

बहू के प्रसंग को छोड़कर माता और पुत्र के सम्बन्धों में कुछ कटुता अवश्य आ जाती है। या यों कहना अधिक उपयुक्त होगा कि बहू के कारण पुत्र के प्रति उसके कुछ असन्तोष अवश्य रहता है परन्तु फिर भी पुत्र के लिए उसके प्रेम का अक्षय कोश सदैव खुला रहता है। लोक-कथाओं में इस बात के अनेक उदाहरण मिलते हैं कि माता पुत्र के प्रेम का कमी नहीं होता है उस ओर कुछ भी नहीं चाहिए। 'कंजूस साहूकार'[1] की लोक-कथा में यह बताया गया है कि पुत्र के घाट पर व्यवसाय करने के कारण पिता उसे घर से निकाल देता है पर माता पुत्र के लिए लड्डुओं के भीतर चार लाल रख देती है। इतना ही नहीं अन्त तक वह पुत्र की सहायता देती है। एक कनौजी कहावत में तो कहा गया है कि किसी मनुष्य की मृत्यु हो जाने पर १० दिन तक उसकी पत्नी रोती है १३ मास तक बहन और माँ जब तक जीवित रहती है, रोती है। इस कहावत में पत्नी और बहन के सम्बन्ध में अतिरंजना प्रतीत होती है, पर हमें इस बात को नहीं भूलना चाहिए कि लोक-साहित्य प्रायः सामान्य जनता का साहित्य है इसका अधिक सम्बन्ध उन लोगों से है जिनके यहाँ पति के मरने पर स्त्री का दूसरा विवाह भी हो जाता है। बहन के सम्बन्ध में इस कथन में निश्चयपूर्वक अतिरंजना ही है। कुछ भी हो, इस कहावत से पुत्र के प्रति माता के प्रेम की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

पिता-पुत्र

पिता का भी पुत्र के प्रति अत्यधिक प्रेम होता है। अपने पुत्र के लिए सब प्रकार के बलिदान करने के लिए वह तैयार रहता है। जो भी वह कमाता है वह पुत्र के लिए ही तो है। पुत्र के जन्म पर पिता हर्ष के समुद्र में अवगाहन करने लगता है। इस भाव को लेकर एक बहन अपने भाई से कहती है—

जा दिन भईया तुम्हरो जलम भयो है भई है सोने की राति रे।
मायहु बेस[2] बाबुलि बेस ददुलि बेस चउपारि रे।
तुम तो बिरन मोरे बाबुलि चउपरिया हम का तो लिखो है बिदेस रे।'

पुत्र जन्म पर पिता इतना अधिक प्रसन्न है कि वह दाई (धाय) का नारा छीनने के लिए मोहरें दे रहा है—

द्वारे से सइया हथिया पठायो हँथियौ न लेय वह दाई सात को नारा न छीन।

---

१ लेखक के अप्रकाशित निजी लोक-कथा संग्रह से।
२ प्रसन्न हैं।
३ अनिल—कनउजी लोकगीत पृ० ६५२ ६०

कुछ ऐसे भी कनौजी लोकगीत मिलत हैं जिनम दशरथ की वेदना अभिव्यक्त की गई है। कुछ विवाह गीतो म भी पुत्र पिता के प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट करता हुआ दृष्टिगोचर होता है। जिस प्रकार वह माता स कहता है कि उसके लिए वह सेविका लाएगा और अपन लिए जीवन सगिनी, उसी प्रकार पिता म भी यही कहता है। वस्तुत पिता पुत्र सम्ब ध विषयक बहुत कम लोकगीत हैं।

भाई बहन

कनौजी लोकसाहित्य म भाई बहन के प्रेम का नानाविध चित्रण मिलता है। बा यावस्था मे व साथ खेलत हैं और इस सम्पक से उनका स्नेह सुदृढ हो जाता है। बडा होने पर बहन का विवाह हो जाता है और भाई को रोता हुआ छोडकर वह ससुराल का चल दती है। जब भाई बहन की ससुराल जाता है तो उसके कष्टो को देखकर बहुत दु खी होता है। भाई का विवाह होन पर माता की भाँति बहिन स भी उसका कुछ तनाव हो जाता है। क्रमश इन श्रेणियो को ध्यान म रखकर भाई बहन के पारस्परिक सम्ब ध का विवेचन नीचे किया जाता है।

बाल्यावस्था में भाई बहन

सावन के एक रात म छोटी छोटी बूदा स मघ बपा हुई। आगन म कीच हो गया। बहन कहती है कि, हे भाई आगन म न निकलो अ यथा तुम्हारे पर कीच से भर जाएँग। मैं तुम्हारे परो के लिए च दन की खडाऊँ लूगी और हाथ के लिए छडी मगाऊगी। सर पर लगान के लिए मखमल की टोपी ल गी और हाथ-मुह पोछन क लिए रुमाल—

न हीं न हीं बु दियन मेहा बरसि गए मेहा बरसि गए
अरे आगन हुइ गम्रो कीच।
अब जिन निकरौ अँगना में बिरना पाय भरें दोनो कीच।
पांय को लिय भइमा चनन खड़उवा हाथ को छडिया मँगाय।
दीबे को लियें भइआ मखमल टोपी पूँछिबे को लिय रुमाल।

बहन के विवाह के अवसर पर माता की भाति भाई भी करुण क्रन्दन करता है। बहन स वह बहुत कुछ कहना चाहता है पर मुँह स कुछ बोल नही पाता। वह अपनी बहन की डोली पकड लेता है और बहन को नही जाने देता। बहन किसी भाति भाई का समझाकर डोली छुडवाती है—

लहुरे बिरन मोरी पकरी पलकिआ हमरी बर्रा न कहां जाय रे।

भाई का रोना हुआ देखकर बहन कहती है—

किनके रोये ते छतिया फटत है
बिरना के रोये ते छतिया फटत है।

बहन के घर में भाई

मनोजी लोकाचार के अनुसार माता अपनी पुत्री की ससुराल नहीं जाती। अतः पुत्र ही माता-पुत्री के मध्य वाहक का काम करता है। बहन के लिए भाई ही एकमात्र ही सहारा है। बहन को जब भी किसी वस्तु की आवश्यकता पड़ती है अथवा विपत्ति पड़ती है तो उस अवसर पर भाई शामिल होता है। ... बहन आवश्यकता पड़ने पर भाई का आह्वान करती है। इसी प्रकार भाई पर भी जब किसी प्रकार का संकट पड़ता है तो बहन का उसे आश्रय मिलता है। एक गीत में भाई पर विपत्ति पड़ी तो बहन के पास गया और बहन ने उसका यथोचित सम्मान किया। गोपीचन्द जीवन पर्यन्त में राजा गोपीचन्द जोगी हो जाते हैं और भ्रमण के लिए चल देते हैं। माता कहती है कि और सब जगह जाना बहन के यहाँ नहीं। पर गोपीचन्द बहन के यहाँ जाते हैं और बहन उन्हें आदर भाव से लेती है—

कि ए जू आंगन लात गए बहिनि तुम्हारे साथों जोगी भिच्छा जाँय।
कि ए जू लखन बाँदी भिच्छा डारि आयो जोगी ठाड़े दुआर।
बाँदी के हाथ न लोहूँ भिच्छा जोगी हैं बिरना तुम्हार।
कि ए जू धार मेरे माती ऊपर धरो नरियर लेव जोगी भिच्छा जाव।

भाई का आना बहन के लिए उत्सव से कम नहीं होता क्योंकि उसके लिए उसे बहुत प्रतीक्षा करनी पड़ती है।[1] वह सास से पूछती है कि भाई के लिए क्या भोजन बनाया जाय। सास कहती है कि कोदों का भात उसके लिए बना लो। इस उत्तर को सुनकर वह सास की बात पर ध्यान न देकर भाई के लिए 'मोती छर भात' और गहूँ की रोटी बनाती है। एक गीत में बहन मेहंदी लगाए हुए है ऐसे ही में भाई आ गया। उसके सामने यह समस्या है कि भाई से लिपटकर कैसे भेंट करें—

हाथन मेहँदी पायन बिछिआ कइसे मिल राजा बीर जी।
पाय डारो मेंहदी उतारि डारों बिछिआ लिपटि मिलो राजा बीर जी।

बहन के प्रति भाई का अतिशय प्रेम अनयकारी सिद्ध होता है

सावन के एक गीत में जब भाई को यह ज्ञात होता कि है उसका बहनाई उसकी बहन को बहुत कष्ट देता है तो वह उसे मार डालता है और इस प्रकार प्रेम की अति बहन के लिए अभिशाप हो जाता है। एक अन्य गीत में पति छद्म वेश में अपनी पत्नी से पनघट पर छेड़छाड़ करता है। भाई को यह बात ज्ञात

१ ऊँच बराठवा ससुर जू के तहि चढ़ि हेरों मैं बाट
मेरे परदेसिन के बीरना रे।

होती है। वह हथियार लेकर अनजाने अपने बहनोई को मार डालता है। उसके लौटने पर खून से भरी हुई तलवार को देखकर बहन पूछती है कि तलवार में खून कहाँ से लग गया? भाई पूरी कहानी बतलाता है। बहन रोने लगती है और भाई से कहती है—

'मारो तो मारो मारि न जानो मारो सगो बहनोई।
को की पहिरों हरी पीरी चुरिआँ को प करों सिंगार।
कौन छबइय राड की मडइया कौन करे पतिपाल।'

भाई के विवाह हो जाने पर बहन के प्रति स्नेह का ह्रास

भाई के विवाह होने पर बहन का नहर आना जाना कम हो जाता है, क्योंकि ननद भाभी में बनती नहीं है। भाई असमंजस में पड जाता है कि वह किसका पक्ष ले। भाई पर परिवार का भार पडता है और आर्थिक दृष्टि से भी उसे सोचना पडता है। बहन के बुलाने का सीधा अर्थ है बहुत से धन का व्यय। यह व्यय पत्नी करना नहीं चाहती। अत बहन कभी कभी बिना बुलाए भी आ धमकती। भतीजे के उत्पन्न होने पर बहन जाती है पर भाई यह कहकर लौटा देता है कि खेती सूख गई है और घर में अनाज भी नहीं है। एक अन्य गीत में बहन 'भात मांगने' के लिए आई। भाई उत्सव में सम्मिलित होता है और यथोचित सामग्री भी बहन को भेंट करता है। एक ओर तो बहन लोकगीतों में अपने प्रेम का आदर्श उपस्थित करती है परन्तु दूसरी ओर लोक कथाओं में यह ध्वनित किया जाता है कि बहन धन की साथिन होती है। कजूस साहूकार की कहानी में यही दिखाया गया है कि भाई को विपन्न देखकर बहन उसका अनादर करती है।[1]

पति पत्नी

विवाहोपरान्त पत्नी ससुराल जाने को है। मात गृह से उसे इतना अधिक प्रेम है कि उसके छोडने की कल्पना से ही उसे दुःख होता है। माता खाने के लिए पुत्री को मनाती है और सात में ही उसे विदा कर देती है। वह एक वन पार करके दूसरे में और फिर तीसरे में जा पहुचती है। पदा खोलकर जब वह देखती है तो उसे नहर का कोई भी व्यक्ति नहीं दिखाई देता और इसीलिए कटारा मार कर मर जाना चाहती है। पर घोडे पर सवार उसके सिरिवर (वर महोदय) उससे ऐसा न करने के लिए विनय करते हैं। कहते हैं कि हम तुम दोनों मिलकर अयोध्या का राज्य करेंगे।[2] यही बहू अपने 'सिरिवर' के प्रेम में इतनी अधिक अनुरक्त हो जाती है कि सुहाग रात में वह कहती है—

१ लेखक के अप्रकाशित निजी लोककथा संग्रह से।
२ अनिल—कनउजी लोकगीत, पृ० २६०।

आज सुहाग की राति चन्दा तुम उइयो।[1]
चन्दा तुम उइयो सुरज जिनि उइयो।
मोर हिरद बिरग जिनि करियो सुरग जिनि धुलियो।
आज चन्दा करो बड़ी राति चन्दा तुम उइयो।

पत्नी नहीं चाहती कि प्रातः काल हो और उसे पुनः दिन के लिए वियोगाग्नि में दग्ध होना पड़े।

ऊपर जिस अभीप्सा का वर्णन किया गया है वह अभीप्सा सुहागरात तक ही सीमित नहीं है। इसका कारण है कनौजी समाज में पर्दे की प्रथा का होना। दिन में पति-पत्नी एक-दूसरे से प्रायः मिल नहीं सकते। अतः रात्रि के अंधकार में जाने की उनकी कामना स्वाभाविक ही है। यों तो प्रायः लोकगीतों की दुनिया में पर्दा नहीं है[2] ससुर जेठ—सभी से बात करती हुई बहू दिखाई पड़ती है पर वास्तविकता यह है कि पर्दे का निर्वाह कड़ाई के साथ किया जाता है। पर्दे के कारण ही पति-पत्नी को मिलने में कठिनाई होती है। एक विरह गीत में पर्दे का प्रसंग आया भी है।[3]

यद्यपि विवाह के समय पति अपने माता पिता को यह आश्वासन देता है कि वह उनके लिए 'श्रवण' बनने का वचन देता है पर पत्नी का प्रेम उसे अपना वचन भंग करने के लिए विवश कर देता है। वह स्वयं ही पत्नी का सेवक बन जाता है। जब सास उसकी पत्नी से रोटी बनाने, नहाने धोने, भोजन पकाने और ससुर पानी लाने के लिए कहता है तो पतिदेव उन्हें ऐसा कहने के लिए गाली देता है। वह नहीं चाहता कि उसकी पत्नी को थोड़ा भी कष्ट हो। पत्नी को अपने नैहर की बार-बार याद आती है और वह उधर को उदास होती है तो पति बार बार उससे प्रार्थना करता है कि वह वहाँ जाकर उसे वियोग दुःख में पीड़ित न करे। दूसरी ओर जब पति अर्थोपार्जन के लिए परदेश जाना चाहता है तो पत्नी उसे रोकती है। कहीं तो वह कहती है कि मैं पिसना पीसकर गुजर कर लूँगी और और कहीं कहती है कि यदि नौकरी में तुम्हें पाँच रुपये मिलेंगे तो मैं तुम्हें दस रुपये दूँगी तुम नौकरी के लिए परदेश न जाओ। पर बेचारा पति आर्थिक विवशता के कारण अनिच्छा होते हुए भी परदेश के लिए प्रस्थान करता है। नौकरी का जब कोई उपाय उसे नहीं सूझता तो वह इन्द्र से प्रार्थना करता है—

बरसो इन्दर तुम जितना पहर राति बरसो हो।

---

1 उदित होना।
2 रामनरेश त्रिपाठी : कविता कौमुदी (ग्राम-गीत) नवनीत प्रकाशन लिमिटेड बम्बई १९५५ पृ० सं० १२१।
3 'पर्दा लागि अब कहौं जू अम्मा छूटा नइहर का देस रे।'

टर जान फेरी बिरिया पिया घर बिलमैं हो।

पति के वियोग मे पत्नी सदव उसकी याद किया करती है। उठते-बैठते, सोते जागते राते गाते—सदव वह दु खी रहती ह। उसका खाना पीना सब व्यथ है, क्योंकि पति उसके पास नही है—

'नयन जल ढुरि जाय रे जब सुधि आव पिया की।
सोने के थारन भुजना बनाए भुजना परे बिलखाय रे।
जब सुधि आव पिया की।

पति की प्रतीक्षा म वह सारी रात दीपक क साथ ही साथ स्वय भी जलती रहती ह। प्रतीक्षा करते करते स ध्या से प्रात काल हो जाता है पर वह निर्मोही नही आता तो नही आता। उसके हृदय म उदगार फूट निकलते हैं—

सेजडिया सूनी स्याम नहिं आए।
हरे हरे दिअना दीप जराए सिगरी राति स्याम नहिं आए।
पूरब तरइयाँ पच्छिम गई है चन्दा गओ पिछवारे, स्याम नहिं आए'।

पत्नी की परीक्षा पति छदम वेश मे लेता है

अनेक वष विदेश रहने के पश्चात जब पति वापस आता ह तो छदम वेश म पत्नी से मिलता है। उसकी दीनता तथा अपनी समद्धि का उल्लेख करता ह। पत्नी को अनेक प्रकार के प्रलोभन देता ह पर वह उसका उपहास करती ह और कहती ह कि तुम तो मेरे ससुर के नौकर होने के योग्य भी नही। जब छद्मवेशी मनुष्य कहता है कि मैं तुम्हारा पति हूँ तो बचारी प नी अपने सबन्धे के लिए इतनी लज्जा का अनुभव करती ह कि उसे मूर्छा आ जाती ह।[1]

पति पत्नी मे कटुता

पति पत्नी विषयक वणन जो ऊपर किया गया है वह तो आदश के रूप म ह। अनेक गीतों एव कहानियो म दिखाया गया है कि पति,पर-स्त्री स प्रम करता है इसके कारण वह पति से रुष्ट होती ह और यह रोष कभी कभी बडे बडे झगडो का कारण बन जाता है। पत्नी सदव इसी क लिए चि तित रहती ह कि उसका पति कहीं दूसरी स्त्री से प्रेम न करने लगे। कभी कभी पत्नी को पति मार भगाता ह और उस बचारी को नैहर मे शरण लनी पडती ह। कुछ गीतो और कहानियो मे यह भी दिखलाया जाता ह कि पत्नी पर-पुरुष गामिनी हो जाती है। एक गीत में दिखाया गया है कि—

टिकि जाव बटोहिया हमारी बखरी ना।

---

१ 'देखि पति मुरछि परी।

सोने की थारी में जेवना परसिओं
जेवना सए अलसाय गई हो ना।

पति जब भी कई दिन के बाद परदेस से लौटता है तो उसके सच्चे प्रेम पर विश्वास नहीं करता और भाँति भाँति से उसकी परीक्षा लेता है। जान पड़ता है कि स्त्री के प्रति अविश्वास से उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दिया गया हो। बेचारी सीता तक को अग्नि-परीक्षा देनी पड़ती है।

देवर भाभी

शास्त्रों और महाकाव्यों में देवर भाभी का सम्बन्ध बहुत ऊँचे आदर्श पर प्रतिष्ठित किया गया है। देवर के लिए भाभी माता के समान कही गई है। राम वनवास के समय सुमित्रा लक्ष्मण को जाने के समय उपदेश में कहती है—

राम दशरथ विद्धि माम विद्धि जनकात्मजाम।
अयोध्यामटवीं विद्धि गच्छ तात यथासुखम॥[1]

लक्ष्मण अपनी माता की आज्ञा अक्षरशः पालन करते हैं। कन्नौजी लोकोक्तियों में भी भाभी को माता के समान माना गया है।[2] पर लोकगीतों तथा कुछ लोक-कथाओं में इन दोनों के अनुचित सम्बन्धों का उल्लेख भी हुआ है। कन्नौजी लोकाचार में इतना सन्तुलन है ही कि देवर भाभी का सम्बन्ध विनोद-पूर्ण है। दोनों परस्पर व्यंग विनोद कर सकते हैं। होली के अवसर पर दोनों रंग डालकर होली खेलते हैं— भरि पिचकारी देवरा मारी भीजि गई सारी सारी।[3]

कन्नौजी लोक-साहित्य में भाभी-देवर के स्नेह सिक्त सम्बन्ध के पर्याप्त मात्रा में विवरण मिलता है। रास्ता चलती चलती भाभी थक जाती है तब अपने देवर से सहायता के लिए याचना करती है—

काँधे लागो रे देवरिया मोसे गैल चली न जाय।

वन में पहुँचने पर सीता को इस बात की भी चिन्ता है कि पुत्रोत्पत्ति पर कौन नीर मारेगा। जब पुत्र उत्पन्न होता है तो लक्ष्मण के लिए वो वे 'रावन' मनाती हैं और नाई को इस बात का आदेश देती हैं कि वह इस सम्बन्ध में राम को न बतलाए। कुछ कहानियों और गीतों में देवर को भाभी के सहायक के रूप में भी चित्रित किया गया है। जब पति परदेश चला जाता है तो वह भाभी का सन्देश देवर भाई के पास जाता है और उस वर्ष से वापस लाता है—

---

१ वाल्मीकि रामायण—बालकाण्ड।
२ भौजी औ मा बरोबर।
३ होली के दिन होने वाली एक विशेष प्रथा।

दिउरा हो दिउरा तुम मोरे भिउरा तुमहि मोरे दिउरा हो रे।
मोरे दिउरा जो हरि होयँ अकेले तो बाँचि सुनावो हो रे'।

पति आकर कहता है—

'अरे धना मोरी लहुरे देउरवा के हाथ चिठिया तुम पठई होरे।
अरे धना ओ ही काज भाजत आए कुरोप न छोंडउ हो रे'।

देवर भाभी का अनुचित सम्बन्ध

देवर भाभी का माधुर्य कभी कभी इस सीमा तक पहुंच जाता है कि भाभी से वह कहता है कि जब तक हमारे भाई वापस आएँ तब तक तुम मुझसे ही प्रेम करो। एक स्थान पर तो मिलता है कि देवर भाभी रात्रि में एक ही शय्या पर सोते हैं। वह शय्या पर अपनी अंगूठी भूल आई है। उसे इस बात का भी डर है कि यदि उसका पति इस बात को जान गया तो वह बहुत पीटेगा—

मुंदरिआ तुम्हरी सिजडिया प देउर भूलीं राति।
तुम्हरी सेज प मुंदरी भूली राति देवउर आयी राति।
हमको यादि सकारे आई जब धोये हम हात।
जो मालूम परि जाय बलम को मारि सुजामैं देहि।

देवर भाभी के सम्बन्धों में कहीं कहीं काम-वासना भी दृष्टिगोचर होती है पर यह वासना एक पक्षीय न होकर उभय पक्षीय है। देवर की ढिठाई के प्रति वह वैसा रोष नहीं दिखलाती जैसा कि ससुर और जेठ के सम्बन्ध में दिखाती है। हो सकता है कि इसके मूल में यह बात हो कि कनौजी समाज की कुछ जातियों में पति के मरने के उपरान्त देवर से विवाह अनुचित नहीं माना जाता।

राम-कथा से सम्बन्ध रखने वाले कुछ कनौजी लोकगीत ऐसे अवश्य हैं जिनमें लक्ष्मण सीता को माता के समान मानते हैं—

अरे भइआ भइआ तुम मोरे हो रे।
हम जइवो लकरिआ लेन हो सीता माता को हो।

सौत-सौत

संस्कृत शब्द 'सपत्नी' का 'सौत' तद्भव रूप है। सामान्यतः तो एक मनुष्य की दो या उससे अधिक पत्नियाँ परस्पर सौत कहलाती हैं, पर कनौजी लोक साहित्य में व्यावहारिक रूप में पति से अवैधानिक सम्बन्ध रखने वाली स्त्री को भी 'सौत' कहा जाता है। इतना ही नहीं किसी की ओर पति के साधारण आकर्षण होने पर भी उस स्त्री को सौत के नाम से अभिहित किया जाता है। कनौजी बोली में खड़ी बोली के सौत शब्द को 'सउति' कहा जाता है। स्त्री का जिन जिन

---

१ क्रोध।

व्यक्तियों से कटुता का सम्बन्ध होता है उनमें सौत के साथ कटुता अंतिम पराकाष्ठा तक पहुँच जाती है। कनौजी लोक-साहित्य में सौतों की इस कटुता के कारण ही एक लोकोक्ति बन गई है 'सउतिआ डाह'। सौत अपनी सौत को फूटी आँखों भी नहीं देखना चाहती। कहीं तो वह सौत का गड्ढा खुदवाकर गड़वा देना चाहती है और कहीं उसे भाई द्वारा मरवा डालना चाहती है। एक लोकगीत में पति के प्रातःकाल आने पर उसके मन में अनेक प्रकार की कल्पनाएँ उठती हैं। वह सोचती है कि यदि सौतों के बगीचे न रोका था तो वह उन्हें कटवा डालेगी। सौत के रूप में सौत का अस्तित्व वह रखेगी ही नहीं। यदि महल की सुंदर रानी ने उसे आकृष्ट कर लिया था तो वह उसे भी मरवा डालेगी। ऐसा होने पर भी यदि पति नहीं मानेंगे तो भाई को समाचार देकर पति महोदय को पिटवाएगी—

पतिआ लिखि भेजौं नइहर खबर कर।
भइआ चढ़ि आमैं बलमा प मार पर।'

इतना सचेत करने पर भी पति नहीं मानता और घर में सौत को लाकर बिठा ही देता है। इस अवसर पर उपालम्भ देती हुई पत्नि से पत्नी पूछती है—

जो हम होतीं राजा बांस बसनिआ
सौ सउनिजा लउते हो राम।
जो हम होतीं राजा कारो कुइलिया
तौ सउनिआ लउत हो राम।
जो राजा हमरी सुरज अइसी दिहिआ
सउतिआ काए लाए हो राम।

किसी प्रकार लम्ब भगन्त जीवन की गाड़ी धीरे धीरे आगे बढ़ती है। अन्य कनौजी लोक-कथाओं एवं प्रबन्ध गीतों में भी स्त्री को सौत के दुःख से छटपटाते हुए दिखाया गया है।

सास-बहू

आदर सम्बन्ध

न केवल धर्मशास्त्र में ही वरन लोकाचार में भी यह बात मान्य है कि बहू सास का आदर करे। यह लोक विश्वास है कि जो बहू सास ससुर तथा अन्य पूज्य जनों की सदा सुश्रुषा तथा आदर करती है उसे अनेक प्रकार के सुख मिलते हैं। कुछ लोक-कथाओं में भी इसका उल्लेख मिलता है। कुछ कनौजी लोकगानों में बतलाया जाता है कि स्त्री को सबसे बड़ी उपलब्धि उसके जीवन को धन्य करने वाला पुत्र उसे सास की सेवा सम्मान करने में ही मिला है। कुछ लोकगीतों में सास और बहू के आदर्श रूप की कल्पना भी की गई है। सास दूसरे की पुत्री और वह सास को

माता-सदृश मानती है। एक लोकगीत में माता कौशल्या अपनी वेदना व्यक्त करती है—

सीता बिना मोरी सूनो रसुइया कइसे मन समुझामैं।

सास कठोर शासिका के रूप में

उपयुक्त कुछ प्रसंग अपवाद स्वरूप ही हैं। कनौजी लोक साहित्य में चाहे लोकगीत हों चाहे कहानियाँ, प्रबन्ध गीत हों चाहे लघु कथाएँ—सास को सर्वत्र कठोर शासिका रूप में ही चित्रित किया गया है। बहू को वह निरन्तर कष्ट देती है। सास का बहू के प्रति शाश्वत विरोध सा दिखलाई पड़ता है उसका मनोवैज्ञानिक कारण यह है कि माता अपने पुत्र के लिए अनेक कष्ट सहती है पर जब वह युवा होता है तो पुत्र प्रेम की अधिकारिणी बहू बन जाती है। फलस्वरूप पुत्र से माता को उपेक्षित होना पड़ता है। माता सारा आक्रोश बहू पर प्रकट करने लगती है। इस विरोध का एक कारण और भी है वह है अवस्था भेद का। वृद्धाओं और युवतियों के विचार एक दूसरे से सामंजस्य नहीं खाते और विरोध तीव्र से तीव्रतर हो जाता है। सास बहू से दिन रात काम कराती है। उसे एक क्षण के लिए भी विश्राम नहीं लेने देती। कूटने-पीसने के लिए मनों अनाज दे देती है और माजने के लिए ढेरों बरतन। जब बहू इतना सारा काम नहीं कर पाती तो फिर सास डंडा भी चलाती है। खाने को भी नहीं देती—

'सासु तो बिरना मोरे अइसी निरदइनि सोउन फल ना देय।
रंधी मइरिया सींके धरीं प रोटी प नून न देय॥'

बहुत दिन परदेश रहने के पश्चात पति जब घर आता है तो अपनी पत्नी के प्रेम और उसकी पवित्रता पर उसे पूरा विश्वास होता है। सास को इस समय बहू को सताने का अवसर मिलता है। वह पुत्र को बतलाती है कि उसकी पत्नी चरित्र भ्रष्टा है। अतः उसकी 'किरिया'[1] लेनी चाहिए। पति ऐसी स्थिति में पत्नी की परीक्षा लेने के विवश हो जाता है। इन भावों को लेकर जो गीत बने हैं उनका विवरण क्रिरिया शीर्षक से आगे दिया जाएगा।

सास बहू की भावनाओं को बात बात में ठेस पहुँचाती है

बहू द्वारा छोटे से छोटे अपराध पर सास बहुत अधिक क्रुद्ध हो जाती है और बहू को गाली देना आरम्भ कर देती है। ये गालियाँ उसी तक सीमित रह तब तो सम्भवतः उन्हें बहू सहन भी कर ले, पर जब सास बहू के माता पिता भाइयों को कोसने लगती है तो उसके धैर्य का बाँध टूट जाता है और वह भी सास की उपेक्षा करने लगती है। जब नैहर से भाई आता है तो सास नहीं चाहती

---

1 एक विशेष प्रकार से परीक्षा लेने की पद्धति।

कि उसे अच्छा भोजन दिया जाए पर वह अपने भाई को अच्छे से अच्छा भोजन कराती है।

वह भी सास से बदला लेती है

मामा यदयपि बहू सास को मार-पीट तो नहीं सकती, क्योंकि उसे इस बात का भय रहता है कि ऐसा होने पर पति भी उसका पक्ष न लेगा वरन उल्टे पिटाई ही होगी। अतः वह अपने पति को सास के विरुद्ध भड़काया करती है और फलस्वरूप माता से पुत्र का विरोध उग्र रूप धारण कर लेता है। पुत्र जन्म होने पर बहू सास से बदला लेना चाहती है। इस अवसर पर भी वह सास को कुछ नहीं देना चाहती। अतः अपने पति को समझाती हुई कहती है—

'हम तो अकेला सइयाँ सब न लुटाय दीजो।
सास जो आर्में सइयाँ द्वारे ते लउटाय दीजो।
सास को नेग मोरी अम्मा ते कराय लीजो।'

एक ओर तो माता पुत्र पर एकाधिकार चाहती है दूसरी ओर पत्नी पति पर। चोटें दोनों ओर से बराबर हुआ करती हैं। इसके साथ ही गृह प्रबन्ध एवं उसके स्वामित्व का भी ऐसा क्षेत्र है जिसमें दोनों महत्वाकांक्षिणी होती हैं और इसीलिए दोनों के सम्बन्ध अच्छे हो ही कम सकते हैं? सास बहू के इस प्रसंग में लोक साहित्य में तो ऐसा ही उल्लेख मिलता है पर यथार्थ रूप में कनौजी समाज में इन दोनों का सम्बन्ध इतना कटु नहीं होता। वास्तविक जीवन में तो इनमें भी प्रेम और आदर का नितान्त अभाव नहीं है।

ननद भाभी

भाई अपनी बहन को बहुत अधिक स्नेह करता है और इसीलिए उसके सुख एवं सुविधा के लिए वह सतत प्रयत्नशील रहता है। कनौजी लोक साहित्य में थोड़े से ऐसे प्रसंग आते हैं जिनमें यह दिखलाया गया है कि भाई के समान भाभी भी अपनी ननद को स्नेह करती है। ननद की विदा के अवसर पर भाभी के हृदय का बाँध स्नेहाधिक्य के कारण टूट जाता है—

'भीतर से अम्मा रोमें पगड़िआ ते आँसू पोंछ्‌ इँ हो।
मोरी बहिनी चली परदेस पीठि मोरा सूनी भई हो।
ओबरी ते भउजी जो रोमें चुनरिआ में आँसू पोंछइ हो।
एहा मोरी नन्द चली परदेस रसुइआँ मोरी सूनी हो।

एक अन्य गीत में एक उत्सव पर ननद के आने से भाभी प्रसन्न होती है और आदरपूर्वक कहती है—

'आवो ननदी गुसाइन पाय तुम्हरे लागइँ हों ।
बइठो मास मडोआ कलस मेरो गोठो हो ॥'

इन कुछ गीतो को छोडकर प्राय कनौजी लोक साहित्य के सभी प्रकारो म ननद और भाभी का वसा ही विरोध व्यक्त किया गया है जसा कि सास बहू का। ननद अपनी माता की भाभी को कष्ट देने म सहायता प्रदान करती है। एक बार सास चाहे बहू को क्षमा भी कर द पर ननद वहा मानने की। उधर भाभी भी ननद की उपेक्षा करती है। जब ननद की विदा होती है तो परिवार के सभी सदस्य तो रोते हैं, पर भाभी मन ही मन प्रसन्न होती है और कभी-कभी इस प्रसन्नता को व्यक्त भी कर देती है। उसके हृदय को कठोर कहा गया है। माता तो पुत्री से 'नित उठि आने के लिए कहती है पर भाभी का कहना है कि आने का काम ही क्या ?

ननद निर्मम आलोचक के रूप में

कनौजी लोक साहित्य मे ननद की जबान' भाभी की आलोचना करने म बहुत तेज' होती है। भाभी के प्रत्येक काम मे वह दोष निकालती ह। कभी तो कहती है कि उसे खाना बनाना नहीं आता और कभी कहती है कि उसे बात करना भी नही आता। बात बात पर भाभी को 'शाही हुक्म' देती है और यदि उसका पालन न हुआ तो भाभी के माता पिता और भाइयो को कोसने लगती ह। भाभी भी बदला लेती है। उसे कभी अपने घर बुलाती ही नही।

एक गीत म सावन के महीने म भाभी झूला झूलने जाना चाहती है पर ननद उसे अनेक काय करने की आज्ञा देती है। जब व काय पूरे हो जाते हैं तो अन्त म चक्की पीसने के लिए जतसार[1] भेज देती है। और वही उसे मरवा डालती है।

चुगली खाने वाली ननद

एक लोकगीत म ननद भाभी पानी भरने के लिए जाती है। ननद सीता से अनुरोध करती है कि वह रावण का चित्र बनाए। सीता रावण का चित्र बनाती है। उधर से राम आकर उसे देखते हैं तो बहन चुगली खाती है। वह भाभी के चरित्र की भ्रष्टता का ध्वनित करती हुई कहती है कि सीता तुम्हारे शत्रु का चित्र बनाती है। सीता को राम वनवास दे देते हैं।[2] ननद के इस व्यवहार को देखकर कहा जा सकता है कि मानव स्वभाव भी बडा विचित्र ह। भाई से इतना प्रेम रखने वाली बहन ननद के रूप म भावज से इतना द्वेष क्यो रखती है ? और वही खुद कुछ वधू बनकर फिर अपनी ननद की शिकायत करेगी इससे कुछ शिक्षा क्या नहीं मिलती ?

---

१ यत्रशाला का जतसार विकसित रूप है।

२ सीता वनवास की लोककवि की यह मौलिक कल्पना ह परिनिष्ठित साहित्य म ऐसी कहीं भी कल्पना नहीं की गई ह।

ससुर बहू

कनौजी लोकाचार में ससुर को अपनी बहू को पुत्री सदृश मानना चाहिए। राम कथा से सम्बद्ध लोक साहित्य में बहू अपने ससुर को पिता और दशरथ सीता को आत्मजा के रूप में ही मानते हैं। वनवास के समय दशरथ को राम-लक्ष्मण के लिए ही दुःख नहीं है वरन सीता के कष्टों की कल्पना से भी वे व्याकुल हो उठते हैं। इन भावों को लेकर बहुत कम लोक-साहित्य मिलता है। अधिकांश सामग्री तो यही व्यक्त करती है कि ससुर बहू को पीटता है उससे बहुत अधिक काम लेता है। विदा के लिए आने पर उसके भाई यदि पर्याप्त द्रव्य न लाएँ वह बहू को भेजता भी नहीं तथा उसके भाइयों का अपमान करता है। माता पिता की निन्दा करना मानो उसका स्वभाव ही है। ससुर के इस व्यवहार से बहू की आत्मा कचोट-कचोट जाती है।

कहीं-कहीं कनौजी लोक साहित्य में ससुर की बहू के प्रति कामुकता का वर्णन भी मिलता है। एक स्थल पर तो बहू के प्रति आकर्षण का भी संकेत मिलता है—

> बेला फूलो आधी रात गजरा मैं कौ के गरे डारौं।
> जो गजरा मैं ससुरा के डारौं तो सासू को दुख होय।
> गजरा मैं कौ के गरे डारौं।

पर इस प्रकार के प्रसंगों के उल्लेख कनौजी लोकसाहित्य में नगण्य ही हैं।

जेठ-लहुरी

व्यवहार रूप में तो कनौजी क्षेत्र में जेठ को ससुर के समान आदरणीय माना जाता है। पर्दे की प्रथा के कारण लहुरी जेठ के सामने आती तक नहीं वार्तालाप करना तो दूर की बात है। अन्य बोलियों[१] के प्रबन्ध गीतों के सदृश ही कनौजी प्रबन्ध गीतों में भी यत्र-तत्र जेठ के लहुरी पर आसक्त होने के प्रसंग दृष्टिगत होते हैं। जेठ स्त्री के पति को अनेक प्रकार के प्रलोभन देता है पर लहुरी अपने सतीत्व का परित्याग नहीं करती। कामुकता-वश जेठ अपने भाई को मार डालता है और फिर लहुरी से प्रस्ताव करता है कि वह उसे पति के रूप में स्वीकार कर ले। पर वह यह न स्वीकार करके चिता में जल जाना अधिक श्रेयस्कर मानती है। कुछ ऐसे गीत भी मिलते हैं जिनमें लहुरी भी जेठ के प्रति आकृष्ट दिखाई पड़ती है। ससुर बहू के प्रसंग में जिस गीत का उद्धरण किया गया है उसी में लहुरी कहती है—

> जो गजरा मैं जेठा गरे डारौं तो जिठनिया को दुख होय।
> गजरा मैं कौ के गरे डारौं।

जिन सम्बन्धों को ज्ञान के परिणाम में अनुचित कहा जाता है वस्तुतः वे

---

१ अवधी भोजपुरी

सम्बन्ध यहाँ की उस आदिम प्रवृत्ति के सूचक हैं जिनमें वासना में बन्धन अपेक्षाकृत शिथिल थे।

जिन पारिवारिक सम्बन्धों का उल्लेख किया जा चुका है उनके अतिरिक्त 'आजा आजी'[1] और काका काकी'[2] भी अपने परिवार में बालक के जन्म पर प्रसन्न होते हुए तथा वस्त्राभरण लुटाते हुए दिखाए जाते हैं। कन्या के विवाह में ये सभी जो भरकर दहेज देते हैं। मामा भी अपनी भांजी के विवाह में अपनी बहन के लिए 'पियरी' तथा भांजी के लिए दहेज की सामग्री लाता है। विविध संस्कारों के अनुष्ठान में बुआ फूफा भी भाग के अनेक कष्टों को सहन करके आते हैं। वे क्यों न आएँ उन्हें बहुत सा द्रव्य भी तो प्राप्त होगा। आजा आजी, काका काकी', बुआ फूफा आदि के सम्बन्ध कनौजी लोकगीतों में मधुरता उत्पन्न करने वाले होते हैं। विविध उत्सवों में इनका उपस्थित होना आनन्द मंगल की वृद्धि करने वाला होता है।

कनौजी लोक साहित्य में देवरानी-जेठानी का एक और सम्बन्ध है जिसका प्रचुर मात्रा में उल्लेख लोकगीतों में तो नहीं पर लोक कथाओं में होता है। देवरानी जेठानी 'गोटें' खेलती हैं। जब उनमें कोई हारने लगती है तभी वह व्यंग्य-बाण चलाती है। परस्पर आलोचना प्रारम्भ हो जाती है और जिसका अन्त बड़ा कटु होता है। व्रत कथाओं विशेष रूप से सकट चौथ की कथाओं में देवरानी को निर्धन और जेठानी को धनी दिखाया जाता है। देवरानी निर्धनता के कारण जेठानी के यहाँ अनाज कूटती पीसती है और पारिश्रमिक के रूप में कुछ कन'[3] और एक लोटा मट्ठा मिल जाता है। वह उसी में गुजर करती है। 'सकट' उस पर प्रसन्न होती हैं और उसे मालामाल कर देती हैं। धन को समेट कर रखने में विलम्ब होता है तो जेठानी गाली देती है और डांट कर कहती है कि तुमने आने में देर क्यों की?'[4] देवरानी जेठानी के परस्पर अन्य व्यवहारों को देखकर पता चलता है कि इनमें परस्पर ईर्ष्या द्वेष, कलह और एक दूसरे को नीचा दिखाने की प्रवृत्ति रहती है। मधुरता कहीं भी दिखाई ही नहीं पड़ती।

इन विविध पारिवारिक सम्बन्धों के विश्लेषण के पश्चात यह निष्कर्ष प्रस्तुत किया जा सकता है कि इनमें आदर्श एवं यथार्थ दोनों रूपों को अभिव्यक्त किया गया है। अधिकांश सम्बन्ध ऐसे हैं जिनमें प्रेम स्नेह आदर श्रद्धा सहनशीलता क्षमा सहानुभूति तथा त्याग का साम्राज्य है। कुछ सम्बन्ध ऐसे अवश्य हैं जो कटुता ईर्ष्या द्वेष घृणा आदि विकारों से ग्रस्त हैं और कुछ में तो काम वासना इतनी अधिक उभर आई है कि नैतिक दृष्टि से उन सम्बन्धों को सर्वथा अनुचित कहा जाएगा। इस सन्दर्भ में

---

१ पितामह पितामही।
२ चाचा चाची।
३ टूटे हुए चावल।
४ लेखक के अप्रकाशित निजी लोककथा संग्रह से।

लोक साहित्य अध्येता के सामने समस्या खड़ी हो जाती है कि वह अपना निर्णय किस रूप में दे। उसके लिए यही श्रेयस्कर है कि वह नैतिक दृष्टि के स्थान पर वैज्ञानिक दृष्टि का अनुसरण करे और इस बात का लक्ष्य में रखे कि आधुनिक समाज जिन सम्बन्धों को अनुचित ठहराता है वस्तुतः उन्हीं में तो आदिम वृत्तियाँ छिपी पड़ी हैं और इन्हीं के कारण समाज शास्त्र एवं नृविज्ञान की सामग्री के रहस्य का उद्घाटन किया जा सकता है।

सामाजिक जीवन का चित्रण

समाज में नारी का स्थान

संसार के अधिकांश समाजों की भाँति कनौजी क्षेत्र का समाज भी पितृ प्रधान परिवारों में संगठित हुआ है। परिणाम स्वरूप समाज पर पुरुष का ही प्रभुत्व रहा है। कभी तो पुरुष ने स्त्री को देवी की भाँति पूज्य माना है—कन्या को शुद्धता और पवित्रता का प्रतीक माना है—कन्यादान को सर्वश्रेष्ठ दान माना है—माता में देवत्व के दर्शन किए हैं और कभी विभिन्न क्षणों में उसे मायाविनी, कुलटा और दुर्गुणों की खानि कहने में भी संकोच नहीं किया है। नारी के सतीत्व, कन्या के उत्पन्न होने से आपत्तियों का प्रारम्भ, ससुराल में मिलने वाले कष्ट, स्त्रियों के अनेक दुर्गुण, वन्ध्यात्व, वैधव्य—इन सभी के सम्बन्ध में समाज ने कुछ धारणाएँ बना ली हैं। इन धारणाओं के प्रति स्त्रियों की बड़ी ही सबल प्रतिक्रियाएँ भी हुई हैं। ये प्रतिक्रियाएँ अपने अनेक रूपों में इसलिए और भी अधिक उभर आई हैं क्योंकि लोक साहित्य के अधिकांश अंश का निर्माण और उसकी परम्परा को आगे चलाने का कार्य प्रायः स्त्रियों द्वारा ही हुआ है। स्त्री के विषय में समाज की धारणाओं और स्त्री की उसके प्रति प्रतिक्रियाओं के सन्दर्भ में पारिवारिक जीवन से पृथक रूप में समाज में नारी के स्थान के विवेचन की आवश्यकता का अनुभव किया गया।

कनौजी प्रदेश में शास्त्र एवं लोकाचार में नारी को बहुत अधिक सम्मान दिया गया है। पुत्री, बहन, पत्नी, माता—व्यक्तिगत रूप में सभी को पूज्य बतलाया गया है। वैदिक काल में तो स्त्रियाँ मन्त्र द्रष्टा तक थीं। उनके बिना कोई यज्ञानुष्ठान पूरा ही नहीं होता था। नारी के सम्मान की भारतीय साहित्य में सर्वत्र चर्चा हुई है और शास्त्रकार मनु ने यहाँ तक कह दिया है कि जिस कुल में नारियों की पूजा होती है उसमें देवता रमण करते हैं और जहाँ उनकी पूजा नहीं होती वे कुल शीघ्र ही नष्ट हो जाते हैं।[1] राम ने भी जब अश्वमेध किया था तो सीता की अनुपस्थिति में उनकी स्वर्णप्रतिमा रखी गई थी। आज भी कनौजी समाज में जब कोई धार्मिक अनुष्ठान होता है स्त्री की उपस्थिति अनिवार्य मानी जाती है। पर सम्भवतः अब यह केवल लकीर पीटने के लिए ही प्रथा मात्र रह गई है इसके पीछे जो आदर की भावना थी वह समाप्त हो गई है।

---

१ यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता ।
यत्रनार्यस्तु न पूज्यन्ते तत्कुलं आशु नश्यति ॥

कनौजी लोक साहित्य म नारी की स्थिति के जो वणन मिलते हैं उनको उभय पक्षी कहा जा सकता है। कहीं कहीं तो नारी क. सती साध्वी परिवार के सभी सदस्यों की प्रिय सबस आदर पाने वाली, सभ्य, सुशिक्षित चित्रकला मे प्रवीण एव वीरता की अधिष्ठात्री देवी के रूप म चित्रित किया गया है। दूसरी ओर कहीं उसे माता पिता के लिए भार, भाभी के लिए आपत्ति पति सास ससुर से अपमानिता, दुश्चरित्र झगडने वाली, अधिक भोजन करने वाली अनक अवगुणों की खान, वन्ध्यात्व के अभिशाप से दु खी एव बधन की ज्वाला म दग्ध होते हुए दिखाया गया है। नारी क इस द्विविध वर्णन को उसकी स्थिति का शुक्ल पक्ष एव कृष्ण-पक्ष कहा जा सकता है।

कनौजी लोक साहित्य में नारी की स्थिति का शुक्ल-पक्ष

कनौजी लोक साहित्य म अनेक स्थलो पर स्त्री के सम्मान की चचा की गई है। नारी निन्दा को अनेक प्रकारों स निषिद्ध करके लोक मानस ने अपनी श्रद्धा समन्वित भावना को नारी क प्रति व्यक्त किया है—

'नारी निन्दा जिनि कोई करियो नारी है नर की खान।
नारी से नर अइसे उपजे जसे ध्रुव पहिलाद समान।

कुछ कनौजी लोकगीतो म स्त्री सास की आखो का तारा पति क लिए चन्द्र ज्योत्स्ना तथा ससुर के लिए सुविधाओं की खान कही गई है। उस पर सभी ओर से सम्मान की वर्षा होती है। इन गीतो म स्त्री के जिस रूप का वणन किया गया है वह अत्यन्त उज्ज्वल एव मनमोहक है। इसम दाम्पत्य जीवन का जीता जागता चित्रण हुआ है। जीवन-नौका पर बठ कर पति-पत्नी पतवार सभालत हैं आंधी आन पर उसका सामना करते हैं दु ख के समय साथ ही साथ आँसू बहाते हैं और हर्ष के समय साथ-साथ पुलकित होते हैं। विवाह क समय ससुर और सास हर्ष एव उत्साह के साथ बहू की प्रतीक्षा करते हैं और उससे बहुत अधिक स्नेह करते हैं।

कनौजी लोक-साहित्य में नारी का आदर्श सतीत्व

सती शब्द का अथ है—पवित्र चरित्र वाली, पतिव्रता, अनक प्रलोभनो के होने पर भी पति से एकनिष्ठ प्रेम करने वाली तथा पति क निधन पर अग्नि प्रवेश करके या किसी अन्य साधन द्वारा प्राणों का परित्याग करने वाली स्त्री। कनौजी लोक साहित्य म प्रयुक्त सती शब्द इन्हीं अर्थों की अभिव्यक्ति करता है। अमुक स्त्री सती है इसका अथ हुआ वह सच्चरित्र है। अमुक स्त्री सती हो गई का आशय है कि उसने अपने पति क निधन पर अपने प्राण दे दिए। सामान्य रूप में सती का अथ पति के साथ जल जाना ही लगाया जाता है। अत इसके इन अर्थों की ओर सकेत करने की आवश्यकता का अनुभव किया गया है।

हमारे देश की स्त्री अपने सतीत्व के लिए विश्वविख्यात है। उसके पातिव्रत

में किसी देश की स्त्री होड़ नहीं कर सकती। कनौजी लोक साहित्य में स्त्री को पति के प्रति एकनिष्ठ दिखाया गया है। उसको चाहे जो भी स्थिति हो, चाहे जितना कष्ट उसे क्यों न हो, परन्तु अपने धर्म से वह कभी भी विचलित होती हुई दिखाई नहीं पड़ती। स्थान स्थान पर यह दिखाया गया है कि पति अत्याचार करे फिर भी अपने धर्म से वह नहीं डिगती। सतीत्व की रक्षा के लिए वह कष्टों को हँसते हँसते सहती है। विविध विषम परिस्थितियों में पड़कर कामातुर कामुकों, आततायी मुगलों को छठी का दूध याद दिला देती है। धन की अपार राशि उसके सतीत्व को नहीं खरीद सकती। लोक साहित्य में फिर कनौजी ललनाओं के सतीत्व का जो आदर्श प्रस्तुत किया गया है वह किसी भी देश के लोक-साहित्य में दुष्प्राप्य है।

धनदेवा पवारा में बंगाल के राजा गजाधर की पुत्री पद्मिनी का जब विवाह हो रहा था तो महल में सब नागकुमारियों ने गारीलाल को डस लिया जिससे कि उसकी मृत्यु हो गई। ऐसी स्थिति में पद्मिनी धनदेवा बना कर उसमें अपने पति के शव को रखकर गंगा मार्ग से कुछ समुद्र की ओर चल दी। वहाँ पर उसने अपने पति को जिला लिया। पर बंगाल में जादू का बहुत प्रचार था अतः अनेक जादूगर नियों ने उसके पति को भेड़ा, गधा, कुत्ता आदि बना लिया। पद्मिनी ने अनेक युक्तियों से उसे फिर मनुष्य बनाया। जब वह देश को फिर जा रही थी तो मार्ग में अनेक राजाओं ने उसे अनेक प्रलोभन दिए तथा जब जादूगरनियों ने उसके पति को बैल आदि बना दिया था तो उसे बहुत प्रलोभन दिए गए पर उसने अपने सतीत्व को नहीं छोड़ा।

एक अन्य पवारा 'ऊमन्द को गौना' में भी ऊमन्द की पत्नी ने बड़ी वीरता से शत्रुओं का सामना किया। जब ऊमन्द की मृत्यु हो गई तो शत्रुओं ने अनुचित प्रस्ताव किया पर उसने उन्हें बुरी तरह फटकारा। वह अपने पति को सम्बोधन करके कहती है कि हे पति एक दिन तो वह था जब हमारी तुम्हारी गाँठ जुड़ी थी, एक दिन वह था जब तुम मेरा गौना कराने आए थे और एक दिन यह आया जबकि मैं तुम्हारे साथ सती हो जाऊँगी।'

जिस प्रकार अवधी भोजपुरी गीतों में 'कुसुमा देवी' का वर्णन मिलता है उसी प्रकार से कुछ भाषा तथा विषय के हेर फेर के साथ कनौजी में भी मिलता है। कुसुमा देवी के घर को मुगल घेर लेते हैं और घर वालों को कुसुमा को दे देने का आदेश देते हैं। मुगल इतनी अधिक संख्या में हैं कि प्रतिरोध करने में कुसुमा के पिता भाइयों आदि के मौत के घाट उतर जाने की आशंका है। पिता भाई लड़ने को तैयार होते हैं पर कुसुमा अपने बलिदान के प्रस्ताव द्वारा पिता तथा भाइयों को बचा लेती है। वह मुगलों के साथ चल देती है। चलने के कुछ देर बाद वह मुगलों से अनुरोध करती है

---

१ इकदिन पिआ मेरे वो हुतो जब पलरस परी हुती गाँठ।
इकदिन पिआ मेरे वो हुतो जब लैन गवन गए मोर।
इकदिन पिआ जो भओ जब हम जरें तुम्हारे संग।'

कि मुझे पिता के तालाब म एक बार पानी पी लने दो। बहुत आग्रह करने पर मुगल उसे तालाब मे पानी पीने की आज्ञा दे देत है और वह उसमे कूद कर अपने प्राण दे देती है। इस प्रकार वह अपने पिता तथा भाइयो के प्राणो की भी रक्षा कर लती है और अपन सतीत्व की भी।[1]

कनौजी लाक साहित्य मे वर्णित नारियो को कभी कभी कामुक लोगो का सामना भी करना पडता है। एक सावन गीत मे स्त्री अपन नहर जा रही है। माग म नदी पडी। वह नाविक से नदी पार उतार 'देने के लिए याचना करती है और कहती है कि वक्ष के नीचे मेरी डोली भीग रही है। नाविक पूछता है कि उतराई क्या दागी ? हाथ की मुदरी और गले का हार। नाविक पूछता है कि 'ह रानी, तुम्हारी मुदरी भाड म भोक दूँ और हार को समुद्र म बहा दू। तुम्हार पास दा नीबू हैं उसम से एक मुझे चखाओ। वह कहती है ह नाविक! मरे नीबू तो विप क भरे है, उन्हें खाकर तुम मर जाओगे। रानी, यदि नीबू विप से भरे हैं तो तुम्हार हरि कसे जीवित रहत है[2]।' बात बढती है और स्त्री नदी को तरकर पार करते हुए कहती है कि लौटत समय ह नाविक, तेरी खाल निकलवाकर उसम भूसा भरवा दूगी।'

इसी प्रकार अनक एसे स्थल हैं जिनम स्त्रिया कभी राजपूतो को डाट देती हैं कभी प्रलोभन देने वाल कामियो से कहती हैं कि तुम्हारे जस तो हमारे ससुर के नौकर हैं। एक लोकगीत म जयसिंह नामक व्यक्ति लाची नामक दीन स्त्री स अनुचित प्रस्ताव करता है। उसको वह खरा जवाब दती है। वह कहती ह कि तुम मुझे अपने धन एव एश्वय क प्रलोभन मे नहीं डाल सकत। सौन्दय म तुम मर पति क सम्मुख तुच्छ हो। तुम यहा स भाग जाओ। जयसिंह अपना सा मुँह लकर वापस चले जात हैं।

अनक लाकगीत एव कहानिया हैं जिनम पति बारह वप के बाद परदश से आता है और छद्मवेश म अपनी पत्नी की परीक्षा लता है। वह कहता है कि तुम्हारा पति बहुत दिन हुए बाहर गय है। उसन दूसरी स्त्री से विवाह कर लिया है और अब वह तुम्हारे पास नही आ सकता। मैं तुम्ह अच्छे अच्छे कपड और भोजन दूगा

---

१ लखक क अप्रकाशित लाकगीत सग्रह से।

२ मलहा खेइ नवइया उतारो पार डोला मेरो भीज बिरिछतर।
का जो दिओ रनिआ उिवाई ? दोहैं मलहा हात मूदरो।
अउर गरे को हार डोला मेरो भाज बिरिछतर।
भार न भोंकें रानी मूदरी समुद बहाम तरो हार।
तुम्हर तीर रानो दुइ निबुला उइ म ते एक चिखावो।
निबुला तो मर मलहा बिस भरे खाइ के तुम मरि जाव।
जो रानी निबुला बिस भर तुम्हरे हरि कइसे जियैं।

और अपना पगनी को पेंच म रग्गू गा। रत्ना उस फटकारती है और कहती है कि तुम तो मेर पति क सम्मुख प्रत्यक्ष बात म तुच्छ हो। जब पति अपना छद्मवेश उतार देता है तो उस पहचान करक, अपने द्वारा पति के अपमान किए जान क कारण तथा आश्चर्य एव लज्जा स मूछित हो जाती है।[1]

अंग्रेजी शासन काल म राजा राममोहन राय क प्रयत्न स हमारे देश म सती प्रथा समाप्त हो गई। परन्तु अन्य बोलियों क लोक साहित्य की भाँति कनौजी लोक साहित्य म अब भी ऐसे अनेक प्रसग आते हैं जिनम अनेक स्त्रियाँ अपने पति के शव के साथ अपने 'सत' से सती हो गई। इन लोकगीतों तथा लोक कहानियों म वर्णन मिलता है कि चिता म आग नहीं लगाई जाती सती की उगली क अचल से अग्नि प्रज्वलित होती है और उसी स वह भस्म हो जाती है।

लोक कहानियों या लोकगीतों म घटनाओं के घटित होन के समय की ओर जिन व्यक्तियों द्वारा घटनाएँ होती हैं उनके नामो का कोई महत्व नहीं दिया जाता है। यही कारण है कि सावन तथा चक्की क अनेक गीतों म नाम और समय न देकर केवल एस उल्लेख मिलते हैं कि 'जेठ' न लहुरी पर मुग्ध होकर अपन छोटे भाई को मार डाला या देवर न भाभी पर मुग्ध होकर बड़े भाई को मार डाला और भाभी को अपनी पत्नी बनाना चाहा। पर वह चातुर्य स उसे चकमा देती है और कहती है कि पहले मुझे पति का दाह सस्कार कर लेने दो और उसके लिए तुम आग ले आओ। वह आग लेने जाता है और इसी बीच म वह अपने पति को सम्बोधित करती हुई कहती है कि 'ह स्वामी! यदि तुम सच्चे पति हो तो मेरे आचल म आग फूट उठ।'[2] वहीं उसी पत्नी अपने सती व की दुहाई देती है और उसके अचल में आग प्रज्वलित हो जाती है। थोड़े दिन हुए फर्रुखाबाद क पास इकनौरा ग्राम म एक स्त्री सती हो गई थी उसकी भी उल्लेख कुछ लोकगीतों म मिलता है।

कनौजी लोक-जीवन म सती भावना' ने लोक मानस को इतना अधिक प्रभावित किया है कि यहा की लोक वाणी म भी वह प्रभाव मुखरित हुआ है। यहाँ के लोक साहित्य म सती भावना का आरोप पशुओं तक पर किया गया है। हरिणी अपने हरिण की खाल एव हड्डियों को शिकारी म याचना करती है क्योंकि उसे उस खाल हड्डियों के साथ सती होना है।[3]

---

१ अति धनि मुरछि परी।

२ जाव अब दिवरा आगी लइआवो भाभी के राग समदवों हम हो।
जो तुम होव सामी साँच बिहउवा अचरा आगी जरि उठना हो।
अचरा भभकि उठा सती ना भसम भई दिउरा भीमें लाउ हाथ ना रे।

३ ओ मारे बिरन बहिलिआ खलरिया हाड़ दइ देव ना।
जहर्जी में गगा जू क तीर सती हुअना हुइओं रे।

कनौजी लोक-साहित्य में स्त्रियाँ परीक्षा में सती-साध्वी सिद्ध होती हैं

न केवल लोक साहित्य में ही वरन परिनिष्ठित साहित्य में भी स्त्री को अपने 'सतीत्व' की परीक्षा देने के उल्लेख मिलते हैं। लंका से लौटने के पश्चात सीता को भी अग्नि परीक्षा में अपने को शुद्ध प्रमाणित करना पड़ा था, इसकी चर्चा कनौज प्रदेश के समाज में भी होती है। कनौजी लोक साहित्य में न केवल सीता के शुद्धि करण के विवरण मिलते हैं वरन् अनाम लोगों के विषय में भी कहा जाता है कि पति बारह वर्ष पश्चात परदेश से वापस आता है और वह इस बात का प्रमाण चाहता है कि इन बारह वर्षों में वह पवित्र रही या नहीं? एतद् विवादास्पद विषय के निर्णय की एक ही कसौटी है और वह है 'किरिआ'। इसी के द्वारा वह अपनी पत्नी के चरित्र की परीक्षा करता है।

अलौकिक प्रमाण को 'दैविकी क्रिया' कहा जाता है। कालक्रम में दैवी शब्द छूट गया है और क्रिया विकसित होकर 'किरिआ' हो गया। वस्तुतः इस दैविकी क्रिया या दिव्य का प्रयोग सभी प्रकार के निर्णयों के लिए किया जाता है, पर इस का प्रयोग उस समय भी किया जा सकता है जब किसी स्त्री के चरित्र पर सन्देह हो। वस्तुतः किरिआ का प्रयोग लोक साहित्य में किसी अन्य अभियोग में न होकर स्त्री चरित्र की परीक्षा के लिए ही होता है।

कनौजी लोक साहित्य में जहाँ जहाँ किरिआ का वर्णन हुआ है वहाँ प्रायः लोहे की कड़ाही में खौलते हुए तेल में स्त्री का हाथ या पूरा शरीर डालना पड़ता है। यदि उसका हाथ या शरीर खौलते हुए तेल में नहीं जलता तो वह शुद्ध चरित्र वाली सिद्ध हो जाती है। कनौजी लोक साहित्य या जिन अन्य लोक साहित्यों में 'किरिआ' प्रसंग आता है सर्वत्र यही देखने को मिलता है कि स्त्री अपने को शुद्ध प्रमाणित कर देती है।

अधिकांश लोकगीतों में लोहे की कड़ाही का वर्णन मिलता है। स्त्री कहती हुई दिखलाई पड़ती है कि, हे लोहार, शीघ्र ही कड़ाही तैयार करो मुझे 'किरिआ' देनी है। एक लोकगीत में उल्लेख मिलता है कि जब बारह वर्ष पति परदेश रहकर लौटा तो ननद ने चुगली खाई और कहा कि भाभी का चरित्र सन्देहास्पद है इसकी 'किरिआ' होनी चाहिए। पति 'किरिआ' लेने को तैयार है और पत्नी पिछवाड़े रहने वाले लोहार से कड़ाही बनाने के लिए प्रार्थना कर रही है। घर के भाई तेली मेरे लिए तेल तैयार कर दो।' मेरे नैहर समाचार भेज दो कि उनकी पुत्री 'किरिआ' देगी।' भाई कहता है 'यदि बहन जीती तो नैहर लाऊँगा हारी तो वहीं अग्नि में उसे झोंक दूँगा। आग जल रही है और तेल भभक भभक कर उबल रहा है। बहिन किरिआ दे रही है। हे सूर्य ! यदि मैं सती हूँ तो मेरी पत रखो। जब बहन ने 'किरिआ' दी तो खौलता हुआ तेल शीतल जल हो गया। एक बार

हाथ डाला, दूसरी बार हाथ डाला, तीसरी बार पार उतर गई। कनौजी लोक-साहित्य के अन्य प्रकारों में भी अलौकिक कारणों से प्रमाणित पतिव्रत एवं सच्चरित्रता को अलौकिक तथा दिव्य कहा जा सकता है।

कनौजी लोक साहित्य में स्त्रियाँ पढ़ना लिखना जानती हैं

जब पति परदेश चला जाता है और उसके बहुत दिन तक वापस न आने के कारण पत्नी वियोग दुःख से पीड़ित होती है तो अपने पति के वापस आने के लिए पत्र लिखती है।[1] एक स्त्री अपने पति को पत्र लिखना चाहती है पर वह सोचती है कि किस वस्तु से कागज का काम लिया जाय और किससे मसि बनाऊँ और पत्र को लिखकर भेजूँ भी तो किसके हाथ? वह पत्र लिखकर भेजती है उसका पति उसे पढ़ता है और इतना अधिक प्रभावित होता है उस पत्र से कि तुरन्त वापस चला आता है।[3] कहीं कहीं यह भी उल्लेख मिलता है कि पत्नी ने पति के पास पत्र भेजा और उसने पत्र पढ़ा पर वह निर्मोही दुखी होने के स्थान पर मुस्कराने लगा। लोक साहित्य में स्त्रियों के पढ़े लिखे होने के प्रमाण केवल वियोगिनी नायिकाओं द्वारा लिखे जाने वाले पत्रों अथवा पति द्वारा भेजे जाने वाले पत्रों को पढ़ने के रूप में ही मिलते हैं। पढ़ने लिखने के सम्बन्ध में और किसी प्रकार का भी उल्लेख इसमें दृष्टिगोचर नहीं होता।

---

१ लेखक के अप्रकाशित लोकगीत संग्रह से।

२ सुना मेरे भैया बटोहिया लिखा दिहा जइबा रे।
पतिया को लिखी के बनाय तनक देहु भइया न रे।
आवी न निरमोहिया रउटि घर आवो न रे।
तरस नयनवा मोरे दरस देहु आवो न रे।

३ काए की कागद करों काए की मसि करों
काए की मसि करउ हो।
राजा के तरे जाय मोरी पतिया जो पतिया लिखि पठमों
जो पतिया लिखि पठमों हो।

रनिआ ने पाती लिखि पठई अरु राजा ने बाँची
अरि राजा ने बाँचा लो।
हा जनम नन रहे जब छुप औरु नहिं सूझ आंक नहिं सूझे हो।
जगे राजा रनिआँ पे आय धाय पनिआ मुँह लगो तो हो।

४ पनिआ तो लइके लाल पलन निरमोहिआ हैं रे।
पढ़त पढ़त मुसक्याय पीर नहिं जानें हैं रे।

कनौजी लोक साहित्य में स्त्रियाँ चित्र-कला प्रवीण भी हैं

अन्य बोलियों के लोक-साहित्य की भाँति ही कनौजी लोक साहित्य में भी स्त्रियों को चित्र कला प्रवीण दिखलाया गया है। एक लोक गीत में राम जब वर के रूप में जनकपुरी जाते हैं और जनक के घर पर 'भाँति' पर बने हुए चित्रों को देख कर आश्चर्यचकित हो जाते हैं। उनके मन में इस बात की जिज्ञासा होती है कि इन चित्रों को किसने बनाया है। इसीलिए वे इसका पता लगाते हैं। नाइन से उन्हें ज्ञात होता है कि चित्र बनाने वाली उनकी वधू सीता ही है।[1]

ननद भाभी के पारस्परिक सम्बन्ध का विश्लेषण करते समय यह बतलाया जा चुका है कि ननद ने सीता से रावण का चित्र बनाने का आग्रह किया। जब सीता ने उसका चित्र बनाया तो उसी समय राम आ गए।[2] लोकगीतों में सीता के अतिरिक्त बिना नाम वाली स्त्रियों को विविध प्रकार के चित्रित करते हुए दिखलाया गया है। एक गीत में उल्लेख है कि बहू बेटियाँ गृहस्वामिनी से पूछती हैं कि अमुक अमुक दृश्य को कहाँ कहाँ चित्रित किया जाय? बहू पूछती है—हे सासजी! कहाँ कमल पत्र को चित्रित करूँ और कहाँ बाँसों की बाड़ी को? सास ने कहा—हे बहू! एक ओर कमल पत्र और दूसरी ओर बाँसों की बाड़ी बनाओ। बहू ने पूछा—हे सास जी हंस-हंसिनी कहाँ लिखूँ? कहाँ बन के मोर और तोता मैना लिखूँ? कहाँ उड़ती हुई क्षेमकरी? सास ने कहा—केलि करते हुए तोता मैना चुँगती हुई गौरया बछड़े को दूध पिलाती हुई गाय, कलश लिए हुए दासी पुस्तक लिए हुए ब्राह्मण गाय दुहता हुआ अहीर का लड़का दही बेचती हुई अहीरनी की कन्या का चित्र बनाओ। आस पास फूली हुई लता और पान की लता भी बनाओ। गुच्छे के गुच्छे फली हुई इमली और पत्तों के बीच लगे हुए आमों को चित्रित करो। यही नया कोहबर है।[3]

उपर्युक्त उदाहरणों के अतिरिक्त हरछठ, करवाचौथ दीपावली, देवोत्थानी एकादशी होली, बरगदाही अमावस्या, नागपंचमी पर अनेक चित्र एवं चौक पूरे जाने का उल्लेख लोकगीतों एवं लोक कहानियों में मिलता है। इन प्रसंगों का अवलोकन करके यह कहा जा सकता है कि कनौजी लोक साहित्य में वर्णित स्त्रियाँ चित्रकला विदग्ध हैं।

---

१ को यह पुतरी उरेही है नाउनि हमते कहौ बुझाय।
 जउन रनिया तुम ब्याहन आए तिन यह पुतरी उरेह।
२ सीता समहैं की ओवरी लिपाई और रउना उरेहो।
 हात औ पाँव बनाय जो नना बनाए।
 तब आई गए सिरिराम अचर छोरि मूँदो।
३ लेखक के अप्रकाशित लोकगीत संग्रह से।

कन्या उत्पन्न होगी तो मैं अपने प्रियतम के साथ शय्या पर ही न सोती, परिणाम स्वरूप मुझे यह दिन ही देखने को न मिलता। एक कन्या अपने जन्म पर परिवार के अनेक सदस्यों की प्रतिक्रिया का वर्णन करती हुई कहती है कि जिस दिन मेरा जन्म हुआ उस वज्र की रात हुई 'आजी' रो रही हैं 'बाबुल' रो रहे हैं और 'आजा' चौपाल में रो रहे हैं।[1]

बाल्यावस्था में भी कन्या को विविध कष्ट मिलते हैं। भाई को अच्छा भोजन दिया जाता है और वह छाछ ही पाती है।[2] जब वह खेल खेलने जाती है और घर आने में विलम्ब हो जाता है तो परिवार के सभी लोग उसे दण्ड देने के लिए साँटें[3] निकालते हैं। वह पितामह पितामही माता पिता, चाचा, चाची, भाई, भाभी सभी से कहती है कि आप लोग हम साँटें क्यों दिखाते हैं। हम तो तुम्हारे आँगन की चिड़ियाँ हैं चुगते चुगते उड़ जाएँगी, हम तो तुम्हारी गोशाला की गायें हैं, जहाँ बाँध दोगे, चली जाएँगी।

कन्या के विवाह की कठिनाइयाँ

ज्यों ज्यों कन्या बढ़ती है त्यों-त्यों माता पिता की चिन्ता भी बढ़ने लगती है। वे कभी सुख की नींद नहीं सो पाते। पुत्री को पराये घर की 'धरोहर' समझा जाता है। जब तक उसे वापस न कर दिया जाए तब तक विश्राम कहाँ ?

पिता कहीं तो स्वयं अपनी पुत्री के लिए वर को खोजने के लिए जाता है और कहीं नाई ब्राह्मण भेज दिए जाते हैं। पिता वन वन भटकता हुआ सत्तू गुड़ से पेट भरता हुआ पैदल वर के यहाँ जाता है। वर कहाँ मिलेगा, यही एक बहुत बड़ी समस्या है। अनेक स्थानों पर जाकर उसे निराश होना पड़ता है। वर-पक्ष के लोग उससे बात भी नहीं करते और वह स्थान स्थान पर अपनी पगड़ी उतार कर वर के पिता आदि के पैरों पर रखता है पर वे विवाह के लिए तैयार नहीं होते कह देते हैं कि तुम हमारे साथ सम्बन्ध करने के योग्य ही नहीं हो। कहीं वह स्वयं भी सम्बन्ध करने के लिए उत्सुक नहीं होता क्योंकि अपनी कन्या के लिए उसे योग्य वर ही नहीं मिलता। कहीं कहीं यह भी दिखलाया गया है कि नाई ब्राह्मण ने विश्वासघात करके अनुपयुक्त वर के साथ विवाह सम्बन्ध तय कर दिया है और इस प्रकार उसकी पुत्री का भाग्य फूट गया है। पिता सदैव इस चिन्ता में रहता है कि पुत्री का जैसा वर पाने की इच्छा है वैसा वर मिलेगा कि नहीं। जब वह हर स्थान पर निराश होता

१ जा दिन भइआ मेरो जनम भओ है भई है बजुर की रानि रे।
आजिउ रोमैं बाबुलि रोमैं अजुलि रोमैं चउपारि रे।

२ भइय पिआओ दूध कटोरन हम को पिआई छाछ।

३ काहे मा काढी सांटुली काहे को बोले बोल रे।

है तो अन्त में अनजान स्थान पर भी पुत्री का विवाह तय कर देता है। एक स्थल पर पुत्री कहती है कि हे पिता! तुम सात गाँव की बाँदियों और भाइयों का भार सह सकते हो, केवल मेरा ही नहीं। इसी से तुम मुझे अनजान स्थान को ढकेल रहे हो। यदि तुम्हें पराये घर ही भेजना था तो फिर मुझे क्यों लाड़ प्यार किया? भाई से भी वह कहती है कि हे भाई! मेरी डोली छोड़ के मुझे ससुराल जाने दो। सात गाँव बाँदियों का भार तुम सहोगे केवल एक मेरा ही नहीं।[1]

दहेज की समस्या स्त्री जीवन को और भी अधिक दुखमय बना देता है

कन्नौजी लोक साहित्य में वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष की सारी सम्पत्ति हड़प करके भी सन्तुष्ट नहीं होते। माता पिता दोनों में पुत्री के जन्म के होने पर इसी चिन्ता के कारण प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ते और मन में विनय करते हैं कि हम जैसे लोगों को पुत्री न मिले। पुत्री का मिलना तो तभी ठीक है जब ईश्वर घर को धन से भरपूर कर दे।[2] माता पिता अपनी सामर्थ्य से अधिक दहेज देते हैं। अधिकांश को तो ऋण लेकर इस अनुष्ठान को करना पड़ता है। पुत्री के विवाह के बाद माता का घर ही खाली हो जाता, घर भी खाली हो जाता है।[3]

दहेज न मिलने पर स्त्री को ससुराल में अनेक कष्ट दिए जाते हैं। उसे अच्छा भोजन नहीं मिलता। चारपाई न देकर उसे भूमि पर सुलाया जाता है, पहनने के लिए मैल-कुचैले एवं फटे कपड़े दिए जाते हैं। सड़ा अनाज कुटाया पिसाया जाता है। इसीलिए वह सदैव यही कामना करती है कि उसके भाई तथा नैहर के अन्य लोग बहुत सा धन तथा अन्य वस्तुएँ उसके लिए लाएँ और परिणामस्वरूप उसका सम्मान बढ़े। वह कभी-कभी कहती हुई दिखाई पड़ती है कि उसके भाई आदि उसके लिए बहुत कुछ लाए हैं।[4] पर स्थिति यदि विपरीत हुई तो फिर सास तो भाई से बोलती भी नहीं है।[5] स्त्री अपने मायके नहीं भेजी जाती और जब उसकी माता बहुत कुछ सामग्री लेकर भाई को विदा के लिए भेजती है तो सास ननद प्रसन्न हो जाती हैं[6] तथा ससुर पति—सभी उसके भाई का सम्मान करते हैं और उसको विदा

१ छाँड़ि देव भइया दुनिया हमारी जानि देउ ससुरारि।
सात बदिया को बोझ सहिओ तुम एक हमाराई नाहिं।

२ गंगा पाठ बाबा सुरज मनाय मोर पूत धिरिआ न देय।
धिरिआ जनम तब दीजो बिधाता जब घर सम्पत होय॥
मेरा घर जो रिता अटपट री मेरी बिटिआ जमइआ लइ गओ।

४ काहरी लइआए बाबुल मोर मन्या लइ आए दादुल मोर
चन्दन चुनरिआ बीरन मोर।

५ बीरन आए कुछू नहिं लाए सास मुखो नहिं बात जी।

६ बीर आए सब कुछ लाए सासु ननद हँसि बोलीं जी।

कर देते हैं। इस प्रकार दहेज न लाने पर स्त्री को ससुराल में हर प्रकार से पीडित किया जाता है।

स्त्री को ससुराल में बात बात पर पीडित किया जाता है

जैसा कि उल्लेख किया जा चुका है कि स्त्री को ससुराल में खान पीन को अच्छा नहीं दिया जाता और उसे अच्छे कपडे भी पहनने को नही दिए जाते हैं। छोटी छोटी बातो के लिए उसे पीटा भी जाता है। पर बात यहीं समाप्त नही होती। उसके अपराधों के लिए यदि उसी को दडित किया जाए तो सम्भवत उसे अधिक कष्ट न हो। उसके नैहर के लोगो को गालियां दी जाती हैं जब वे आते हैं तो उन्हें भला बुरा कहा जाता है केवल इसलिए कि स्त्री की भावनाओं को ठेस पहुचे। स्त्री को यह बात असह्य हो जाती है और जब वह विरोध में कुछ कहती है तो उसे और भी अधिक दडित किया जाता है। सम्भवत इसीलिए लोक-वाणी में यह बात प्रचलित हो गई है कि जिस दिन पुत्री का जन्म हुआ उसी दिन पिता और भाइयो की प्रतिष्ठा समाप्त हो जाती है उनकी पगडी उसी दिन झुक जाती है।

नैहर और ससुराल—दोनो के प्रति स्त्री का महत्व

लोक साहित्य ने एक ओर तो यह दिखलाया गया है कि स्त्री अपने नैहर के लोगो का पक्षपात करती है। जिन माता पिता ने उसे जन्म दिया है पालन-पोषण करके बडा किया है उनके प्रति ममत्व का परित्याग वह करे भी तो कैसे? अत जब नैहर के लोगो का कोई अपमान करता है या कोई ऐसी बात कहता है जो उनकी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल हो तो वह तुरन्त ही उनका पक्ष लेकर बोलने लगती है। कभी कभी उसे इस बात के लिए इतना तक दण्ड दे दिया जाता है कि वह नैहर जाकर ही रहे। वह यह भी सहन करने के लिए तैयार हो जाती है पर अपने पिता आदि को अपमानित होते नहीं देखना चाहती। कभी कभी यह भी दिखलाया गया है कि स्त्री को इस बात की धमकी दी गई है कि वह नैहर भेज दी जाएगी और वहा से नहीं बुलाई जाएगी, फिर वह सारा विरोध समाप्त कर के अपनी पराजय स्वीकार कर लेती है।

जिसको स्त्री ने अपना जीवन साथी बनाया है और जिस ससुराल में उसे सारा जीवन बिताना है उसके प्रति भी उसके हृदय में अपार प्रेम उत्पन्न हो जाता है। यदि नैहर में ससुराल की अनुचित आलोचना हो तब भी उसे वह सह्य नहीं। ऐसी परिस्थिति में वह ससुराल की प्रशंसा करती है। कभी-कभी लोकगीतों में यह भी प्रकट किया गया है कि पुत्री के इस व्यवहार के कारण माता पिता को कष्ट होता है। यदि स्त्री अपने भाई के द्वारा अपने पति को अपमानित होता हुआ देखती है तब भी उसे बहुत कष्ट होता है और वह इसका विरोध करती है।

लोक-साहित्य में स्त्री के इन दोनों पक्षों का यह प्रकार असंगति सा उत्पन्न करता हुआ प्रतीत होता है क्योंकि कभी तो स्त्री अपने नैहर का पक्ष लेती है और कभी ससुराल का। इससे इस भ्रान्ति के उत्पन्न होने की भी सम्भावना हो सकती है कि वह निश्चित बुद्धि नहीं रखती। पर वस्तुतः इसमें न तो कोई असंगति है और न स्त्री की अनिश्चित बुद्धि है। जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है कि दोनों पक्षों के प्रति उसका ममत्व है और इसलिए कभी एक भावना जाग्रत होती है और कभी दूसरी। फलतः वह कभी इस पक्ष का समर्थन करती है कभी उस पक्ष का। स्त्री के इसी व्यवहार के कारण लोक साहित्य में दिखलाया गया है कि वह दोनों पक्षों से विश्राम पा सकती है। भाई उसे नैहर ले जाने के लिए आते हैं। भाभी और ससुराल वाले नैहर का पक्ष लेने के कारण उसे ताने मारते हैं।

नैहर के प्रति स्त्री का मोह

कन्नौजी लोक साहित्य में स्थान स्थान पर ऐसे प्रसंग मिलते हैं जिनमें कन्या को इस बात के लिए बहुत अधिक चिन्तित दिखाया जाता है कि उसका नैहर विवाह होने पर छूट जाएगा और उसे न जाने किस अनजाने देश के लिए प्रस्थान करना होगा। जिनके साथ वह बाल्यावस्था में खेलती रही है — गुड़िया, सखी है — उन सबका साथ छूट जायगा। माता पिता जब उसे पालने के लिए तैयार होते हैं तब भी वह मार्मिक शब्दों में कहती है कि मैं थोड़े दिन के लिए तो हूँ ही फिर तो चली जाऊँगी, अब मुझे क्या दोगे ?

विवाह के समय जब विदा होती है तो वह माता के बहुत मनाने पर भी भोजन नहीं करती। माता विदाई का रोना नहीं देख सकती अतः सोती हुई पुत्री को डोला पर बिठा कर भेज देती है। जब वह बहुत आगे निकल जाती है और जाग पड़ती है तो उसे अपने नैहर का कोई नहीं दिखाई देता। अतः वह कहार मार कर मर जाना चाहती है पर उसका पति उसे मनाता है तब कहीं वह मानती है।[1]

ससुराल में भी वह ऊँची अटारिका पर चढ़ कर अपने भाई की प्रतीक्षा करती है और उसके साथ जा कर माता पिता को मिलने के लिए अधीर हो जाती है।[2] जब-जब उसे अपने नैहर का स्मरण होता है उसका हृदय भर आता है और आँसू की झड़ी बरसने लगती है। कभी कभी वह नैहर के मोह में इतनी आसक्त हो जाती है कि बिना बुलाए भी वह स्वयं वहाँ चली जाती है और जिसके फलस्वरूप नैहर में ठीक प्रकार से उसका स्वागत नहीं होता है और ससुराल लौटने पर वहाँ व्यंग्य सहना पड़ता है।

---

१ अनिल—कन्नौजी लोकगीत, पृ० २६०

२ वही पृ० २६८

स्त्री का ससुराल में रहना उसके लिए प्रतिष्ठा-पूर्ण माना जाता है

लोक-साहित्य म प्राय सवत्र यही दिखाया गया है कि स्त्री को ससुराल म कष्ट मिलता है। इसका परिणाम यह होता है कि वह अपने नैहर म रहने क लिए सदव लालायित रहती है। उसे यह विश्वास रहता है कि माता पिता क राज्य म जस बाल्यावस्था म आनन्दपूवक ही है उसी प्रकार सदैव रह सकती है। उसे न तो मनो कूटना पीसना पड़ेगा और न खांच भर बरतन ही मांजने पड़ेंग। पर अनक लोकगीतो एव लाक कहानियो म इस बात को निश्चित किया गया है कि पुत्री का अधिक स अधिक २ ४ दिनो क लिए आदर होता है तत्पश्चात उसका आदर घटन लगता है और एक दिन एसा आता है कि भाभी उसे झगड कर ससुराल के लिए भगा दती है। पुत्री क अधिक दिन रहन पर पास-पड़ोसी तथा स्वय परिवार क सदस्य भी यह समझन लगते हैं कि यह कुलक्षणा है ससुराल म उसका आदर नहीं होता और वह इस कुल को भी आग लगाएगी। अत उसका यहा से चला जाना ही अधिक श्रेयस्कर है। भाभी एसी स्थिति म ननद से व ला लना चाहती है और वह उसके सम्बन्ध म अनक अनुचित बातें कहती है अनक आरोप लगाती है और अन्त म माता पिता अपनी पुत्री को उसकी ससुराल भेजने को विवश हो जात हैं।

ससुराल के लोग जब रुष्ट हो जात हैं और वे अपनी बहू की विदा ही नहीं कराना चाहत तब तो नहर म स्त्री और भी अधिक भार स्वरूप हो जाती है। यदि दुश्चरित्रता का लाछन उस पर ससुराल वालो ने लगा दिया तो माता पिता अपनी पुत्री को अपने घर म स्थान ही नहीं देते। सतीत्व-परीक्षा के प्रसग म इस बात को कहा जा चुका है कि किरिआ क समय भाई कहता है कि यदि बहन हार गई तो वह उसे अपने घर नही ले जाएगा वही आग मे झोक देगा। वध्या भी जब अपन नैहर में रहने के लिए शरण मांगती है तो स्नेहमयी माता भी उसे अपने घर म स्थान नही देती। नेहर वालो की ससुराल मे आलोचना होती है और वह इसका विरोध करने के कारण ताने मार कर नैहर भेज दी जाती है। मा बेटी की डोली को देख कर पूछती है कि हे बेटी तुम चोर हो या चटोरी या तुमने सास को जवाब दिया है। पुत्री कहती है हे मं। न बेटी चोर है न चटोरी। इस बटी ने सास को जवाब दिया है। मा कहती है— हे बटी! जिस तेजी से आई हो उससे दूनी तेजी से वापस जाओ। पर्दा खोल कर मुझसे मिलने की भी कोई आवश्यकता नहीं तुम सीधे ससुराल वापस चली जाओ। जब स्त्री बिना बुलाए ससुराल से नैहर आती है तब भी उसका सम्मान नही होता।[1] भाई भाभिया उसे कभी कभी घर म बठने भी नही दती हैं और तुर त ससुराल के लिए वापस भेज देती हैं। तब वह खीझ कर भाइयो को स्त्रीदास कहती हुई चली जाती है।[2]

१ बिना बुलाए लाए अइचि अइचि के जाए।
२ तुम धनिओं के अखिल गुलाम बलइया लेउँ बीरन।

इसके विपरीत जो स्त्री ससुराल में अधिक रहती है उसके लिए यह माना जाता है कि वह पति का प्रेम प्राप्त किए हुए है और उसे आर्थिक या मानसिक किसी प्रकार का भी कष्ट ससुराल में नहीं है। लोकगीतों में दिखलाया गया है कि रूसकर जाने वाली स्त्री भी जब यह सुनती है कि उसे नैहर भेज दिया जाएगा तो वह तुरन्त अपनी भूल को स्वीकार कर लेती है और जिनके प्रति उसने अशिष्टता की है, उनसे क्षमा मांगती है। इसका कारण यह है कि वह इस बात के लिए भयभीत रहती है कि उसका नैहर में अपमान होगा। अतः उस अपमान से तो क्षमा याचना करना ही अधिक लाभकारी है। न केवल लोक साहित्य में ही अपितु आज के सभ्य समाज में भी स्त्री का ससुराल में ही अधिक ठहरना प्रतिष्ठापूर्ण माना जाता है।

आर्थिक पराधीनता के कारण स्त्री को कष्ट

विवाह होने पर स्त्री अपनी ससुराल जाती है तो वहाँ की सम्पत्ति की भी अधिकारिणी नहीं होती पति ही अधिकारी होता है। पिता की सम्पत्ति को प्राप्त वह कर नहीं सकती। अतः आर्थिक दृष्टि से उसे पति पर निर्भर होना पड़ता है। पति जैसा चाहता है, उसे कपड़ा और भोजन देता है। लोक साहित्य में दिखलाया गया है कि यदि स्त्री अकेली कहीं दिखलाई पड़ती है तो लम्पट उससे अनुचित प्रस्ताव करते हैं। अतः वह अकेली कहीं आ भी नहीं सकती। यदि वह पति से अलग अकेली रहे तो भी उसे किसी भी समय संकट पड़ सकता है। अतः हर स्थिति में उसे पुरुष का आश्रय आवश्यक हो जाता है।

जब भी पति उससे रुष्ट हो जाता है तो उस पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है। यदि वह परदेश चला जाता है तो आर्थिक दृष्टि से भी उसकी स्थिति सोचनीय हो जाती है। पति परदेश जाते समय पत्नी से कहता है कि वह चर्खा चलाकर अपनी जीविका उपार्जित करे। पति को गये हुए इतना अधिक समय बीत जाता है कि चर्खा भी जीर्णशीर्ण हो जाता है और पत्नी को इस बात की चिन्ता होती है कि जीविका के साधन चर्खे के टूट जाने पर उसकी क्या स्थिति होगी। पति आएंगे भी कि नहीं, कौन जाने ?

अनेक लोकगीतों में विरहिणी स्त्री की आर्थिक कठिनाइयों से लम्पट पुरुषों ने लाभ उठाना चाहा है। एक कामी एक स्त्री से कहता है कि हे कामिनी! तुम्हारा पति अब वापस नहीं आएगा। तुम्हारी ओढ़नी जीर्ण शीर्ण हो गई है, चादर में हजारों पैबन्द लगे हुए हैं, चोली भी फट गई है। यदि तुम मेरा पत्नीत्व स्वीकार करो तो मैं

---

१ हम त भई निमुकरिआ सासु पाय परिहा र।
सजना मइआ मनाय हम लीयें तुम हमि बोलड हो।
२ गोरी हार न जइयो बजारे न जइओ डगर म परें छिनरा।

तुम्हें रेशमी वस्त्रों से ढँक दूँगा, तुम्हारे लिए बढ़िया भोजन का प्रबन्ध करूँगा और तुम्हें अपने नेत्र के तारे की भांति रखूँगा।[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्त्री के आर्थिक कष्ट और उस पर किए जाने वाले अत्याचारों का मूल है उसकी आर्थिक पराधीनता। अपनी आर्थिक पराधीनता के कारण ही लोक साहित्य में स्त्री को घुट घुटकर मरते हुए दिखाया गया है।[2]

वैधव्य के कारण स्त्री को कष्ट

कनौजी लोक साहित्य में सामान्यतया विधवा के विवाह का वर्णन नहीं आता। यदि कोई विधवा दूसरा पति वरण भी कर लेती है तो उस विवाहिता को कह कर 'ठढरी' कहते हैं और उसको घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। अतः विधवा को सर्वत्र दुःखी होते दिखाया गया है। वह पत्नी जो कि एक पति से जीवन भर के लिए बँध गई है यदि उससे बीच में ही छूट जाए तो वह तो बहुत बड़ी आपत्ति है हो। वह कहती है—हे पति! तुम्हारे बिना मेरा जीवन नष्ट हो गया। तुम मुझे मझधार में ही छोड़ कर चल दिए। अब मैं कहाँ जाऊँ और किसका अवलम्ब ग्रहण करूँ?

विधवा के लिए बहुत कठोर नियमों का उल्लेख लोक-साहित्य में मिलता है। वह शृंगार नहीं कर सकती चटक मटक कपड़े नहीं पहन सकती है अच्छा भोजन नहीं कर सकती चारपाई पर सो नहीं सकती और पुरुषों से मिल नहीं सकती। विधवा तो अपने वैधव्य को किसी प्रकार काट डालना चाहती है पर दुष्ट पुरुष बाधा उत्पन्न करते हैं इसी भाव को एक कनौजी कहावत में कहा गया है कि विधवा तो अपने वैधव्य को काट दे पर जब व्यभिचारी (अथवा विधुर) उसे ऐसा करने दें।[3]

वैधव्य के अभिशाप से बचने के लिए स्त्रियाँ देवी देवताओं से अपने सुहाग को अमर बनाने के लिए प्रार्थना करती हैं। वे अपने पति को इसीलिए परदेश जाने से रोकती हैं। इसीलिए वे यह भी कहती हैं कि हम चरखा चलाकर जीविकोपार्जन कर लेंगी पर पति को परदेश नहीं जाने देंगी। वे सोचती हैं कि यदि उनका पति परदेश में किसी आपत्ति में फँस कर मर गया तो उनके जीवन का कौन पार लगाएगा। पति उनकी बात नहीं मानता, चला ही देता है तब भी वे चलते चलते उसे निर्देश देती हैं कि वह अमुक दिशा को न जाए, वहाँ प्राणों के चले जाने का भय है।

---

१ फटि गई उढनिआ गोरी तुम्हारी लहँगा में पिउँदा हजार।
पौन्‌ों जो गोरी हमरी सिजरिआ लाऊँ तुम्हें उढना पटोर।
खइव का दय गोरी अच्छो अच्छो भुजना राखौं नयनवाँ की कोर।
२ सावन गीतों में शोचनीय दशा को देखा जा सकता है।
३ 'रंडिआ तो अपना रंडापा काटि देय प जब रड्डुआ मानैं।

इसके विपरीत जो स्त्री ससुराल में अधिक रहती है उसके लिए यह माना जाता है कि वह पति का प्रेम प्राप्त किए हुए है और उसे आर्थिक या मानसिक किसी प्रकार का भी कष्ट ससुराल में नहीं है। लोकगीतों में दिखलाया गया है कि नैहर वाली स्त्री भी जब यह सुनती है कि उसे नैहर भेज दिया जाएगा तो वह तुरन्त अपनी भूल को स्वीकार कर लेती है और जिनके प्रति उसने अशिष्टता की है उनसे क्षमा माँगती है। इसका कारण यह है कि वह इस बात के लिए सशंकित रहती है कि उसका नैहर में अपमान होगा। अतः उस अपमान से तो क्षमा याचना करना ही अधिक लाभकारी है।[1] न केवल लोक साहित्य में ही अपितु आज के सभ्य समाज में भी स्त्री का ससुराल में ही अधिक ठहरना प्रतिष्ठापूर्ण माना जाता है।

आर्थिक पराधीनता के कारण स्त्री को कष्ट

विवाह होने पर स्त्री अपनी ससुराल जाती है तो वहाँ की सम्पत्ति की भी अधिकारिणी नहीं होती पति ही अधिकारी होता है। पिता की सम्पत्ति को प्राप्त वह कर नहीं सकती। अतः आर्थिक दृष्टि से उसे पति पर निर्भर होना पड़ता है। पति जैसा चाहता है, उसे कपड़ा और भोजन देता है। लोक साहित्य में दिखलाया गया है कि यदि स्त्री अकेली कहीं दिखलाई पड़ती है तो लम्पट उससे अनुचित प्रस्ताव करते हैं।[2] अतः वह अकेली कहीं जा भी नहीं सकती। यदि वह पति से अलग अकेली रहे तो भी उसे किसी भी समय संकट पड़ सकता है। अतः हर स्थिति में उसे पुरुष का आश्रय आवश्यक हो जाता है।

जब भी पति उससे रुष्ट हो जाता है तो उस पर आपत्ति का पहाड़ टूट पड़ता है। यदि वह परदेश चला जाता है तो आर्थिक दृष्टि से भी उसकी स्थिति शोचनीय हो जाता है। पति परदेश जाते समय पत्नी से कहता है कि वह चर्खा चलाकर अपनी जीविका उपार्जित करे। पति को गये हुए इतना अधिक समय बीत जाता है कि चर्खा भी जीर्णशीर्ण हो जाता है और पत्नी को इस बात की चिन्ता होती है कि जीविका के साधन चर्खे के टूट जाने पर उसकी क्या स्थिति होगी। पति आएँगे भी कि नहीं कौन जाने ?

अनेक लोकगीतों में विरहिणी स्त्री की आर्थिक कठिनाइयों से लम्पट पुरुषों ने लाभ उठाना चाहा है। एक कामी एक स्त्री से कहता है कि हे कामिनी। तुम्हारा पति अब वापस नहीं आएगा। तुम्हारी ओढ़नी जीर्ण शीर्ण हो गई है घाघर में हजारों पैबन्द लगे हुए हैं चोली भी फट गई है। यदि तुम मेरा पत्नीत्व स्वीकार करो तो मैं

---

१ हम ते भई विसुकरिया सासु पाय परिहौं रे।
 सजना सइया मनाय हम लीयें तुम जनि बोलउ हो।
२ गोरी हार न जइओ बजारे न जइओ डगर में परे छिनरा।

तुम्हें रेशमी वस्त्रा से ढँक दूँगा, तुम्हारे लिए बढ़िया भोजन का प्रबन्ध करूँगा और तुम्हें अपने नत्र के तारे की भाँति रखूँगा।[1]

इस प्रकार कहा जा सकता है कि स्त्री के आर्थिक कष्ट और उस पर किए जाने वाले अत्याचारों का मूल है उसकी आर्थिक पराधीनता। अपनी आर्थिक पराधीनता के कारण ही लोक साहित्य म स्त्री का घुट घुटकर मरते हुए दिखाया गया है।[2]

वैधव्य के कारण स्त्री को कष्ट

कनौजी लोक साहित्य म सामान्यतया विधवा के विवाह का वर्णन नहीं आता। यदि कोई विधवा दूसरा पति वरण भी कर लेती है तो उसे विवाहिता न कह कर 'उढ़री' कहते हैं और उसको घृणा की दृष्टि से देखा जाता है। अत विधवा को सवत्र दु खी होने दिखाया गया है। वह पत्नी जो कि एक पति से जीवन भर के लिए बँध गई है यदि उससे बीच म ही छूट जाए तो यह तो बहुत बड़ी आपत्ति है हो। वह कहती है—हे पति ! तुम्हारे बिना मेरा जीवन नष्ट हो गया। तुम मुझे मझधार म ही छोड़ कर चल दिए। अब मैं कहाँ जाऊँ और किसका अवलम्ब ग्रहण करूँ ?

विधवा के लिए बहुत कठोर नियमों का उल्लेख लोक-साहित्य म मिलता है। वह शृंगार नहीं कर सकती, चटक मटक कपड़े नहीं पहन सकती है, अच्छा भोजन नहीं कर सकती चारपाई पर सो नहीं सकती और पुरुषों से मिल नहीं सकती। विधवा तो अपने वैधव्य को किसी प्रकार काट डालना चाहती है पर दुष्ट पुरुष बाधा उत्पन्न करते हैं इसी भाव को एक कनौजी कहावत म कहा गया है कि विधवा तो अपने वैधव्य को काट दे पर जब व्याभिचारी (अथवा विधुर) उसे ऐसा करने दें।[3]

वैधव्य के अभिशाप से बचने के लिए स्त्रियाँ देवी देवताओं से अपने सुहाग को अमर बनाने के लिए प्रार्थना करती हैं। वे अपने पति को इसीलिए परदेश जाने से रोकती हैं। इसीलिए वे यह भी कहती हैं कि हम चरखा चलाकर जीविकोपार्जन कर लेंगी पर पति को परदेश नहीं जाने देंगी। वे सोचती हैं कि यदि उनका पति परदेश म किसी आपत्ति में फँस कर मर गया तो उनके जीवन का कौन पार लगाएगा। पति उनकी बात नहीं मानता चल ही देता है तब भी वे चलते चलते उसे निर्देश देती हैं कि वह अमुक दिशा को न जाए वहाँ प्राणों के चले जाने का भय है।

---

१ फटि गई उढ़निआ गारी तुम्हारी लहगा म पिउँदा हजार।
पौढ़ो जो गारी हमरो सिजरिआ भाकें तुम्हें ढँकना पटोर।
खइब का दय गोरी अच्छो अच्छो भुजना राखों नयनवाँ की कोर।

२ सावन गीतों ने शोचनीय दशा को देखा जा सकता है।

३ 'रँडिआ तो अपना रँडापा काटि देय प जब रँडुआ मान।

वन्ध्यत्व स्त्री जीवन के लिए अभिशाप

स्त्री माता रूप में ही अपने पूर्णत्व को प्राप्त होती है। इसी पूर्णत्व को प्राप्त करने के लिए कनौजी लोक साहित्य में स्त्री प्रयत्नशील दिखाई पड़ती है। बिना संतान के वह अपने जीवन को व्यर्थ समझती है भले ही उसका घर धन धान्य एवं समृद्धि युक्त हो। स्त्री पुत्र प्राप्त करने के लिए अनेक कष्टों को सहती है, अपने समस्त सुखों को तिलांजलि दे देती है पर उसका अभाव ही उसके जीवन को निःसार एवं व्यर्थ बना देता है।

सीतला, ललिता, दुर्गा, काली देवी तथा अन्य देवताओं की प्रार्थना में अनेक गीत हैं जिनमें स्त्रियाँ पुत्र प्राप्ति की कामना करती हैं।[1] यदि विवाह के पश्चात बहुत दिनों तक पुत्र की प्राप्ति उन्हें न हुई तो वे वन्ध्या समझ ली जाती हैं और ऐसी स्थिति में उनका कोई मुख तक नहीं देखना चाहता है और सास, ननद, पति, ससुर सभी से निरादृत होने पर वह बाघिनी, सर्पिणी आदि से उसे खा जाने को कहती हैं पर वे इसलिए उसे नहीं खातीं क्योंकि उन्हें भय है कि कहीं उनकी बहुएँ आदि भी वन्ध्या न हो जाएँ। माता भी शरण नहीं देती और तब वे गंगा में डूबना चाहती हैं।

कुछ लोकगीत ऐसे भी कनौजी में उपलब्ध होते हैं जिनमें स्त्रियाँ गंगा के स्थान पर यमुना में डूबना चाहती हैं। कुछ स्त्रियाँ यमुना में जल भरते हुए देखती हैं कि कोई स्त्री यमुना में डूब रही है। पूछे जाने पर वह उत्तर देती है कि न तो उसे सास ससुर का दुःख है न नैहर ही दूर है और न पति परदेश गए हैं, वह तो बांझ के दुःख[2] से डूबकर अपने निरर्थक जीवन को ही समाप्त कर देना चाहती है।

कनौजी लोकगीतों में और लोक-कहानियों में दिखाया जाता है कि वन्ध्या की बड़ी उपेक्षा की जाती है उसे भाँति भाँति से दुःखी किया जाता है। उसका कोई मुख नहीं देखना चाहता है यदि किसी कार्य के लिए जाते समय या धार्मिक अथवा मांगलिक अनुष्ठान करते समय वह सामने पड़ जाती है, तो अपशकुन माना जाता है। प्रातःकाल तो उसका देखना और भी अधिक अशुभ माना जाता है।

कनौजी लोक-साहित्य में अवधी, भोजपुरी, मैथिली, मगही, राजस्थानी आदि के लोक-साहित्य की भाँति ही वन्ध्या स्त्री से सास, ननद, देवरानी, जेठानी, माता, भाभी—सभी भयभीत रहती हैं सभी को आशंका रहती है कि उसके सम्पर्क से कहीं वे भी बाँझ न हो जाएँ। अतः वन्ध्यात्व को संक्रामक रोग की भाँति ही माना गया है। परिणाम यह होता है कि लोक-साहित्य में स्थान-स्थान पर इस बात का उल्लेख मिलता है कि वन्ध्या को पुत्र द्वारा सुख मिले या न मिले, वह तो येन-केन प्रकारेण यह

---

1 ललित—कनउजी लोकगीत पृ० २३२

2 वन्ध्यात्व।

अभिलाषा करती है कि उसका वध्यान्द समाप्त हो जाए। एक लोकगीत म वणन मिलता है कि राम के उत्पन्न होने पर ककेयी ने कहा कि राम तो वन का जाएगे। अत दशरथ न कौशल्या को आदेश दिया कि वह धीरे धीरे वस्त्र लुटाएँ क्योंकि राम तो वन जाएँगे। कौशल्या मार्मिक शब्दो मे उत्तर देती हैं। हे राजा! तुम बावल हो, तुम्हारी मति किसन हर ली है राम भले ही वन चले जाएँ पर मेरा बाभिन नाम तो छूट गया है।'

कनौजी लोक-साहित्य मे वर्णित स्त्रियो के दुगु ण

कनौजी लोक साहित्य मे एक ओर तो नारी के प्रति सम्मान की भावना व्यक्त की गई है और उसकी नि दा को सवथा निषिद्ध माना गया है[1] पर समग्र लोक साहित्य का अनुशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि यह बात सद्धा तिक है, व्यावहारिक रूप म तो उसकी सवत्र उपेक्षा और नि दा ही होती दिखाई पडती है, उसमें अनेक दुगु णो का आरोप किया जाता है।

झगडने की प्रवृत्ति

पारिवारिक जीवन की झाकी प्रस्तुत करते समय स्त्रियों के पारस्परिक सम्बन्धो का जो विश्लेषण किया गया है उससे यह प्रकट होता है कि स्त्रिया परस्पर झगडती रहती हैं। सास बहू, ननद-भाभी सौत सौत, देवरानी जेठानी—सभी एक दूसरे के प्रति शत्रु जैसा व्यवहार करती हैं और थोडा सा ही अवसर मिल जाने पर एक दूसरे की अधिक से अधिक हानि करने के लिए तैयार रहती हैं। सास तो बहू को मरवा डालने तक का प्रबन्ध करती है। ननद भी भाभी को वनवास दिलाती है और भाभी ननद को अपने घर मे घुसने भी नहीं देती। वे सब एक दूसरे की निन्दा करती हैं।

कनौजी लोक साहित्य म अनेक स्थलो पर ऐसे उल्लख मिलते हैं कि भाभी अपने 'ननदोई से ननद को ले जाने के लिए कहती हैं तो वह इसका कारण पूछता है। भाभी उत्तर देती है कि न इसन चोरी की है न चुगली खाई है इसन मममेदक कटु शब्द बोने हैं इसी कारण म इस यहा स भजना चाहती हू। इसी प्रकार ससुराल से निकाल दिए जाने पर स्त्री जब अपनी माता क पास आती है तो वह निकाले जाने का कारण पूछती है। पुत्री बतलाती है कि मेरा और कोई अपराध नहीं है मैंन सास को जवाब दिया है। पति और विशेष रूप स सौतों म ता इसकी ठनी ही रहती है। इन सम्बन्धो को देखकर यह जान पडता है कि स्त्रियाँ कभी भी एक क्षण क लिए भी शान्ति एवं प्रेमपूर्ण जीवन व्यतीत हो नहीं करना चाहती उन्हें मानो झगडना ही सर्वाधिक प्रिय है। पति भी पत्नी द्वारा बीच म बात

1 नारी निन्दा ना कोई करिओ नारी है नर की खान

बाहर जाने के कारण दुःखी रहता है। बात काटने वाली स्त्री सब से पीड़ित करने वाली होती है।

फूहड़पन

उठना-बैठना, बोलना-बात करना, गृहस्थी के काम, खाना-पीना—इन सभी बातों में जिसे औचित्य एवं अनौचित्य का ज्ञान न हो, उसे फूहड़ कहा जाता है। कनौजी लोक-साहित्य में जो काम गिनाए जाते हैं उन पर में निराश किया जाता है—इस सब के मूल में स्त्री का फूहड़पन है। स्त्री दाल रोटी कच्चा बनाकर या जलाकर रख देती है। खाना बनाते समय खाती भी जाती है। मुँह वह धोती नहीं, आँखों में कीचड़ भरा रहता है, कपड़े गंदे पहनती है, नहाने से उसका सरोकार ही क्या। खाना खाती है तो मुँह से चपर चपर की ध्वनि निकलती है और बहती हुई नाक भी पोंछती जाती है। सोती है तो उसके नासिका की घरघराहट भी सुनाई पड़ती है। घर में बात इतने जोर से करती है कि सभी पास पड़ोसी उसे भली भाँति सुन लेते हैं। घर की सफाई करना, प्रत्येक वस्तु को यथास्थान रखना, सिलाई-बुनाई—सभी कामों को वह नहीं जानती और इसी कारण उसे अनेक कष्ट उठाने पड़ते हैं।

चोरी करना और चटोरी[1] होना

लोकगीतों एवं लोक-कहानियों में प्रायः यह उल्लेख होता है कि स्त्री चोरी करती है और परिणामस्वरूप कलंकिनी होती तो उन्हें घर से निकाल दिया जाता है। जब किसी स्त्री पर कोई दोष दिया जाता है तो उससे सहानुभूति रखने वाले सदैव यही बात पूछते हैं कि तुम चोर हो या चटोरी?[2] चटोरी होने के साथ ही साथ स्त्री को बहुत अधिक खाने वाली के रूप में भी चित्रित किया गया है। पेट के अधिक भोजन करने के कारण सास दुखी है क्योंकि उसके पुत्र के लिए भोजन बचता ही नहीं पाता। अकेली वह ही सब चट कर जाती है। अन्त में लोकगीतों में तो दिखाया गया है कि स्त्री दिन रात खाती ही रहती है, उसका पेट नहीं भरता है, सब कुछ उसी से सहा जाता है। स्त्री चोरी भी प्रायः खाद्य वस्तुओं की ही करती दिखाई जाती है।

कनौजी लोक-साहित्य में यह भी दिखाया जाता है कि स्त्री चोरी करने के अतिरिक्त सब काम में भी पटु होती है और पूछना जाता तो उसकी माता नम नमु

---

1 जो भोज्य पदार्थों को खाने के लिए जिह्वा पर संयम नहीं करती कुछ न कुछ चीज खाया ही करती है।

2 कि तुम चोर चटोरी का हो निरवंसिन रे।

3 किसा।

में भरा है। 'ननद भाभी' प्रसंग में यह बताया जा चुका है कि ननद किस प्रकार चुगली करके अपनी भाभी को बनवास दिला देती है।

तिरिया चरित्र

'तिरिया चरित्र' का शाब्दिक अर्थ तो स्त्री का चरित्र है पर इसका लाक्षणिक अर्थ ग्रहण किया जाता है। लक्ष्यार्थ की दृष्टि से कपट पूर्ण, विश्वासघातक एवं रहस्यमय चरित्र को 'तिरिया चरित्र' कहा जाता है। भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी स्त्री के चरित्र को रहस्यपूर्ण, क्षण क्षण में परिवर्तनशील एवं अकरुण माना गया है। शेक्सपियर ने कुछ ऐसे ही विचार व्यक्त किए हैं। भारत में तो एक बहुत लोकप्रिय उक्ति है कि स्त्री के चरित्र एवं पुरुष के भाग्य को देव भी नहीं जानता मनुष्य की गणना ही क्या है।[1] कनौजी लोक साहित्य में भी नारी के चरित्र को घातक तथा रहस्यमय माना गया है।

एक कनौजी लोक-कथा के अनुसार एक गोपिका कृष्ण से अगाध प्रेम करती है और कृष्ण से वह निरंतर मिलना चाहती है। पर उसका पति उसके मार्ग में बाधक बनता है अतः वह उसको मार डालती है, परन्तु जब कृष्ण उस स्त्री से मिलने आते हैं तो वह कृष्ण से प्रणय निवेदन नहीं करती वरन् अपने पति के साथ सती हो जाती है। इस कथा के अन्त में लोक कथाकार एक पद्य को जोड़ देता है जिसका आशय है कि स्त्री के चरित्र को कोई भी नहीं जान सकता। वह स्वयं ही अपने पति का प्राणान्त कर देती है और इसके पश्चात् उसी मृत पति के साथ सती भी हो जाती है।[2]

स्त्री के शब्द उसके व्यवहार उसके प्रेम उसकी करुणा, उसका रुदन, उसका हास—सभी कुछ तो पुरुष की दृष्टि में ठीक ठीक समझ पाना नितान्त कठिन है। अतः पुरुष उसकी ओर सदैव शंका की दृष्टि से देखता है और इसी से उसके हृदय में सर्वग्राही अविश्वास का जन्म होता है। वस्तुतः लोक साहित्य में स्त्री के प्रति पुरुष अपनी श्रद्धा समन्वित भावना को अर्पित करता हुआ नहीं दिखाई पड़ता।

स्त्री के प्रति पुरुष का अविश्वास

कनौजी लोक साहित्य में सर्वत्र यही दृष्टिगोचर होता है कि पति के परदेश जाने की बात मस्तिष्क में आते ही स्त्री दुःखी हो जाती है। पति का वह रोकने का प्रयत्न भी करती है। पति चला जाता है तो उसके विरह में दुःखी रहती है। किसी पर-पुरुष के प्रलोभन में वह नहीं पड़ती। पति के अभाव में शय्या को बिछाती तक

---

१ स्त्रियाश्चरित्रं पुरुषस्य भाग्यं देवो न जानाति कुतो मनुष्यः—एक सूक्ति।

२ तिरिया चरित्तर जाने ना कोई।
खसम मारि कै सत्ती होई॥

नहीं, भूमि शयन करता है और प्रतीक्षा में सारा जीवन काट देने को तैयार है पर उसी स्त्री का पति जब विदेश से लौटता है तो कभी तो वह वेश बदलकर अपनी पत्नी को अनेक प्रलोभन देकर उसकी परीक्षा लेता है। परीक्षा में उसकी अपूर्व सफलता के पश्चात भी यदि किसी ने थोड़ा सा भी कोई संकेत कर दिया तो फिर वह गुप्त-परीक्षा के बाद भी किरिया लेता है उसे अग्नि में डलवाता है और कभी खौलते हुए तेल में। राम से अनन्य प्रेम करने वाली सीता को भी अग्नि परीक्षा देनी पड़ती है। अग्नि-परीक्षा देने के बाद भी धोबी के ताना देने पर सीता को पुनर्वनवास दिया जाता है और इस प्रकार अग्नि परीक्षा के पश्चात भी अविश्वास समाप्त होता नहीं दिखाई पड़ा। कुछ लोकगीतों में तो ननद के केवल इस बात के कहने से कि सीता राम के शत्रु का चित्र बना रही थी राम उन्हें वनवास दे देते हैं। किसी प्रकार की सीता से पूछ-ताछ की भी आवश्यकता नहीं समझते परीक्षा लेनी भी सम्भवतः उन्हें पर्याप्त नहीं जान पड़ती।

राम के द्वारा अविश्वास किए जाने पर सीता का उनके प्रति विरोध

कनौजी में जो सीता वनवास लोकगीत उपलब्ध होते हैं उनमें कुछ में ही सीता के वनवास का कारण दिया जाता है। प्रायः सभी में गीत वन की पृष्ठभूमि का वर्णन करते हुए प्रारम्भ होता है। लोकगीतों में सीता के वनवास के प्रसिद्ध कारण धोबी द्वारा ताना देने का उल्लेख नहीं मिलता है। एक लोकगीत में वनवास का कारण दिया गया सीता द्वारा रावण का चित्र बनाया जाना। जब लक्ष्मण सीता को छोड़कर चले आते हैं तो लोकगीतों में सीता का विलाप करते हुए दिखाया गया है। उन्हें अपने दुःख की चिंता नहीं है। चिंता तो केवल इसी बात की है कि शिशु जन्म पर क्या होगा? कौन आया दाई कौन नाइन शिशु को कौन वहाँ से वस्त्र दिए जाएँगे और प्रजा जनों को क्या दान दिया जाएगा?

किसी प्रकार से लवकुश का जन्म होता है। सासु अयोध्या के लिए 'रोचन भेजती हैं। नाईन से वे कहती हैं कि सभी को रोचन देना पर मेरे पति को नहीं। राम को पता लगता है और उनका हृदय व्यथित हो जाता है। आगे के घोड़े पर वशिष्ठ पीछे के घोड़े पर लक्ष्मण और बीच के घोड़े पर राम बैठकर सीता को मनाने चले। सीता ने कहा—हे गुरु! आपकी आज्ञा मैं नहीं टालूँगी दस पग चलूँगी और फाटक पर ही पृथ्वी में समा जाऊँगी।

एक लोकगीत में सीता वशिष्ठ से कहती हैं कि हे गुरु! तुम सब जानते ही हो राम ने मुझे इतना जलाया है कि उनसे चित्त अब कैसे मिलेगा? उन्होंने मुझे आग में डाल कर भूना। जब मैं गर्भिणी थी तब मुझे घर से निकाल दिया गया उनसे मेरा मन कैसे मिलेगा? हे गुरु! पर मैं तुम्हारा वचन नहीं टालूँगी और अयोध्या की ओर पाँच पग चलूँगी। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे राम से न मिलाए। वशिष्ठ के लौटने पर राम मनाने आते हैं और कहते हैं हे सीता! तुम्हारे बिना मुझे संसार

अन्धकारमय प्रतीत होता है और मेरा जीवन व्यर्थ हो रहा है। सीता की आँखों में हृदय की वेदना उमड़ आई। वे राम की ओर एकटक देखते देखते पृथ्वी में समा गई। यद्यपि सीता ने कहा कुछ भी नहीं पर एकटक देखते देखते समाने में ही सब कुछ कह दिया गया।

वनवास से सम्बद्ध एक अन्य लोकगीत में सीता के लिए राम पत्र लिखते हैं कि हे सीता! तुम अपने मन का क्रोध त्याग दो और अयोध्या वापस चली आओ। सीता पत्र पढ़ती है और उत्तर में कहती है कि मेरे लिए तुम दूसरा अवतार धारण करो तो भी मैं अयोध्या नहीं आऊँगी।[1] गीत के अन्त में सीता की वेदना घनीभूत हो गई है और इसीलिए उसमें उनका विरोध एवं विक्षोभ चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया है। वस्तुतः सीता के माध्यम द्वारा लोक-मानस ने स्त्री मात्र का पुरुष के अविश्वास के प्रति विरोध प्रकट किया है। आदर्शवादी कलाकारों ने राम के द्वारा दिए गए सीता-वनवास को अनेक प्रकार से औचित्य ठहराया है उसे एक आदर्श का रूप प्रदान किया है। पर लोक वाणी ने स्पष्ट स्थिति का चित्रण कर दिया है—पुरुष के नारी के प्रति अत्याचार का विरोध करने में कोई कोर-कसर नहीं छोड़ी है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि कनौजी लोकगीतों में वर्णित नारी की विविध स्थितियों में उसके उज्ज्वल और धूमिल दोनों पक्ष उपलब्ध होते हैं। एक पक्ष आदर्शोन्मुख है तो दूसरा यथार्थोन्मुख। इसमें वर्णित नारी जन्म-जन्म की दुखियारी है। उसके जीवन में सुख बिजली की तरह कौंधता है और फिर से दुःख के घन अन्धकार में विलीन हो जाता है। सब प्रकार के अत्याचारों को सहकर भी वह अपने घर का सेतु टूटने नहीं देती। उस पर दोषारोपण किया जाता है और उसके चरित्र पर भी शंका की जाती है। उसके पातिव्रत की कठिन परीक्षा ली जाती है पर वह उसमें तप्त कंचन के सदृश खरी उतरती है। अनेक प्रकार के प्रलोभनों में न पड़कर वह अपने सतीत्व की रक्षा करती है और अपने ऊपर सब प्रकार से दुर्व्यवहार करने वाले पति के साथ भी सती होकर अपने जीवन को परम सार्थक मानती है। बहु-विध वेदनाओं का महा गरल पान करके वह शिव रूप बन जाती है—वात्सल्य स्नेह प्रेम करुणा, त्याग दया, श्रद्धा निष्ठा और सहानुभूति की दिव्य ज्योति से समस्त विश्व को ज्योतिमय बना देती है।

अनमेल विवाह

कनौजी लोक-साहित्य में इस बात को भी अनेक स्थलों पर व्यक्त किया गया है कि दहेज देने की असमर्थता तथा वर-पक्ष के लोगों के पास बार-बार जाकर अप-मानित होने के पश्चात फिर वह योग्य और अयोग्य के विवेक से शून्य हो जाता है।

1 'राम पाती लिखि पठई सितालइ बाँचै
लउटि धरौ औतार अजुध्या नहिं आमैं रे।

परिणामस्वरूप वह अपनी किशोरी पुत्री का वृद्ध के साथ विवाह कर देता है। वृद्ध किसी प्रकार के दहेज की माँग नहीं करेगा और इसके साथ ही वह कन्या के पिता का सम्मान भी इक्कर करता है।

बाल विवाह

कभी कभी पिता को उपयुक्त वर न मिलने के कारण अपनी पूर्ण युवती पुत्री का विवाह अबोध शिशु से करना पड़ता है। कन्नौजी लोक-साहित्य में कहीं कहीं उल्लेख मिलता है कि पत्नी पूर्ण युवती है पर उसका पति अबोध शिशु है। विवाह में न जाने किन किन कामनाओं को लेकर वह आई थी पर वे सब वहाँ न पूरी हो। यौवन की बुभुक्षा उद्दीप्त होती है पति से वह प्रणय निवेदन करती है पर वह समझ ही नहीं पाता और भाग कर माँ के पास सो जाता है।[1] ऐसी स्थिति में वह अपने माता पिता को शाप देता है और अपने भाग्य को कोसती हुई कहती है कि इससे तो अच्छा यही था कि मेरा विवाह ही न होता। जब उसे कोई दूसरा रास्ता नहीं सूझता तो वह अपने पति का पालन-पोषण तन्मयता से करती है। अच्छा अच्छा भोजन कराती है जिससे कि वह पूर्ण स्वस्थ रहे और शीघ्र ही युवा हो जाए तथा उसके संकट के दिन कट जाएँ।

कुछ लोकगीतों में तो शिशु-पति का साम्य चूहे से किया गया है। वह खो जाता है और पत्नी उसे ढूँढते-ढूँढते परेशान हो जाती है पर वह मिलता ही नहीं। अन्त में वह देखती है कि चारपाई के नीचे बिल्ली उसे अपने मुँह में दबाए हुए है और तब वह अपने पति की रक्षा करती है। इसी प्रकार की अन्य मनोरंजक घटनाओं का उल्लेख इस प्रसंग में होता है।[2]

वृद्ध विवाह

शिशु के साथ विवाह होने में स्त्री उतने कष्ट का अनुभव नहीं करती जितने कष्ट का अनुभव वह वृद्ध के साथ विवाहित होने में करती है। शिशु के सम्बन्ध में तो वह सोचती है कि वह कभी तो युवा होकर उसकी आशा वल्लरी को लहलहाएगा परन्तु वृद्ध के सम्बन्ध में तो वह सोचती है कि न जाने किस दिन वह उसे वैधव्य की अग्नि में झोंक दे। वृद्ध की तो उसे निष्काम भाव से सेवा ही करनी पड़ती है। वह उससे कुछ आशा तो रख नहीं सकती। उसके साथ वह प्रेम भी क्या करे, क्योंकि उसकी अवस्था उसके पिता से भी अधिक है। वह भाग्य के साथ ही अपने

१ छोटो सो बलमा मेरे आँगना में गुल्ली खेलै।
जब हम कहें बलमा सिजिया पै पौढ़ो।
बलमा भाजैं रोय कै रामू के संग पौढ़ैं।

२ लेखक के अप्रकाशित लोकगीत संग्रह से।

पिता को भी कोसती है। उसने धन के लोभ में मेरा बुड्ढे के साथ विवाह कर दिया।[1]

कुछ लोकगीतों में वृद्ध के साथ विवाहिता युवती की स्थिति का वर्णन किया गया है। वृद्ध के बाल सफेद हो गए हैं, मारे दाँत टूट गए हैं, खाँसी आती है, उसकी आकृति को देखकर पत्नी का हृदय काँप जाता है और वह अनुभव करने लगती है कि उसे शीघ्र ही विधवा बनना पड़ेगा। एक स्थल पर तो दिखाया गया है कि पत्नी ने रोष में आकर मृतप्राय वृद्ध पति को सड़क पर ढकेल दिया जिससे कि उसकी मृत्यु हो गई।[2]

बहु विवाह

'सौत' के पारस्परिक सम्बन्धों का विवेचन तो पारिवारिक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते समय किया जा चुका है पर वहाँ केवल यही बतलाया गया था कि उनमें अत्यधिक वैमनस्य होता है। यदि वास्तविकता में देखा जाय तो सौत दूसरी सौत के दुःख का मूल नहीं है। यदि पति एक पत्नी के साथ एकनिष्ठ सम्बन्ध रखता है और दूसरी से सम्बन्ध ही स्थापित न करता तो समस्या ही उत्पन्न न होती, सौत अस्तित्व में ही न आती। लोकगीतों तथा लोक-कहानियों में इस बात का उल्लेख मिलता है कि पति अपनी लम्पटता एवं कामुकता के कारण स्त्री जीवन को विषाक्त बना देता है। अनेक स्थलों पर पत्नी इस बात के लिए प्रयत्नशील दिखाई गई है कि वह पति को कुमार्ग की ओर जाने से रोके। पति की चरित्रहीनता के कारण वह सदैव सशंकित रहती है। जब पति परदेश जाता है और बहुत दिन तक वापस नहीं आता तो सबसे पहले उसे इसी बात की शंका होती है कि उसने किसी दूसरी स्त्री से तो विवाह नहीं कर लिया है। कहीं कहीं यह भी दिखलाया जाता है कि १२ वर्ष पश्चात् पति वापस तो आता है पर साथ में एक और पत्नी को भी लाता है। उस पत्नी को देखकर पहली पत्नी के प्राण संकट में पड़ जाते हैं। पत्नी अपने पति को उपालम्भ देती हुई पूछती है कि हे स्वामी यदि मैं वन्ध्या होती तो तुम सौत ले आते, जो मैं कोयल के समान काली होती तो भी तुम सौत ले आते, हे स्वामी मेरा शरीर तो मूंग की भाँति गौर वर्ण का है, फिर भी तुम सौत क्यों लाए हो ?[3]

---

१ माया के लोभी बाप ने बुढ़वा को ब्याहि दी हो रे।
२ हम दओ ढकलि सड़किआ पै मरि गओ बुढ़ौना।
३ जो हम होतीं राजा बाँझ बमनिया तौ सन्तिया लइअउत हो राम।
जो हम होती राजा कारी कुइलिया तो सउति लइअउत हो राम।
हो राजा हमरी सदज अइसी दिहियाँ
सउति काए-लाए हो राम।

वस्त्र

कनौजी लोक साहित्य में अनेक वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। मांगलिक कार्यों में पीले रंग के वस्त्र पहने जाते हैं। [illegible] के बाद छठी के दिन स्त्री पीले रंग के वस्त्र पहनती है। इसी प्रकार विवाह के समय वर पीला जामा पहनता जाता है भाई भी अपने बहनोई और बहन के लिए पीली [illegible] कपड़े लाता है। विवाह के समय वधू के लिए एक चूनरी नाम का वस्त्र दिया जाता है जो लाल, हरे और पीले रंग में रंगा जाता है। कनौज जनपद में रंगीन वस्त्र सधवा स्त्रियाँ ही पहन सकती हैं। विधवाएँ सफेद वस्त्र ही पहनती हैं। शोक के अवसरों पर सभी लोग सफेद वस्त्र धारण करते हैं।

पुरुषों का मुख्य वस्त्र धोती है। अंगरखा, कुर्ता या कुरता शरीर के ऊपरी भाग पर धारण किया जाता है। गीतों में पगड़ी का भी उल्लेख हुआ है। पुरुष अंगोछा का भी प्रयोग करते हैं। इनका उल्लेख गायन तथा विभिन्न गीतों में बराबर मिलता है। स्त्रियों के वस्त्रों में लहँगा, साड़ी, ओढ़नी, धोती, चोली, अँगिया, दुलइया आदि का उल्लेख मिलता है। लोकगीतों में रेशमी वस्त्रों का भी उल्लेख मिलता है। ओढ़ने के लिए [illegible] रजई और दोहर का नाम आता है और बिछाने के लिए गद्दा, कालीन और जाजम का।

आभूषण

कनौजी लोग आभूषणप्रिय होते हैं। पुरुषों में अंगूठी, सन्या (निम्न वर्ग के लोग पहनते हैं) कानों की बाली, गले का [illegible] और जंजीर आदि [illegible] प्रिय हैं। स्त्रियाँ तो स्वभाव से ही आभूषण प्रिय होती हैं। उनकी आभूषणप्रियता से पति परेशान रहता है। जब देखो तब पत्नी किसी न किसी आभूषण के लिए पति से आग्रह करती है। स्त्रियों के आभूषणों में नथुना, [illegible], कान की बाली, पुंगरिया, हार, सुतिया, टिकिया, कंगन, छड़ा, छल्ला, अंगूठी, करधनी, पायजेब, बिछुआ, अनौटा आदि का उल्लेख मिलता है। आधुनिक लोकगीतों में आधुनिक आभूषणों का उल्लेख भी मिलता है।

प्रसाधन

मनुष्यमात्र की शृंगार करने की प्रवृत्ति सदा से रही है। जिस समय जो साधन इसके लिए उपलब्ध होते हैं उन्हीं का उपयोग किया जाता है। लोकगीत बहुत ही पुराने हैं अतः उनमें नारी समाज की साज सज्जा भी बहुत ही पुरानी है। लोकगीतों में प्राचीन साज सज्जा के पर्याप्त प्रमाण मिलते हैं। पान खाकर स्त्री और पुरुष के ओठ रचने का उल्लेख अनेक गीतों में हुआ है।

पाना पचासों की बिरिया लगाई,
रच पाये सइयाँ रचाये पाकी धनियाँ।

गीतो म सुरमा और काजल लगान का भी उल्लख मिलता है। स्त्रियाँ अपन लम्बे केशो का कघी से काटती है और सरसो अथवा नारियल का तल लगाती हैं। दाँता म मिस्सी मस्तक पर टिकुली या बेंगी और मस्तक म सि दूर आदि सोलह शृगारो का भी उल्लेख मिलता है। पर म महावर और हाथ म मेंहदी लगाने का सामान्य प्रचलन है। कनौजी लोकगीतो म आधुनिक प्रसाधना का उल्लेख भी मिलता है।

आमोद प्रमोद

ग्रामीण जनता क आमोद प्रमोद के साधन मेले और खेल तमाशे हैं। आसपास होने वाल मेला म ग्रामीण लाग जात हैं और भाँति भाँति की दुकानो को देखकर अपन मन का प्रसन्न करते हैं। मेले विशेष रूप से गगा स्नान क अवसर पर अथवा किसी देवी देवता के स्थान पर लगत हैं। इनमे खल-तमाशे भी आत हैं और इन्हे ग्रामीण लोग देखत हैं। मेल म यह लाग 'जवार' ले जात हैं। जवार का अथ जो से है। किसी देवता के स्थान पर जो बोये जात हैं। और नियत समय पर यह जो उखाडकर दवता को साथ लेकर मले म सिराय जात हैं। मेल म जात समय ग्राम की स्त्रिया और पुरुष इकट्ठा होते हैं। स्त्रियाँ दवी क गीत गाती हुई तथा पुरुष लाठी और तलवार को घुमाने आदि की प्रतिमा दिखात हुए चलते हैं। इस प्रकार दवता की पूजा भी होती है और साथ ही साथ ग्रामीणा का मनोरजन भी। खल-तमाशे वाले ग्रामा म आकर ग्रामीणा का मनोरजन कराते हैं। होली बडे हर्ष का त्योहार है और इसम ग्रामीण लोग ढोलक, मँजीरा के साथ फाग गात हैं। निम्न वग की स्त्रिया और पुरुष ऐसे अवसर पर नृत्य भी करते हैं।

लोकगीता म मनोरजन के लिए पसासारी खेलन के भी प्रसग आए हैं। एक गीत मे लक्ष्मणजी 'पसासारी खेल रहे हैं—

लछिमन खेले पसासारी राम खिलामैं रे।
सीता भउजी ठाढी तीर खेल कह देखे रे।

शिकार खेलन का भी उल्लेख अनेक गीतो म हुआ है। एक गीत म बहन कहती है कि मेरा भाई शिकार खेलने क लिए जा रहा है और मैं उस आशीष देती हू—

मोरे भइया चले खेलन सिकार लए धनुबाना हैं रे।
भइया बहिनी है देत असीस देवी करें रच्छा रे।

खान पान

लोक-साहित्य म विविध प्रकार की खान-पीने की वस्तुआ का उल्लख पाया जाता है। इन वस्तुओ से हम सरलता पूवक अनुमान लगा सकते हैं कि लोगा की किन

वस्तुओं के खाने की ओर अधिक अभिरुचि है। कनौजी लोक साहित्य के अध्ययन से हमें इस बात का पता चलता है कि इस जनपद के लोगों की रुचि सात्विक भोजन में ही रही है और यही कारण है कि इस प्रदेश में अनेकानेक विचारकों का प्रादुर्भाव हुआ। नीचे कुछ भोज्य पदार्थों का वर्णन किया जाता है जिनका कि लोक-साहित्य में बार-बार नाम आता है।

दाल भात रोटी और घी

लोकगीतों, लोक-कथाओं एवं कहावतों के अध्ययन से पता चलता है कि कनौजी समाज में इन्हीं चार वस्तुओं को आदर्श भोजन समझा जाता है। जब कोई अपनी बहन के यहाँ जाता है तो वह इस भात दाल और रोटी आदि इन सबके साथ घी खिलाना चाहती है। भाई की इस अनुभूति को देखी है—

राँधो न बहुयरि मोरी सोनाखर भात और गहुन की रोटी जी।
राँधो न बहुयरि मोरी दारि उड़द की डारो उड़प घी की धार जी।

यह तो मेहमानों के लिए भोजन हुआ। साधारणतया जौ, चना, ज्वार और मटर की रोटी का उल्लेख भी मिलता है। कोदों और सवाँ का उल्लेख भी हुआ है जो कि गरीबों का भोजन है। दालों में अरहर, मूँग और मोठ का भी उल्लेख मिलता है। उपर्युक्त भोजन तो दैनिक भोजन के अन्तर्गत आते हैं परन्तु त्योहारों के अवसर पर खीर, पूड़ी, पिटउआ आदि बनते हैं जिन्हें लोग बड़े चाव के साथ खाते हैं।

कनौज प्रदेश में सत्तू का भी अत्यधिक प्रचलन है। इसका उपयोग प्रातःकालीन कलेवा के रूप में किया जाता है। इतना ही नहीं यात्रा मेला आदि जाने के लिए यह लाभप्रद भोज्य पदार्थ है। अन्य वस्तुएँ जैसे पूड़ी आदि शीघ्र ही खराब हो जाती हैं। सत्तू के अतिरिक्त लड्डू का भी वर्णन मिलता है। जिन लड्डुओं का उल्लेख गीत में आता है उसका आशय उन लड्डुओं से है जो भुने हुए आटे और गुड़ से तैयार किए जाते हैं।[1] फलों में नीबू, नारंगी,[2] अमरूद, अनार का बार-बार नाम आता है। मिठाइयों में पेड़ा, बर्फी, जलेबी आदि मुख्य हैं।[3]

पेय पदार्थों में दूध का उल्लेख बार-बार आता है। स्त्रियाँ देवी से प्रार्थना करती हुई दूध की याचना अवश्य ही करती हैं। दूध के महत्व का पता हमें तब चलता है जब हम देखते हैं कि आशीर्वाद में भी "दूधन पूतन फलो" का उल्लेख मिलता है। गौना में स्त्रियाँ अपने पतियों को मदिरापान करने से रोकती हैं। लोकगीतों में ऐसन

---

१ अनिल—कनउजी लोकगीत पृ० २५६।
२ वही पृ० २४८।
३ वही पृ० २५८।

प्रकार के भोजन[1] का उल्लेख मिलता है, परन्तु स्पष्ट रूप से उनके नाम नहीं बतलाए गए हैं। विवाह के समय जब ज्योनार होती है और ज्योनार-गीत गाए जाते हैं तो उनमें अनेक प्रकार के भोज्य पदार्थों का वर्णन हम पाते हैं। एक ज्योनार में कचौड़ी, पूड़ी मस्ता मालपुआ, रसगुल्ला, पेड़ा इमिरती खुरचन, बालूसाही, कलाकन्द, गुझिया, लड्डू, बर्फी रबड़ी, जलेबी, नानखताई मोतीचूर बसनी लड्डू, मठरी, पापड़, कचरी, मूली, जिमीकन्द टिंडा परवल, मेथी, बथुआ, कुलफ़ा, कमरख चटनी दाल-मोठ समोसे, आलू की टिकिया दही बड़ा, अदरख की पकौड़ी सोंठ, रायता, गाजर का हलुआ, पेठा, गजक नीबू आम मिर्च और टेंटी के अचार और अनेक प्रकार के मुरब्बा का उल्लेख मिलता है। अन्त में गीतकार कहता है कि छप्पन प्रकार के भोजन परोसे गए इनका कौन कवि वर्णन कर सकता है।[1] वास्तव में यह गीत आधुनिक काल का है।

यह नहीं कहा जा सकता कि कनौजी लोग पूर्णरूपेण शाकाहारी ही हैं। वे मांस का भी भक्षण करते हैं जिसका कि उल्लेख गीतों में हुआ है। एक बहन भाई से कहती है कि साम छीके पर रँधी हुई मछलियों के टँगे होने पर भी उसे रोटी पर नमक तक नहीं देती।[2] अन्य गीतों में मल्लाह किसी स्त्री को प्रलोभन देता है कि तुमको मैं मछली का सुस्वादु मांस खिलाऊँगा। सोहर गीतों में वर्णन मिलता है कि हरिणी कौशल्या से कहती है कि मांस तो तुम्हारी रसोई में सीझ रहा है, मुझे मेरे हरिण की खाल वापस कर दो।[3] मोर के मांस खाने का उल्लेख भी गीतों में मिलता है।

भोजन के इस विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि कनौजी लोग अधिकांश शाकाहारी ही हैं। मांस भक्षण के प्रसंग बहुत ही कम हैं।

पत्र तथा संदेश वाहन

प्राचीन भारत में आज की भाँति संदेश भेजने और मँगाने के साधन नहीं थे। संस्कारों में सगुन और विवाह का निमंत्रण नाई देने जाता था और इस प्रकार गीतों में पत्र का उल्लेख कम ही मिलता है। इससे अनुमान किया जा सकता है कि नाई मौखिक रूप से सन्देश कह देता था। संस्कारों में विवाह के समय लग्न का पत्र अवश्य जाता था जिसे पीली चिटठी कहते हैं। यह प्रथा आज भी प्रचलित है। इस चिटठी में विवाह के समय होने वाले विविध मुहूर्तों का उल्लेख रहता है।

पत्नी का लोकगीतों में अधिक उल्लेख पत्नी का पति के पास भेजने का आता है। इसकी बड़ी ही प्राचीन परम्परा है। महाकवि कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तल में शकुन्तला नलिनी पत्र पर अपने प्रिय दुष्यन्त के लिए नख से पत्र लिखती है।

१ अनिल—कनउजी लोकगीत पृ० २५६।

२ वही, पृ० २६७।

३ वही, पृ० २६८।

इस परम्परा का निर्वाह निरन्तर रूप से लोकगीत में मिलता है। विरहिणी स्त्रियाँ अपने पतियों को अपने दुःख को लिखकर भेजती हैं और उन्हें उपालम्भ देते हुए लौट आने की प्रार्थना करती हैं। अब प्रश्न उठता है कि उन पत्रों को ले कौन जाता था? इन पत्रों के ले जाने के लिए भी गीतों में उल्लेख मिलता है कि वे पत्रवाहक कौआ, कोयल आदि ही होते थे। लोकगीतों तथा प्रबन्धकाव्यों में यह कोई विलक्षण कल्पना नहीं है। श्रीहर्ष ने भी हंस को नल और दमयन्ती के प्रेम का माध्यम बनाया है। एक गीत में कोयल से विरहिणी कहती है कि—

कारी कोइलिया तुम बइठी हो अम्बा की डार पै रे।
ले मोरी पाती सुनाय आय निरमोहिया को रे।

एक विरहिणी की समझ में यह नहीं आता कि वह पत्र को किन साधनों से लिखे। वह कहती है—

काए की करों मैं स्याही काए का कागद हो।
काए की करों मैं कलम लिखों जो से पाती हो।

अन्यत्र एक गीत में यह भी उल्लेख आता है कि स्त्री पहाड़ी कायस्थ से पत्र लिखने का अनुरोध करती है—

मोर परोसिया कयथवा तुमही मोर भया हो रे।
मोरी चिठिया लिखो समझाय के निरमोहिया को रे।

धार्मिक जीवन तथा विश्वास

धर्म की परिभाषा करते हुए शास्त्रकार कहते हैं कि जिससे इस लोक में अभ्युदय तथा परलोक में मोक्ष प्राप्त हो वही धर्म है।[1] अन्यत्र कहा गया है कि धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रियनिग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध यह धर्म के दस लक्षण हैं।[2] इस तरह हम देखते हैं कि धर्म कितना ही व्यापक शब्द है। धर्म के इस व्यापक रूप के समझने की शक्ति सामान्य जनता में नहीं है। वह तो देवी-देवताओं की पूजा करना, उनका स्मरण करना और व्रतों का रखना ही धर्म समझती है। धर्म के इसी रूप को देखकर कहा जा सकता है कि कनौजी लोगों का जीवन धर्ममय है। अपने प्रत्येक कार्य में चाहे जुताई हो या बुआई, रोपाई हो या कटाई, सभी में अपने इष्ट को वे नहीं भूलते। इन सबको वे लोग भजनों द्वारा गान किया करते हैं।

लोकगीतों में पञ्चदेवोपासना का भी उल्लेख मिलता है। किसी भी मांगलिक कार्य में पहले पञ्चदेवोपासना होती है। कनौजी लोग बहुत ही उदारमना होते हैं।

---

1 यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः।
2 धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्॥

वे सभी देवताओं की वंदना करते हैं। देवी देवताओं की संख्या इतनी है कि वे बेचारे उनका नाम भी नहीं जानते। एक प्रबन्धगीतकार कहता है कि—

'सब को हम गावैं सब मनावैं सबके न जानैं हम नाँव।'

कनौजी क्षेत्र में वैष्णव, शैव, शाक्त, रामानन्दी, कबीरपंथी आदि सभी मतों के मानने वाले मिलते हैं। परन्तु इस क्षेत्र में सबसे अधिक राम के उपासक हैं। राम के उपासक का आशय यहाँ यह है कि अन्य देवताओं की उपासना करते हुए भी वे लोग रामचन्द्र को प्राथमिकता देते हैं। राम को वह स्रष्टा मानते हैं। एक प्रबंध-गीत में उल्लेख आता है कि—

'पहिले हम सुमिरैं रामचन्द्र कौ जिन्ने पिंडी तो दई है बनाय।'

राम की कथा को आधार बनाकर सैकड़ों भजन मिलते हैं जिनमें पृथ्वी का उद्धार करने वाले, पापों का नाश करने वाले, दीनों के नाथ और दुष्टों के दलन करने वाले रूप का ध्यान किया गया है। राम नाम के स्मरण का महत्व दिया गया है। कृष्ण को भी भगवान् के रूप में माना गया है। लोक गीतों में कृष्ण का गोप गोपियों के साथ क्रीडा करने वाला, गोचारण करने वाला तथा नन्द-यशोदा और ग्वालों को आनन्द देने वाला रूप तो चित्रित है ही साथ ही साथ असुरों का संहारक महाभारत में अर्जुन के सहायक तथा उपदेशक का रूप भी मिलता है। अनेकों लोक गीत ऐसे हैं जिनमें होली के प्रसंग में कृष्ण की विविध लीलाओं तथा क्रीडाओं का उल्लेख मिलता है। भजनों में कृष्ण के महाभारत में दिए गए युद्ध उपदेश का भी उल्लेख मिलता है।

शिव की उपासना भी की जाती है और भजनों तथा जाँत के गीतों में गौरा का विवाह और असुरों के संहार आदि का उल्लेख मिलता है। शिव को भी ईश्वर के रूप में प्रतिष्ठा की गई है। शीतला, दुर्गा, काली, फूलमती, जहरा देवी, ज्वाला देवी आदि की भी पूजा की जाती है जिनका उल्लेख देवी के गीतों में मिलता है।[1]

ग्रामीण लोग अधिकांश अशिक्षित हैं अतः वे लोग भूत प्रेतों, जादू टोना में भी विश्वास करते हैं और इनसे भयभीत रहते हैं। विवाह गीतों में बतलाया जा चुका है कि भूत प्रेतों को विवाह में निमन्त्रित करके उन्हें एक घड़े में बन्द कर दिया जाता है और उनसे प्रार्थना की जाती है कि वे विवाह को निर्विघ्न रूप में सम्पन्न हो जाने दें। लोगों का विश्वास है कि ये भूत प्रेत कष्ट देने वाले होते हैं, अतः इनको प्रसन्न रखने से ही भला है। जखई इन भूतों का सरदार माना जाता है। इसकी पूजा बड़ी धूम धाम से की जाती है और इसकी वन्दना में जो गीत गाये जाते हैं उन्हें 'जस' कहते हैं। मुसलमानों के साथ रहते रहते इन लोगों पर उस सभ्यता का भी प्रभाव पड़ा है। मनुष्य पर जब संकट पड़ता है तो वह उचित अनुचित का विवेक खो देता है और यही कारण है कि कनौजी लोगों पर जब कोई संकट आता है और वे बीमार

१ अनिल—कनउजी लोकगीत, पृ० २७३-७४

होते हैं। जब कभी इन पर जल का प्रकोप होता है तो वे मदार और पीर की भी पूजा करते हैं। गंगा या पास के किसी नदी की भी कल्पना की जाती है और उसका नाम स्मरण किया जाता है—

एरी तक की मुइयाँ मनाता तुम्हरे सवै हम नांव।

यह तो सगुण उपासना का विवेचन हुआ परन्तु कुछ ऐसे गीत भी पाये जाते हैं जिनमें निर्गुण की उपासना की जाती है। लोककार सगुण उपासना में गाया करता हुआ करता है—

भगवन बहुत तुम्हें रिझावैं।
नाम पुकार तुम्हारे गावैं दिन में ध्यान लगावैं।
ध्यावत साधु पुरुष मूरति में बहुतै गुन व तुम्हें चढ़ावैं।
पावन करन पार दुनिया को सिर का भार लगावैं।
कर पग नीत नहीं पद तुम्हरे अब हम चाहत कहाँ लगावैं।
रामचरन है यह मति तुम की बिच हरगन पावैं।
अम्बर गगन रात दिन तुमको निराकार मिलिहो बहि ठावैं।

कन्नौजी गीत में संस्कारों का भी धार्मिक उत्सव का ही रूप माना गया है। संस्कारों के समय किए जाने वाले विधान आचार हैं उनसे धार्मिकता का पुट रहता है। संस्कारों का पृथक रूप से विवेचन किया जाता है। अतः उनसे सम्बद्ध धार्मिकता का यहाँ विवेचन नहीं किया गया है।

भाग्य का दैवी शक्ति से सम्बन्ध

लोकगीतों में भाग्यवाद बहुत अधिक मात्रा में पाया जाता है। भाग्य की प्रबलता और कर्म की दुर्निवारता का वर्णन गीतों एवं कथाओं में बड़ी मार्मिक रीति से हुआ है। कर्म का रेखा अमिट है उसके मिटाने का सामर्थ्य किसी में नहीं है इस भाव का वर्णन एक गीत में मिलता है। बालक के जन्म के अवसर पर ज्योतिषी कहता है कि यह बालक बड़ा होकर पापी हो जाएगा तो माता कहती है कि हे ज्योतिषी! तुम्हारे पत्री-पत्रे में आग लग जाय। तब ज्योतिषी उत्तर देता है कि कागज को फाड़कर फेंका जा सकता है पर भाग्य को नहीं मेटा जा सकता। विधाता ने जो लिख दिया उसे कौन मेट सकता है—

कागद फाड़ डारो फारि के फेर।
करम न मेटो जाय मोरे रामा।
लिखनवारो तो बरम्हा रानी।
उनको लिखो को मेट मोरे रामा॥

इसी प्रकार अन्य गीतों में भी भाग्यवाद का बार-बार प्रसंग आया है।

आर्थिक जीवन

लोक-साहित्य में यत्र तत्र जनता की आर्थिक-अवस्था का भी उल्लेख पाया जाता है। इन उल्लेखों से ऐसा प्रतीत होता है कि लोक साहित्य में वर्णित समाज अत्यन्त समृद्ध है। सामान्य जनता के पास खाने-पीने के लिए पीतल के बरतनों तक का अभाव होता है, परन्तु गीतों में खाने के लिए सोने के थाल और पीने के लिए भी सोने के गडुए का ही प्रयोग किया जाता है—

सोने के थारन भुजना परोसे जेंमें सिरिकिस्न जिमामे राधा प्यारी।
सोने के गडुआ गंगाजल पानो पियें सिरिकिस्न पियामें राधाप्यारी।

शयन करने के लिए भी चन्दन के पलंग और उस पर पुष्पों की शय्या का ही उल्लेख मिलता है—

फूलन वारी की सेजा बिछाई सोमें सिरिकिस्न सुआमें राधा प्यारी।

इन गीतों में विविध भोज्यपदार्थों का भी वर्णन होता है। बरात के आने पर जिन अनेक भोज्यपदार्थों का गीतों में उल्लेख मिलता है[1] उनसे अनुमान किया जा सकता है कि जनता का आर्थिक स्तर बहुत उच्च है। जन्म, मुंडन यज्ञोपवीत, विवाह संस्कारों के गीतों में उल्लेख मिलता है कि नेग माँगने वालों को हाथी-घोड़े और बहुमूल्य वस्त्र एवं आभूषण प्रदान किए जाते हैं। विवाह में वरपक्ष वालों को दहेज से मालामाल कर दिया जाता है। यह तो रही गीतों की बात परन्तु वास्तविकता यह है कि इस प्रदेश की जनता की आर्थिक-स्थिति अच्छी नहीं है। लोग भरपेट भोजन और पहनने के लिए मोटे कपड़े बड़ी कठिनता से पाते हैं।

राजनीतिक जीवन

लोक-साहित्य के अनुशीलन से यह ज्ञात होता है कि मुगलकाल का शासन बड़ा ही क्रूर था। किसी की प्रतिष्ठा सुरक्षित नहीं थी। रास्ते में चलने वाली स्त्रियों पर मुगल लोग आक्रमण करते थे और उन्हें अपने अन्तःपुर में ले जाते थे। गृहस्थों के घर पर आक्रमण करके भी मुगल लोग कन्याओं को छीनकर उनसे विवाह कर लेते थे। स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में अनेकों गीत मिलते हैं। एक कथा गीत में ब्राह्मण कन्या किसी पुरुष से अपनी रक्षा की प्रार्थना करती हुई कहती है कि मुगलों ने मेरे भाई और पिता को मार डाला है। मैं उनके डर से जंगल में छिपी हूँ। तुम मेरी रक्षा करो—

जाति हमारी बाम्हन है यहि रन बन में।
दूल्हा मुगिल के डरते दुबी हो यहि रन बन में।
मार डारे भइया औ बाप तो यहि रन बन में।
दूल्हा मुगिल के डर ते दुबी यहि रन बन में।

---

१ अनिल—कनउजी लोकगीत पृ० २५६

वह वीर पुरुष उस स्त्री को अपने घोड़े पर बिठा लेता है। परन्तु मुगलों के उत्पात के कारण कहीं भी जाना कठिन है। मार्ग में वह पचास मुगलों द्वारा घेर लिया जाता है, पर वह सबको मृत्यु के घाट उतारता है और उस अबला का उद्धार करता है—

दूल्हा काढ़ि लई तरवार तौ यहि रन बन मैं।
ठाढ़े इक ओर मुगिल पचास तौ यहि रन बन मैं।
दूल्हा ठाढ़े इक ओर अकेले तौ यहि रन बन मैं।
जूझे मुगिल पचास तौ यहि रन बन मैं।

एक दूसरे गीत में मुगलों के द्वारा किसी व्यक्ति का घर घेरकर उससे लड़ने का वर्णन मिलता है। बहन कहती है कि हे भाई! जल्दी जल्दी भोजन करो, क्योंकि लड़ने के लिए मुगल बाहर खड़े हैं—

बिरना जल्दी-जल्दी जेमौं बलया लेउ बीरन।
बिरना मुगल लड़ाई को ठाढ़े बलइयां लेउ बीरन॥

आल्हा गीत में भी राजनीतिक स्थिति का चित्रण हुआ है। उस समय एक राजपूत की कन्या का दूसरे राजपूत द्वारा अपहरण साधारण सी बात थी। एक राजा का दूसरे सामन्तों तथा छोटे राजाओं से कर लेने का उल्लेख भी इसमें मिलता है। आल्हा में विवाह तथा कर के विषय को लेकर ही विविध युद्ध होते थे।

लोक कथाओं में राजाओं के पराक्रम मन्त्रियों की सूझ-बूझ, राजकुमार और राजकुमारियों के विवाह के प्रसंग सामान्य जनता से राजा मन्त्री और राजकुमारों का व्यवहार, राजा की दानशीलता आदि के उल्लेख मिलते हैं। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि लोक साहित्य में राजनीतिक जीवन की चर्चा विरल ही है।

विविध संस्कारों का चित्रण

संस्कृति शब्द संस्कृत भाषा की कृ धातु में 'सम्' उपसर्ग तथा 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से बना है। इसका शाब्दिक अर्थ अच्छी स्थिति सुधरी हुई स्थिति' है, परन्तु इसका भावार्थ अधिक विशद एवं विस्तृत है। संस्कृति से मानव समाज की उस स्थिति का बोध होता है जिससे उसे सुधारा हुआ ऊँचा जीवन के उच्चतर मूल्यों में विश्वास करने वाला माना जाए। भारतीय धारणा के अनुसार मनुष्य तभी पूर्ण रूप से संस्कृत माना जाता है जबकि वह धर्म अर्थ काम और मोक्ष—चारों की प्राप्ति कर सके। मानव-जीवन को संस्कृत बनाने के लिए जिन जिन प्रक्रियाओं को अपनाया जाता है भारतीय संस्कृति में उन्हें संस्कारों की संज्ञा दी गई है। जन्म से मृत्यु-पर्यन्त इन संस्कारों की व्यापकता रहती है इसीलिए इन्हीं संस्कारों में सांस्कृतिक जीवन की पूर्ण झाँकी मिल जाती है। इसी तथ्य को लक्ष्य में रखकर संस्कारों के

विस्तृत विवेचन द्वारा सांस्कृतिक जीवन के चित्रण को सटीक बनाने का प्रयास किया गया है। प्राचीन वैदिक साहित्य एवं स्मृतिग्रंथों में इन संस्कारों की संख्या सोलह दी गई है। ये सोलह संस्कार निम्न प्रकार से हैं—

१ गर्भाधान	९ कर्णवेध
२ पुंसवन	१० उपनयन
३ सीमन्तोन्नयन	११ वेदारम्भ
४ जातकर्म (जन्म)	१२ समावर्तन
५ नामकरण	१३ विवाह
६ निष्क्रमण	१४ वानप्रस्थ
७ अन्नप्राशन	१५ संन्यास
८ चूडाकर्म	१६ अन्त्येष्टि

इन्हीं उपर्युक्त ग्रंथों में विभिन्न संस्कारों के अनुष्ठान के लिए पृथक् पृथक् मंत्र दिए गए हैं, जिससे ज्ञात होता है कि प्राचीन काल में प्रत्येक संस्कार विधिवत मनाया जाता होगा। परन्तु आजकल कनौजी प्रदेश में विशेषरूप से सर्वसाधारण जनता में, गर्भाधान, पुंसवन, निष्क्रमण, वेदारम्भ, समावर्तन तथा वानप्रस्थ संस्कार लुप्त हो चुके हैं, यह भी हो सकता है कि सामान्य जनता में ये कभी मनाए ही न गए हों, इनका सम्बन्ध केवल शिक्षित एवं सवर्ण लोगों तक ही रहा हो और इसीलिए इन संस्कारों से सम्बन्ध रखने वाले लोकगीत या किसी प्रकार की भी लोकाभिव्यक्ति उपलब्ध नहीं होती। सोलह संस्कारों में वस्तुतः जातकर्म (जन्म) विवाह और अन्त्येष्टि (मृत्यु)—तीन संस्कार अधिक महत्वपूर्ण हैं। इसका कारण यह है कि ये मानव-जीवन की तीन महानतम घटनाओं से सम्बन्ध रखते हैं। जन्म तथा विवाह का मानव जीवन की प्रजननक्रिया से एवं मृत्यु का उसके अवसान से सहज सम्बन्ध है। मानव अपनी वंश-परम्परा की धारा को सतत रूप में प्रवहमान रखना चाहता है, इसका एकमात्र साधन है प्रजनन और यही कारण है कि वह प्रजनन क्रिया को अधिकाधिक फलवती बनाने के लिए उत्सुक एवं प्रयत्नशील रहता है। इसी उत्सुकता के कारण मानव ने देश काल की सीमाओं के बंधन को तोड़कर प्रजनन क्रिया में महान आकर्षण और सौन्दर्य का दर्शन किया है। इसके विपरीत मृत्यु तो जीवन का अवसान ही कर देती है अतः उसकी भयंकरता से भी मनुष्य बहुत अधिक प्रभावित हुआ है। मृत्यु संस्कार बड़े विधि विधान के साथ सभी देशों और जातियों में मनाया जाता है पर इस संस्कार से सम्बद्ध लोकमानस की अभिव्यक्ति कम ही हो पाई और परिणाम-स्वरूप इस विषय का लोकसाहित्य बहुत कम मात्रा में पाया जाता है। भारतीय लोक-साहित्य में तो इस अवसर के गीतों का प्रायः अभाव ही है, हरियाना प्रदेश में

अवश्य ही कुछ गीत उपलब्ध होते हैं।[1] इसके विपरीत जन्म तथा विवाह-संस्कारों का बड़ा ही विशद वर्णन कनौजी लोक-साहित्य में भी मुखरित हुआ है। इस तरह संस्कारों में से सीमन्तोन्नयन, नामकरण, अन्नप्राशन, चूड़ाकर्म, कर्णवेध, उपनयन—ये संस्कार भी कनौजी लोकसाहित्य में अपना स्थान रखते हैं। आगे इन संस्कारों का ही विवेचन प्रस्तुत किया जाएगा।

संस्कारों का लोक-साहित्य से सम्बन्ध

लोक-कहानियों में संस्कारों का संकेत मात्र ही उपलब्ध रहता है। प्रबन्ध गीतों में अपेक्षाकृत कुछ विस्तार से परन्तु लोकगीतों में संस्कारों का सांगोपांग वर्णन रहता है। लोकगीतों के बिना तो कोई संस्कार सम्पन्न होता ही नहीं दिखाई पड़ता। संस्कार के समय जितनी भी प्रथाओं का पालन होता है जितने भी लोकाचारों का सम्पादन होता है उन सबका निर्देश करने वाले लोकगीत भी होते हैं। इसीलिए तो कहा जा सकता है कि संस्कारों और लोक-साहित्य का बहुत घनिष्ठ सम्बन्ध है। संस्कारों का अध्ययन अप्रत्यक्ष रूप से लोकगीतों, लोक प्रथाओं और लोकाचार (फोकवेज) के अध्ययन के रूप में परिणत हो जाता है।

जो जो संस्कार समाज में प्रचलित हैं उनमें से नामकरण, उपनयन, विवाह और अन्त्येष्टि—ये ऐसे संस्कार हैं जिनको शास्त्रीय पद्धति द्वारा मन्त्रोच्चारण के साथ सम्पन्न किया जाता है। इनके सम्पादन के लिए पुरोहित की अपेक्षा पड़ती है परन्तु शास्त्रीय पद्धति के समानान्तर लौकिक पद्धति भी चलती है। एक ओर मन्त्रोच्चारण होता है और दूसरी ओर स्त्रियाँ लोकगीतों द्वारा अनेक प्रथाओं और अनुष्ठानों को भी चलाती रहती हैं। उपनयन और विवाह संस्कारों में भी अनेक ऐसी प्रथाएँ हैं जिन्हें पुरोहित सम्पन्न नहीं कराता, स्त्रियाँ ही उसे पूरा कर लेती हैं। शेष संस्कार विशुद्ध लौकिक रीति द्वारा सम्पन्न होते हैं। इनमें जिन लोकाचारों का पालन किया जाता है उनका उल्लेख न तो शास्त्र में ही होता है और न उनके अनुष्ठान के लिए पुरोहित की ही आवश्यकता होती है। स्त्रियाँ ही लोकगीतों के साथ इनको कर लेती हैं। इन संस्कारों में गाए जाने वाले लोकगीतों की सत्ता से किसी प्रकार कम महत्त्वपूर्ण नहीं माना जाता। संस्कारों और लोक-साहित्य के सम्बन्ध की अविच्छिन्नता को देखकर कहा जा सकता है कि लोक-साहित्य आज भी लोक को अनुप्राणित करने की शक्ति रखता है। वह केवल अतीत की वस्तु न होकर पूर्णरूप से सामयिक लोकमानस की शिराओं में प्रवहमान है। लोक-साहित्य के इसी पक्ष को दृष्टिबिन्दु में रखकर आगे कनौजी प्रदेश में उपलब्ध संस्कारों का विवेचन तथा जिन लोकाचारों और प्रथाओं का पालन किया जाता है उनका भी यथास्थान निर्देश किया जाएगा।

१ डा० शंकरलाल यादव—हरियाना प्रदेश का लोक-साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद (१९६०), पृ० १९८-२०१

सामतोन्नयन सस्कार

ऊपर कहा गया है कि कनाजी प्रदेश मे गर्भाधान एव पुसवन सस्कार नहीं मनाय जात हैं। मनाय जान वाल सस्कारा मे पहला सस्कार सीम तो नयन है। लोक-साहित्य म यह इस नाम से प्रचलित न होकर साध पूजना' नाम से पुकारा जाता है। यह सस्कार गर्भाधान के पश्चात सातवें और आठवें महीन म होता है। चौक पूर कर उस पर पति पत्नी को बिठाया जाता है और गीत गाए जाते हैं। गर्भिणी स्त्री को खाने-पीने या अय किसी प्रकार की वस्तु को प्राप्त करन की जो इच्छाएँ होती हैं, उनको पूरा करना ही इस सस्कार का उद्देश्य माना जाता है। इन इच्छाओ को ही 'साध' (दोहद) कहा जाता है। इस समय जो गीत गाए जात हैं उनमे स्त्री की विविध 'साधों का उल्लेख तो रहता ही है साथ ही साथ यह भी वणन होता है कि पति उनको पूरा करने के लिए भी प्रयत्न करता है, चाहे उसे कितने ही बडे सकट मे क्यों न पड जाना पडे। एक लोकगीत मे गर्भिणी की इच्छा का इस प्रकार कथन किया गया है—

'सकल वस्त मेरे घर में एको नहिं भावे है रे।
नौरगिया की साध नौरगिआ लइ आवो है रे।

पति नारगिया' लन क लिए रात्रि म उद्यान जाता है पहरेदार उसे पकड लेते हैं। जब वह बतलाता है कि अपनी पत्नी की साध क. पूरा करने के लिए वह नौरगिया लन आया है तो वह मुक्त कर दिया जाता है और वापस आकर अपनी पत्नी को नौरगिया खिलाकर उसकी साध' पूरी करता है। साध का इसलिए और भी अधिक सम्मान किया जाता है कि लोक विश्वास में यह धारणा है कि स्त्री की साध पूरी करन स उदरस्थ शिशु की इच्छाएँ स तुष्ट हाती हैं और वह तजवी एव वीयवान बनता है। साध पूजन के समय गाए जान वाल गीता म गर्भिणो की नौ मास की दशा का भी वणन रहता है।

सइआ लगाई नौरगिआ रस रस डोले।
जब नौरगिआ में दुइ दुइ पतउआ काए धना उबकानो
रस रस डोले।

o o o

जब नौरगिआ में नौ नौ पतउआ काए धना पिअरानो
रस रस डोले।

जातकम सस्कार

जिस प्रकार साध पूजन के समय पुराहित की आवश्यकता नहीं पडती उसी प्रकार जातकम सस्कार भी विशुद्ध लौकिक पद्धति से सम्पन्न किया जाता है। पुत्र-जन्म होते ही 'थाली' बजा दी जाती है और परिवार तथा ग्राम की स्त्रियाँ मिलकर

'सोहर' गाने लगती हैं।[1] धनकुनि[2] को पहले ही बुला लिया जाता है। वह शिशु के गले को उँगली डालकर साफ करती है और जिह्वा पर शहद रख देती है। शहद पेट में पहुँचता है और शिशु की पाचन क्रिया ठीक हो जाती है। 'धाय' शिशु के 'नाल को काटता है' जिसके लिए उसे नेग मिलता है। कभी-कभी वह नेग के लिए रूठती हुई भी दिखाई पड़ती है।[3] नाल काटने के बाद शिशु को स्नान कराया जाता है।

सौरि (सूतिका-गृह) के द्वार के पास 'बसिआ' (आग जलाने के लिए कच्ची मिट्टी का बड़ा सा पात्र) में उपले, लकड़ी तथा धान की भूसी आदि डाल कर निरन्तर अग्नि प्रज्वलित रखी जाती है। लोक विश्वास के अनुसार ऐसा करने से सूतिका-गृह में भूत प्रेतादि नहीं प्रवेश कर सकते। वायु शुद्धि के लिए अग्नि में गन्धक भी डाला जाता है। लोक गीतों में सोने की बसिआ में चन्दन की लकड़ी डालने का वर्णन मिलता है। सूतिका-गृह की रक्षा के लिए द्वार पर एक न एक व्यक्ति चौबीस घण्टे रहता है। इसके भीतर धाय के अतिरिक्त साधारणतया कोई अन्य व्यक्ति नहीं जा सकता। सदैव इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अन्दर बिल्ली न घुस पाए क्योंकि लोक विश्वास के अनुसार बिल्ली को यम[4] माना जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी भय रहता है कि बिल्ली शिशु की आँखें न निकाल ले।

एक मिट्टी के घड़े में औषधियाँ डालकर पानी को उबाला जाता है और वही जच्चा को मिलता है। पानी उबालने के पहले मिट्टी के इस 'चरुए' (घड़े) को गोबर से चित्रित करना फिर औषधि डालकर पानी उबालने का सारा कार्य सास करती है और उसे इसके उपलक्ष्य में नेग मिलता है। लोकगीतों में भी सास के नेग का उल्लेख मिलता है।[5] इसी समय ननद द्वारा सतिया (स्वस्तिक चिह्न) भी रखवाई जाती है। ननद भी मनचाहे नेग लेने के पश्चात् ही अपना कार्य करती है। जेठानी 'पीपर' पिसाती है और वह नेग के लिए रूठती है।

'छठी' संस्कार

इस संस्कार का शास्त्रों में निर्देश नहीं मिलता परन्तु कनौजी प्रदेश में यह

---

१ बाजे अनंद बधाए उठन लगे सोहर हो।

२ 'धाय' का कार्य करने वाली।

३ आवौ न धनकुनि नारा न छीनौं।

४ अहमी दाई हरजाई लाल को नारा न छीनै।
नारा छिनाई अजुध्या मौरि मथुरा मोंगि हनवाई
लाल को नारा न छीनै।

५ 'आवौ न सास चरुआ तौ धराय देव।
चरुआ धराई तुम्हें तिलरी गढ़ाय देयँ।'

सभी स्थानो पर मनाया जाता है। शिशु-जन्म के छठे दिन सूतिका-गृह एव पूरे घर को साफ कराया जाता है। सन्ध्या समय पास-पड़ोसियो को निमन्त्रित करके उन्हे भोजन कराया जाता है। छठी की पूजा होती है।[1] ननद भतीजे की 'आखें' आँजने के उपलक्ष्य मे दक्षिणा लेना चाहती है—

लड़के भतीजे की बइठो सहुवरा आव कुछ देव भउजाई।
सौ लाख गउएँ सबाव लाख भैंइसी तब हम कर अँजाई॥

इसी अवसर पर देवर से तीर सधाया जाता है। यह तीर सीको का बना होता है। देवर भी भाभी से रूठता है और मनोवाछित दक्षिण प्राप्त करता है। 'चरुआ धराई', सतिया धराई' 'आख अँजाई', 'तीर मराई'—जिन जिन क्रियाओ का ऊपर वर्णन किया गया है उन उन सबके लिए शिशु की माता को नेग देना पडता है। लोकगीतो मे एक ओर तो वर्णन मिलता है कि नेग के लिए शिशु के माता पिता दिल खोलकर दान देते हैं पर दूसरी ओर यह भी दिखलाया जाता है कि कभी कभी माता नेग नहीं देना चाहती है, अत वह अपने पति को आदेश देती है कि इन समस्त कार्यों को उसकी माता बहन और भाई से करा लेना अन्यथा सारा धन लूट मे ही चला जाएगा—

हम तो अकेली सँइआ सब न लुटाय दीजो।
सासू जो आमैं सँइआ द्वारे ते लौटाय दीजो।
सासू को नेग मोरी अम्मा प धरवाय लीजो।
ननदी जो आमैं सँइआँ उनहू को लौटाय दीजो।
ननदी को नेग मोरी बहिनी प कराय लीजो।
दिउरा जो आमैं सइआ उनहू को लौटाय दीजो।
दिउरा को नेग मोरे भइआ प कराय लीजो।

नेग देने के सम्बन्ध मे अन्य लोगो से इतना विरोध नही प्रकट किया गया है जितना कि ननद से। भाभी ननद का पुत्र जन्म के पहले जिस वस्तु को देने का वचन देती है उसका निर्वाह नही करती। ननद उसी वस्तु को लेने का आग्रह करती है और परिणामस्वरूप कटुता बढती है। ऐसे अवसर पर पति को मध्यस्थ बनना पडता है और वह पत्नी को समझा बुझाकर बहन को नेग के लिए तयार कर देता है। भाभी नेग दे तो देती है पर फिर भी कुछ व्यग्य भरी वाणी अवश्य बोलती है—

लइजाव लइजाव हरामजादी कगना लालन के नए।'

नामकरण सस्कार

इस सस्कार को कनौजी मे 'दटठौन' कहते हैं। यह जन्म के दसवें दिन होता है। इस दिन पुन घर को लीप पोत कर पवित्र बनाया जाता है तथा जच्चा-बच्चा

---

1 'चलो छठी पूजिए जाई'।

'सोहर' गाने लगती हैं।[1] 'धनकुटि'[2] को पहले ही बुला लिया जाता है। वह शिशु के गले को उँगली डालकर साफ करती है और जिह्वा पर शहद रख देती है। शहद पेट में पहुँचता है और शिशु की पाचन क्रिया ठीक हो जाती है। 'धाय' शिशु के 'नाल' को काटती है[3] जिसके लिए उसे 'नेग' मिलता है। कभी-कभी वह नेग के लिए रूठती हुई भी दिखलाई पड़ती है।[4] नाल काटने के बाद शिशु को स्नान कराया जाता है।

सोरि (सूतिका गृह) के द्वार के पास 'बरसिया' (आग जलाने के लिए कच्ची मिट्टी का बड़ा सा पात्र) में उपले लकड़ी तथा धान की भूसी आदि डाल कर निरन्तर अग्नि प्रज्वलित रखी जाती है। लोक विश्वास के अनुसार ऐसा करने से सूतिका-गृह में भूत प्रेतादि नहीं प्रवेश कर सकते। वायु शुद्धि के लिए अग्नि में गन्धक भी डाला जाता है। लोक गीतों में सोने की बरसिया में चन्दन की लकड़ी जलने का वर्णन मिलता है। सूतिका गृह की रक्षा के लिए द्वार पर एक न एक व्यक्ति चौबीस घण्टे रहता है। इसके भीतर धाय के अतिरिक्त साधारणतया कोई अन्य व्यक्ति नहीं जा सकता। विशेष इस बात का ध्यान रखा जाता है कि अन्दर बिल्ली न घुस पाए क्योंकि लोक विश्वास के अनुसार बिल्ली का प्रवेश 'अशुभ' माना जाता है। इसके अतिरिक्त यह भी भय रहता है कि बिल्ली शिशु की आँखें न निकाल ले।

एक मिट्टी के घड़े में औषधियाँ डालकर पानी को उबाला जाता है और वही पानी जच्चा को मिलता है। पानी उबालने के पहले मिट्टी के इस 'चरु' (घड़े) को गोबर से चित्रित करना फिर औषधि डालकर पानी उबालने का सारा कार्य सास करती है और उसे इसके उपलक्ष्य में नेग मिलता है। लोकगीतों में भी सास के नेग का उल्लेख मिलता है।[5] इसी समय ननद द्वारा सतिया (स्वस्तिक चिह्न) भी रखाई जाती है। ननद भी मनचाहा नेग लेने के पश्चात ही अपना कार्य करती है। जेठानी 'पीपल' पिसाती है और वह नेग के लिए रूठती है।

'छठी' संस्कार

इस संस्कार का शास्त्रों में निर्देश नहीं मिलता परन्तु कनौजी प्रदेश में यह

---

१ बाजे अनेक बधाए उठन लगे सोहर हो।

२ धाय का कार्य करने वाली।

३ 'आवो न धनकुटि नारा न छीनो।'

४ अइसी दाई हरजाई लाल को नारा न छीनै।
नारा छिनाई अजुध्या माँग मथुरा माँगै हलवाई
लाल को नारा न छीनै।

५ आवो न सास चरुआ तो धराय देव।
चरुआ धराई तुम्हें तिलरी गढ़ाय देवें।'

सभी स्थानो पर मनाया जाता ह । शिशु-जन्म के छठे दिन सूतिका गह एव पूरे घर को साफ कराया जाता है । स ध्या समय पास-पडोसियो को निमन्त्रित करक उन्हे भोजन कराया जाता ह । छठी की पूजा होती है ।[1] ननद भतीजे की 'आखें' आंजने के उप लक्ष्य म दक्षिणा लेना चाहती है—

लइके भतीजे को बइठो सहुदरा आव कुछ देव भउजाई ।
सो लाख गउएँ सवाव लाख भँइसी तब हम कर म्रँजाई ।।

इसी अवसर पर देवर स तीर सधाया जाता ह । यह तीर सींको का बना होता है । दवर भी भाभी स रूठता ह और मनोवाछित दक्षिण प्राप्त करता है । 'चरुआ धराई', सतिया धराई आख अँजाई', 'तीर मराई'—जिन जिन क्रियाओ का ऊपर वणन किया गया ह उन उन सबके लिए शिशु की माता को नेग देना पड़ता है । लोकगीतो मे एक ओर तो वणन मिलता ह कि नेग क लिए शिशु के माता पिता दिल खोलकर दान देते हैं पर दूसरी ओर यह भी दिखलाया जाता ह कि कभी कभी माता नग नही देना चाहती ह अत वह अपन पति को आदेश देती ह कि इन समस्त कार्यों को उसकी माता, बहन और भाई से करा लेना अयथा सारा धन लूट म ही चला जाएगा—

हम तो अकेली सँइया सब न लुटाय दीजो ।
सासू जो आमें सँइआ द्वारे ते लौटाय दीजो ।
सासू को नेग मोरी अम्मा प करवाय लीजो ।
ननदी जो आमें सँइया उनहू को लौटाय दीजो ।
ननदी को नेग मोरी बहिनो प कराय लीजो ।
दिउरा जो आमें सँइया उनहू को लौटाय दीजो ।
दिउरा को नेग मोरे भइया प कराय लीजो ।

नेग देन के सम्बन्ध म अय लोगो से इतना विरोध नही प्रकट किया गया ह जितना कि ननद स । भाभी ननद को पुत्र ज म के पहल जिस वस्तु को देन का वचन देती ह उसका निर्वाह नहीं करती । ननद उसी वस्तु को लेने का आग्रह करती है और परिणामस्वरूप कटुता बढती ह । ऐसे अवसर पर पति को मध्यस्थ बनना पडता ह और वह पत्नी को समझा बुझाकर बहन का नग के लिए तयार कर देता ह । भाभी नेग दे तो दती ह पर फिर भी कुछ व्यग्य भरी वाणी अवश्य बोलती ह—

लइजाव लइजाव हरामजादी बगला लालन के मए ।'

नामकरण सस्कार

इस सस्कार को कनौजी म 'दसठौन' कहते है । यह जन्म के दसवें दिन होता है । इस दिन पुन घर को लीप पात कर पवित्र बनाया जाता है तथा जच्चा-बच्चा

1 चलो छठी पूजिए जाई' ।

का स्नान कराया जाता है। सूतिका गृह में रहते हुए उसके शरीर का प्रसाधन एवं अलंकरण नहीं हो सकता था, उसके केश खुले ही थे, पर ज्यों ही वह बाहर निकलती है स्नान करके स्वच्छ वस्त्र धारण करती है शृंगार करती है और आभूषणों से भी सुसज्जित की जाती है और इसके पश्चात् वह सास जेठानी ननद को प्रणाम करके उनसे आशीष पाती है।

शिशु जन्म के समय यदि पिता परदेश हुआ तो उसे 'रचना' भेजा जाता है। पीछे के अध्याय में इसका उल्लेख किया जा चुका है कि सीता ने ससुराल में लव-कुश के जन्म होने पर रचना भेजा, यह बात अवश्य है कि उन्होंने रोष के कारण राम को विशेष रूप से रचना न भेजने के लिए कहा। पर इससे इतना तो सिद्ध हो ही जाता है कि पति के पास रचना भेजने की प्रथा अवश्य है।[1] इसके अतिरिक्त भाई के पास भी रचना भेजा जाता है और आशा की जाती है कि वह नामकरण संस्कार के दिन तक तो आ ही जाएगा। लोकाचार के अनुसार भाई बहन के घर आता है और कुछ भेंट के साथ बधाई देता है।

भाई परिवार के सभी सदस्य पास पड़ोस के लोग जब एकत्र हो जाते हैं तो जच्चा को आँगन में पूरी गई चौक पर बिठाया जाता है। जच्चा के बैठने के लिए चौक की रचना तथा अन्य एकत्र सामग्री का नीचे लिखे गीत में सविस्तार वर्णन किया गया है—

जब गउआ को गुबर मँगाओ अगन लिपाव री माई।
जब मुतिअन चौक पुराई कलस धराओ री माई।
जब सोनन कलस धराओ दिअना जराओ री माई।
जब मानिक दिअना जराओ पटुली धराई री माई।
जब चन्दन पटुली धराई जसुदा को बुलाय री माई।
जब जसुदा चौक आई कनिआ हीरालाल हैं माई।
जब कनिआँ हीरालाल लाई सुरज अलोप हैं माई।

जब चौक पर जच्चा बच्चा बैठ जाते हैं तो पिता भी पत्नी की दाहिनी ओर बैठ जाता है और पुरोहित मन्त्र करके शिशु का नाम रख देता है। साथ ही स्त्रियाँ सोहर गाती हैं। जन्म और छठी संस्कार का ऊपर वर्णन किया जा चुका है। उनमें विशुद्ध लौकिक पद्धति से ही अनुष्ठान होता है। पुरोहित से तो केवल 'स्नाना' का समय, छठी का मुहूर्त और शिशु मूल नक्षत्र में तो उत्पन्न नहीं हुआ—इन्हीं बातों को पूछा जाता है। पर नामकरण संस्कार शास्त्रीय पद्धति से ही सम्पन्न होता है। संस्कार का मुख्य अंग नाम का रखा जाना और इसके उपलक्ष्य में किए मन्त्र का सम्बन्ध लोकाचार से नहीं है वह तो शास्त्रीय है। यह बात अवश्य है कि शास्त्रीय पद्धति के

1 सब सखियाँ मिलि पूछन लागीं, कहि के भए न दलाल रचन लइआए हो रे।

साथ ही साथ सस्कार की तयारी तथा यज्ञ के समय लोकगीतों का भी सहयोग आव श्यक माना जाता है। ज म क दिन स जो सोहर प्रारम्भ होन हैं व निरन्तर रूप स नामकरण के दिन तक चलते रहते हैं।

अन्नप्राशन सस्कार

आश्वलायन गह्यसूत्र के अनुसार जिसे बालक को तेजस्वी बनाना हो वह घृत युक्त भात अथवा दधि मधु और घत तीनो को मिलाकर अन्नप्राशन कराये।[1] यह सस्कार भी विशुद्ध लौकिक पद्धति से किया जाता है इसके लिए कनौजी प्रदेश मे पुरोहित नही बुलाया जाता है और फलत मन्त्रो के प्रयोग की बात ही समाप्त हो जाती है। स्त्रियां ही इस सस्कार का सम्पादन करती हैं। परन्तु फिर भी यह सस्कार शास्त्र सम्मत समय अर्थात छठे मास म ही किया जाता है। कनौजी म इस सस्कार को मुँह बोर कहा जाता है।

इस सस्कार म भाग लेने के लिए पास पडोस तथा सम्बन्धियो की स्त्रियाँ निमन्त्रित होती हैं[2] और पास के किसी देवी के मन्दिर तक गाते बजाते हुए जाती हैं। जो सोहर गीत नामकरण सस्कार तक निरतर रूप स गाए गए थे, वे आज पुन गु जित होने लगत हैं। जब गाते बजाते हुए सब स्त्रियाँ शिशु सहित दवी के मन्दिर म प्रविष्ट होती हैं तो देवी की पूजा होती है। तदुपरान्त आजी ताई, बुआ माता, बहन तथा अन्य स्त्रियाँ शिशु को खीर चटाती हैं। कुछ लोगो के यहाँ घर पर ही यह सस्कार कर लिया जाता है। इस स्थिति म जिन लोगो द्वारा खीर चटान का ऊपर उल्लेख हो चुका है उनके अतिरिक्त आजा ताऊ, पिता, चाचा आदि भी खीर चटान का शकुन करत हैं। लोकगीतो म सोन की कटोरी मे खीर खिलान का उल्लेख मिलता है। परिवार क विविध सम्बन्धी खीर चटाते हैं शिशु रूठ हुआ है, उसे मनाया जाता है—इन बातो स इस समय के लोकगीत ओतप्रोत होत हैं। इस सस्कार की अन्य सस्कारो स विशेषता यह है कि इस म परिवार के लोगो द्वारा 'नेगों' के लेने की बात नहीं उठती है। 'नाइन' धनकुनि' आदि तो सभी सस्कारो मे कुछ न कुछ नेग पाती ही हैं।

चूडाकर्म सस्कार

चूडा कर्म सस्कार को मुडन सस्कार भी कहा जाता है। कनौजी म इसे 'मुँडनी' कहत हैं। शास्त्र म इस सस्कार का जन्म के एक वर्ष उपरान्त या तीसरे वर्ष होने का विधान मिलता है। सामान्यतया तो कनौजी प्रदेश म यह सस्कार जन्म

१ षष्ठे मास्य न्नप्राशनम। घतौदन तेजस्काम। दधि मधु घत मिश्रितमन्न प्राशयेत्। आश्वलायन गह्यसूत्र १।१६।१३

२ 'कालि मोरे ललन पौनने औ मुँह बौर ही माई।

के उपरान्त एक वर्ष पूरे होते होने सम्पन्न कर लिया जाता है, पर कुछ लोग तीसरे पाँचवें या सातवें वर्ष भी इस करते हैं। इस बात का ध्यान रखा जाता है कि विषम वर्ष में ही यह संस्कार हो। मुंडन संस्कार होने के पहले शिशु का केश कतन नहीं होता। यह संस्कार भी विशुद्ध चार पद्धति द्वारा मनाया जाता है। पुरोहित का इसमें स्थान ही प्रमुख रहता है कि वह शुभ मुहूर्त निकाल कर मुंडन का दिन निश्चित कर दे।

'देवी-यात्रा' में इस बात का उल्लेख किया जा चुका है कि स्त्रियाँ पुत्र प्राप्त करने की इच्छा से देवी की पूजा करती हैं। पूजन के समय वे इस बात की मनौती भी मनाती हैं कि यदि उन्हें पुत्र की प्राप्ति हुई तो वे उन्हीं के चरणों में मुंडन संस्कार करायेंगी। इस स्थिति में मुंडन किसी निश्चित स्थान-देवता के मन्दिर में होता है। यदि ऐसा न हुआ तो सामान्य स्थिति में भी यह संस्कार किसी तीर्थ, पवित्र नदी या जलाशय के किनारे सम्पन्न किया जाता है।

मुंडन के समय आजा आजी बाऊ-दाई फूफा-बुआ चाचा चाची माता-पिता तथा मामा का होना अनिवार्य माना जाता है। जो लोग स्थायी रूप से परिवार में रहते हैं वे तो सरलता से ही संस्कार में सम्मिलित हो जाते हैं पर दूरस्थ फूफा बुआ तथा मामा को भी निमंत्रित किया जाता है। शिशु के बुआ फूफा पाना से भीगते हुए आते हैं, इस कष्ट की भी चिन्ता नहीं करते क्योंकि उन्हें अपने भतीजे के मुंडन में भाग लेकर नेग प्राप्त करना है। शिशु का मामा भी अपनी पत्नी की इच्छा के विरुद्ध अपने भांजे के मुंडन में सम्मिलित होता है और इस पवित्र अवसर पर अपनी बहन को 'पियरी' पहनाता है।

मुण्डन के दिन घर लीपा-पोता जाता है और संस्कार के लिए ग्राम की स्त्रियों को निमन्त्रित किया जाता है। गाजे-बजाते हुए सभी लोग शिशु को लेकर पूर्व निश्चित स्थान पर मुंडन के लिए जाते हैं। वहाँ पर सब लोग पहले स्नान करते हैं शिशु को भी स्नान कराया जाता है तदुपरान्त नाई नेग लेने के पश्चात उस्तरे से शिशु के बाल उतारता है। भोजपुरी प्रदेश में बाल उस्तरे के स्थान पर कैंची से काटे जाते हैं।[1] जिस समय नाई बाल उतारता है उस समय शिशु की 'बुआ' बालों को एकत्र करती है और इसको इस उपलक्ष्य में दक्षिणा मिलती है। मुण्डन संस्कार की एक झलकी भी अनेक निम्नांकित गीत में देखी जा सकती है—

'झडूले हैं ग्राम अमिलिया अरे अडर जम्हिरिया अडर जैंडन रे खेत
भतरिया मारी पाउनि रे।
लयइयाँ वइठे आजा उनके ठाढ़े मुन्नाराम
आजा लागे सुटनी पमारे
मुड़ावो भ्राज झालरिरे।

---

१ डा० कृष्णदेव उपाध्याय भोजपुरी लोक-साहित्य का अध्ययन, हिन्दी प्रचारक पुस्तकालय, वाराणसी, १९६०, पृ० सं० १६३

आजा उनकी जाँघ बइठाए झालरि मुडामैं
आजा उनके खरचें दाम झलरिआ मोरी पाउनी।
ताई उनकी जाँघ बइठाए झालरि मुडामैं
ताउ रे उनके खरच दाम झलरिआ मोरी पाउनी।
अम्मा उनकी जाघ बइठावें झलरी मुडामैं
बाप उनके खरचें दाम झलरिआ मोरी पाउनी।'

मुण्डन-सस्कार बडो धूम धाम से मनाया जाता ह और दान दक्षिणा की तो भरमार ही रहती है। इस सस्कार से सम्बन्ध रखन वाले कुछ ऐसे गीत भी उपलब्ध होते हैं जिसमे कि भाभी अपनी ननद को नेग नहीं देना चाहती। इसलिए वह ननद को बुलाती ही नही। ननद को किसी प्रकार मुण्डन का समाचार मिल जाता है और वह भाभी के यहाँ उत्सव म सम्मिलित होने के लिए आती हैं। भाभी ननद को देखकर किवाड लगा लेती ह और ननद को अपमानित होकर वापस जाना पडता है। इसक विपरीत कुछ गीतो म यह भी वणन होता है कि भाभी ने प्रसन्न होकर ननद को 'तिलरी, कगना और कानों की बालियाँ नेग मे दे दीं और ननद से बार-बार इसी प्रकार आने की अभ्यथना की।

कणवेध सस्कार

इस सस्कार को कनौजी प्रदेश म कनछिदनो 'कानछेदना कहा जाता है। इसम शिशु क कान छेदे जाते हैं और यह सस्कार जन्म के तीसरे या पाँचवें वष म किया जाता है।[1] कभी-कभी यह सस्कार इसक बाद भी किया जाता है, पर होता है विषम वष मे ही। पुरोहित से मुहूत पूछ कर यह सस्कार सम्पन्न किया जाता है। इसम भी इष्ट मित्र और सम्बन्धी आमन्त्रित होते हैं। यह सस्कार घर पर ही किया जाता है। सुनार कान छेद कर उसम सोन की बालियाँ पहनाता है और नेग पाता ह। जिस प्रकार मुडन के समय अनेक लोग शिशु को जाँघ पर बिठाते हैं उसी प्रकार 'कनछेदन' म भी अनेक सम्बन्धी शिशु को गोद मे बिठाते हैं और सुनार को तो दान दक्षिणा मिलती ही ह अन्य 'परजा' लोग भी नेग निछावर पाते हैं।

कणवेध के गीतो म प्राय इसी बात का उल्लेख होता है कि सस्कार मे कौन सम्बन्धी क्या करता ह, कौन कौन नेग माँग रहा है और कौन लोग प्रसन्नता पूवक दान कर रह हैं।[2] इस अवसर पर स्त्रियाँ ढालक मजीरे बजाकर सोहर भी गाती हैं। सोहर तो वस्तुत एसे गीत है जिनकी जातकम सस्कार स लेकर कणवेध

---

१ कणवेधो वर्षे तृतीये पचमे वा। —कात्यायन गृह्यसूत्र १।२

२ आजी उनकी कनिआ लए हैं आजा खरचैं दाम सुनरा कान छेदै रे।
अम्मा उनकी कनिआं लए हैं बाप उनको खरचैं दाम सुनरा कान छेदै रे।

संस्कार तक व्याप्त रहती है। गीतों के वर्ण्य विषय तथा उनकी विविधता का उल्लेख पीछे किया जा चुका है। इन गीतों का इन सभी संस्कारों में गायन होता है। इन संस्कारों में स्पष्ट रूप से गीत बहुत कम हैं जो हैं भी उनका महत्त्व इतना ही है कि उनमें संस्कारों की विविध प्रक्रियाओं के चित्र प्रस्तुत किए जाते हैं। ये गीत केवल औपचारिक ही हैं गम्भीर भावना से इनका कोई सम्बन्ध नहीं।

उपनयन संस्कार

इस संस्कार को यज्ञोपवीत संस्कार भी कहा जाता है और इसी शब्द का विकसित रूप जनेऊ अधिक लोक प्रचलित है। कनौजी प्रदेश में इसको 'जनेऊ' कहते हैं। यज्ञोपवीत को ब्रह्मसूत्र भी कहा जाता है। यह संस्कार केवल द्विजों (जिनका संस्कार से दूसरा जन्म माना जाता है अर्थात् ब्राह्मण क्षत्रिय एवं वैश्य) से ही सम्बद्ध है और अन्य जाति के लोगों के यहाँ यह संस्कार नहीं मनाया जाता। अतः लोक जीवन से इस संस्कार का उतना घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं है जितना अन्य संस्कारों का।

यज्ञोपवीत धारण करना आर्य जाति की अत्यन्त प्राचीन प्रथा है। यज्ञोपवीत को पवित्र और आयु बल एवं तेज प्रदान करने वाला माना गया है।[1] भारतीय आर्यों के सजातीय पारसी भी इसे धर्म का प्रतीक मानते हैं।[2] प्राचीन काल में यज्ञोपवीत संस्कार होने के ठीक बाद ब्रह्मचारी आचार्य के पास विद्याध्ययन के लिए जाता था इसी हेतु इसको उपनयन संस्कार कहा जाता है—उपनीयते गुरु समीपं प्राप्यते अनेनेति उपनयनम्। मनुष्य को द्विज कहलाने के लिए यह संस्कार अनिवार्य था क्योंकि मनु की व्यवस्था के अनुसार जन्म से तो मनुष्य शूद्र रूप में ही उत्पन्न होता है संस्कार (यज्ञोपवीत) द्वारा उसे द्विज की संज्ञा मिलती है।[3]

शास्त्रों के अनुसार ब्राह्मण बालक का यज्ञोपवीत ८ वर्ष, क्षत्रिय का ११ वर्ष और वैश्य का १२ वर्ष की अवस्था में हो जाना उत्तम माना जाता है। ब्राह्मण का १६ वर्ष क्षत्रिय २२ वर्ष और वैश्य का २४ वर्ष के पूर्व ही यज्ञोपवीत हो जाना

---

१ यज्ञोपवीतं परमं पवित्रं प्रजापतेर्यत्सहजं पुरस्तात्।
आयुष्यमग्र्यं प्रतिमुञ्च शुभ्रं यज्ञोपवीतं बलमस्तु तेजः॥

२ जात मज्दाओ बरत पोरनिनम् आयम्य आधनम् स्तहर।
पाएसघेम म युन्तम्तम यघुहिम दायनम् मजन्यास्निम।
अर्थात् हे मज्दा प्राचीन धर्म के चिह्न तारों से जड़े हुए यज्ञोपवीत।
तुझे पूर्व काल में मज्दा ने धारण किया था।
(रामनरेश त्रिपाठी कविता कौमुदी भाग ३ (ग्रामगीत) नवनीत प्रकाशन लि० बम्बई १९५८, पृ० ३१७ से ऊपर के दोनों अंश उद्धृत)

३ जन्मना जायते शूद्रः संस्कारात् द्विज उच्यते—मनुस्मृति

आवश्यक माना गया है क्योंकि इस अवस्था तक सस्कृत न होने पर इनको पतित माना जाता है।[1] यज्ञोपवीत का समय ब्राह्मणों के लिए वसन्त क्षत्रियों के लिए ग्रीष्म तथा वैश्यों के लिए शरद ऋतु माना गया है। या सब ऋतुओ म भी यह सम्पन्न किया जा सकता है। यह तो है[2] शास्त्रीय पक्ष, पर व्यवहार रूप में कनौजी प्रदेश मे कोई ही ऐसा ब्राह्मण होगा जिसके यहाँ ८ वर्ष की अवस्था में बालक का यज्ञोपवीत होता हो। यह बात अवश्य है कि सामान्यतया १६-१८ वर्ष की अवस्था तक तो ब्राह्मण के यहां सस्कार हो ही जाता है। ब्राह्मणों के यहां यह सस्कार अब भी अनिवार्य रूप से होता है पर क्षत्रियो और वश्यो के यहा यह प्राय स्वतन्त्र न होकर विवाह के साथ किया जाता है। शास्त्रीय दृष्टि से तो उपनयन के बाद ही विद्यारम्भ होता है पर व्यवहार रूप में कनौजी प्रदेश में विद्यारम्भ पहले ही हो जाता है। इस अवसर पर पट्टी पुजाई[3] होती है और गुरु को दान दिया जाता है। इसम विशेष उत्सव नहीं मनाया जाता है। साथ ही सब के यहाँ पट्टी पुजाई होती भी नहीं है।

पुरोहित यज्ञोपवीत सस्कार के लिए मुहूर्त निकालता है और इसके पश्चात सस्कार म सम्मिलित होने के लिए सम्बन्धियो को निमन्त्रण भेजा जाता है। परिवार के स्थायी सदस्यो क अतिरिक्त बुआ फूफा बहन-बहनोई तथा अन्य सम्बन्धियों का सस्कार को सुशोभित करना आवश्यक माना जाता है। कनौजी प्रदेश म यह सस्कार बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता है और इसम इतने अधिक लोकाचारो की भरमार रहती है कि इसे यहा क लोग 'आधो बिहाव' (आधा विवाह) कहते हैं। उनका है कि बारात क जाने तक की जितनी क्रियाएँ विवाह सस्कार म होती हैं। वे इस सस्कार म भी सम्पादित की जाती हैं। भात मागना, घना, मण्डप गाड़ना, तेल चढाना, पितरो को निमन्त्रित करना, मायें मंगरा, नहछुरो (नख छेदन)—सारी प्रथाओ का पालन विवाह सस्कार की भाँति यज्ञोपवीत सस्कार म भी होता है। अत इन सारी प्रथाओ का वर्णन विवाह सस्कार क प्रसग म किया जाएगा। यज्ञोपवीत में इसके अतिरिक्त जो प्रथाएँ मनाई जाती हैं उन्हीं का वर्णन यहा किया जा रहा है।

---

१ अष्टमे वर्षे ब्राह्मणमुपनयेत। गर्भाष्टमे वा। एकादशे क्षत्रियम। द्वादशे वैश्यम। आषोडशाद् ब्राह्मणस्योपनीत काल। आद्वाविंशत क्षत्रियस्य आचतुर्विंशाद्वैश्यस्य, अत ऊर्ध्व पतित सावित्रिका भवन्ति। आश्वलायन गृह्यसूत्र १।१९।१-६।

२ वसन्ते ब्राह्मणमुपनयेत। ग्रीष्मे राजन्यम्। शरदि वैश्यम। सवकालमेके। शतपथ ब्राह्मण ३।५

३ लिखने के लिए प्रयोग में आने वाली तख्ती की पूजा।

इस संस्कार का सम्बन्ध सवर्ण जातियों से और विशेष रूप से ब्राह्मणों से है। अतः इसमें शास्त्र का पल्ला अधिक पकड़ा जाता है। परन्तु फिर भी लोकाचार भी अपना विशिष्ट स्थान बनाए हुए हैं। पुरोहित के साथ साथ स्त्रियाँ भी अपने लोकगीतों की ध्वनि के साथ लोकाचारों का अनुष्ठान करती जाती हैं।

कनौजी लोकगीतों में यज्ञोपवीत संस्कार के लिए पुरोहित के बुलाए जाने का उल्लेख मिलता है। यज्ञोपवीत संस्कार में किस प्रकार की सज धज की जाती है और कौन व्यक्ति क्या करता है, अत्र एक रूप में यह सब नीचे के लोकगीत में बतला दिया गया है—

'ऐ कनउजया के बाम्हन हमरे हू अइओ।
पोथी पत्रा लइके अइओ हमारे बरत बन्धा'
कइस तुम्हार आमें घर ना चीन्हें नाँव न जान।
आँगन मोरे महुआ पिछवार मोरे कोहबर
हरदी लपटा जौन लाल आहि घर आवो।
ए जो बन मिरिगिया न डाल नउरा न गूंज
तो बन बइठे राम बहुनिया डला टारें।'

यज्ञोपवीत संस्कार की पूर्व रात्रि को बालक व्रत रखता है[1]। उस भोजन के लिए कुछ भी नहीं दिया जाता। पुरोहित मण्डप के नीचे संस्कार प्रारम्भ करा देता है। यज्ञ वेदी के पास मिट्टी के '१६ पुरवों' में चने की दाल भरकर रखे जाते हैं और उनमें से एक पर जनेऊ रख दिया जाता है। बटुक के साथ ७ या ९ या ११ 'बरुआ' (ब्राह्मण-ब्रह्मचारियों) को सत्तू खिलाए जाते हैं और उन्हें दक्षिणा भी दी जाती है। नाई ब्रह्मचारी का क्षौर-कर्म (मुण्डन) करता है और हल्दी, आटा तथा तेल से बने हुए उबटन को ब्रह्मचारी के शरीर पर लगाता है। इसके पश्चात् उसे स्नान कराया जाता है। संस्कार के समय ब्रह्मचारी को लंगोटी, मूँज की मेखला तथा पलाश दण्ड धारण करना पड़ता है। लोकगीतों में तीन प्रकार के जनेउओं का उल्लेख मिलता है—

'को सर मुंजवन जइए मुँजिआ कटइए।
को लइ आव मूँज जनेउआ मूँज का चहिए।
सम्बन्ध का नाम लेकर—लइआमें आली मूँज जनेउआ मूँज को चहिए।
पहिलो जनेउआ मूँज को दूसरा हिरनवा की खाल।
तिसरो जनेउओ सूत को रंगो है हरदिया की गाँठ।

[1] यज्ञोपवीत संस्कार में ब्रह्मचारी को कुछ व्रतों एवं नियमों का पालन करना अनिवार्य बतलाया जाता है, इसी हेतु इस संस्कार को बरत बंध (व्रत बंध) भी कहते हैं।

सूत के जनेऊ के लिए आवश्यक माना जाता है कि वह हाथ के कते हुए सूत का ही होना चाहिए। किसी किसी लोकगीत में तो इसी प्रसंग में कपास की खेती से लेकर तैयार करना, उसका काता जाना और जनेऊ बनाया जाना—इस सारी प्रक्रिया का उल्लेख हुआ है।[1] नीचे दिए गए अंश में फूफा को ब्रह्मचारी के लिए जनेऊ कातते हुए दिखलाया गया है—

'गंगा जमुन बिच आतर चंदन इक रुखवा है रे।
ती तरे ठाडे फूफा उनके कातें जनयो हैं रे।'

यज्ञ के पश्चात जब पांच ब्राह्मण मिलकर ब्रह्मचारी का यज्ञोपवीत पहना देते हैं तो वह गुरुकुल जाने के लिए पाथेय स्वरूप भिक्षा मांगता है।[2] भिक्षा मांगना उस प्राचीन प्रथा का द्योतक है जब प्रत्येक ब्रह्मचारी गुरुकुल में रहकर विद्याध्ययन करता था और भिक्षा वृत्ति द्वारा जीवन निर्वाह करता था। लोकगीतों में यह भी दिखाया गया है कि भिक्षा देने की गृहस्थों के मन बहुत साध होती है। जब ब्रह्मचारी किसी गृहस्थ के यहां भिक्षा के लिए जाता है तो गृहस्वामिनी कहती है—

'जो जनतीं बरुआ हमरे घर अइओ र।
बरुअरो खेत जुँतउती धन मुतिआ बवोंती रे।
मुतिअन थार भरउँती भीख उठि देतीं हो।'

भिक्षा-याचना के पश्चात ब्रह्मचारी वेदाध्ययन के लिए काशी चल देता है। उसी समय उसे इस बहाने रोक लिया जाता है कि घर पर ही आजा नाऊ फूफा जीजा आदि वैदिक साहित्य में निष्णात हैं। काशी जाने की क्या आवश्यकता यहीं वेदाध्ययन कर लेना। वेदाध्ययन के लिए तैयार होने की प्रथा इस बात का संकेत करती है कि प्राचीन काल में सभी ब्रह्मचारियों से यह आशा की जाती थी कि वे गुरुकुल जाकर विद्वान् बनेंगे। उस समय काशी विद्या का प्रसिद्ध केन्द्र था। अतः लोकगीतों में उसका उल्लेख होना स्वाभाविक ही है।

प्राचीन काल में जब विद्यार्थी गुरुकुल से वापस आता था तो उसका समावर्तन संस्कार किया जाता था। उसकी ब्रह्मचारी की वेशभूषा से उसे मुक्ति प्रदान की जाती थी और गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने की वह तैयारी करने लगता था। वह नवीन एवं सुन्दर वस्त्रों से सुसज्जित किया जाता था। इस समय ब्रह्मचारी को गुरुकुल जाने से रोक लिया जाता है और लंगोटी, मूंजमेखला के स्थान पर सुन्दर वस्त्र प्रदान किए जाते हैं। वस्तुतः वस्त्रों का यह दान समावर्तन संस्कार का विकृत रूप

---

१ यज्ञोपवीत के गीतों में इसका विवेचन किया जा चुका है।

२ लाबौ न आजी मोरी सतुआ औ दुई लडुआ।
अइएँ हम कासी बनारस वेद पढ़ि अइएँ।

ही है। प्राचीन काल में उपनयन और समावर्तन के बीच बहुत लम्बी अवधि होती थी पर अब तो उपनयन और वेदारम्भ और समावर्तन—इन तीनों संस्कारों के बीच में कुछ घंटों तक की अवधि नहीं होती। यदि सूक्ष्म दृष्टि से देखा जाय तो उपनयन, वेदारम्भ और समावर्तन—इन तीनों संस्कारों को एक में ही मिला दिया गया है और तीनों की लीक एक साथ ही पीट दी जाती है।

विवाह-संस्कार

प्रजनन-क्रिया में मानव ने आदिकाल से लेकर आज तक सभ्य आकर्षण एवं सौन्दर्य का दर्शन किया है। विवाह-संस्कार का सम्बन्ध प्रत्यक्षतः प्रजनन क्रिया से है, यही कारण है कि वह सभ्य असभ्य सभी मानवों के जीवन का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार बन गया है। मानव अपनी वंश-परम्परा को अविच्छिन्न रूप से चलाना चाहता है। अतः सन्तानोत्पत्ति एक सामाजिक दायित्व बन जाता है। भारतीय संस्कृति में भी मनुष्य के तीन ऋणों[1] में से एक पितृ ऋण है। इस ऋण को सन्तान उत्पन्न करके चुकाया जाता है, और विवाह ही इसका एकमात्र साधन है। अतः भारतीय जीवन में विवाह का प्रमुख उद्देश्य सन्तानोत्पत्ति माना गया है। भारतीयों का विश्वास है कि ब्रह्म ने भी सृष्टि की उत्पत्ति वासना के वशीभूत न होकर 'एको ह बहुस्याम'[2] की भावना से की थी।

शिक्षा की समाप्ति पर विवाह का विधान स्मृतियों में किया गया है। ब्राह्मण चार वेदों को, क्षत्रिय दो वेदों को और वैश्य एक वेद का अध्ययन करके विवाह करे।[3] इस विधान का पालन तो कनौजी प्रदेश में होता नहीं, इतना अवश्य है कि उपनयन संस्कार के समय ब्रह्मचारी के वेदाध्ययन कराने का आश्वासन अवश्य दिया जाता है। सवर्णेतर जातियों के लिए लोक साहित्य ने विवाह की अवस्था वर के लिए २० वर्ष एवं वधू के लिए १८ वर्ष का आदर्श रखा है।[4] इस आदर्श के रहते हुए कनौजी प्रदेश में ही नहीं समस्त हिन्दुओं में जो बाल विवाह होने लगे हैं उनके लिए अनुमान किया जा सकता है कि उन पर परवर्ती वाममार्ग का प्रभाव पड़ा है। इनमें कहा गया है कि आठ वर्ष की कन्या गौरी, नौ वर्ष की रोहिणी और दस वर्ष की कन्या और उसके पश्चात् रजस्वला हो जाती है। दसवें वर्ष तक विवाह न करके रजस्वला कन्या को देखने से ही माता पिता एवं बड़ा भाई—सभी नरक को जाते

१ पितृ ऋण, ऋषि ऋण और देव ऋण।

२ तैत्तिरीय ब्रह्मानन्द वल्ली, ६।

३ वेदानधीत्य वेदौ वा वेदं वापि यथाक्रमम्।
अविप्लुत ब्रह्मचर्यो गृहस्थाश्रममाविशेत—मनुस्मृति।

४ विवाह के समय— वर अठारह की हती सीता औ सत्ताइस के राम।

हैं।[1] आज के कनौजी प्रदेश में न तो कन्या के विवाह का १८ वर्ष वाला आदर्श ही माना जाता है और न ८ ६ वर्ष वाला ही। सामान्यतया कन्या का विवाह ग्रामों में १२ १४ वर्ष की अवस्था में कर दिया जाता है। यों तो कुछ अत्यन्त अल्प-वयस्कों के विवाह विशेष रूप से परिगणित तथा पिछड़ी जातियों में दिखाई पड़ते हैं।

अवस्था के विचार करने के उपरान्त कनौजी प्रदेश में होने वाले विविध प्रकार के विवाहों, जिनका उल्लेख लोकगीतों में मिलता हैऔर जो व्यावहारिक रूप में आज भी सम्पादित किए जाते हैं पर हमें विचार करना है। इन विवाहों को यदि शास्त्रीय दृष्टि से देखा जाय तो भी कुछ न कुछ लक्षण उनके इनमें मिल जाते हैं। मनु ने विवाह के आठ प्रकारों को माना है। वे इस प्रकार हैं—१ ब्राह्म २ दैव, ३ आर्ष ४ प्राजापत्य ५ आसुर ६ गान्धर्व, ७ राक्षस तथा ८ पैशाच।[2]

कनौजी क्षेत्र में जो विवाह आजकल प्रचलित हैं उनको ब्राह्म और दैव का मिश्रण कहा जा सकता है। लोक प्रचलित 'आल्हा' में राक्षस विवाहों के उदाहरण मिल जाते हैं। मुगलों द्वारा हिन्दू कन्याओं को छीनकर किए जाने वाले जिन विवाहों का वर्णन लोकगीतों में मिलता है वे भी राक्षस विवाह के अन्तर्गत आते हैं। कन्या-पक्ष के लोग वर पक्ष के धन को लेकर जो विषम विवाह कर देते हैं[3] उनको 'असुर' की कोटि में रखा जाएगा। वर तथा वधू की इच्छा से होने वाले गांधर्व विवाहों का उल्लेख भी लोकगीतों में उपलब्ध होता है—

> बाहर ते आए बिरना हात लए तरवारि।
> मारों रे पूत तपसिआ बहिनि मेरी मागे।
> भीतर ते निकरी लाडिली मुतिअन माग भरें।
> जिनि मारो पूत तपसिआ जलम मेरो को सेंह है।

उपर्युक्त गीत में गान्धर्व विवाह के संकेत के साथ ही उस प्रथा का आभास भी मिलता है जिसमें वर स्वयं वधू का खोजने जाता है। सामान्यतया तो कन्या-

---

१ अष्ट वर्षा भवेत गौरी नववर्षा च रोहिणी।
दशवर्षा भवेन कन्या तत ऊर्ध्व रजस्वला॥
माता चैव पिता तस्या ज्येष्ठो भ्राता तथैव च।
त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्ट्वा कन्यां रजस्वलाम्॥
—पारासरी और शीघ्र बोध

२ ब्राह्मो दैवस्तथा आर्ष प्राजापत्यस्तथाऽसुर।
गान्धर्वो राक्षसश्चैव पैशाचश्चाष्टमोऽधम। —मनुस्मृति ३.२१

३ माया के लोभी बाप ने बूढ़े को ब्याहि दीनो रे।

पक्ष के लोग वर खोजते हैं पर इस गीत में इससे ठीक विपरीत स्थिति का चित्रण हुआ है।

कन्या के पिता या भाई योग्य वर की खोज में स्थान स्थान पर भटकते हैं। जब उन्हें योग्य वर मिल जाता है तो कन्या एवं वर के जन्म-पत्र मिलाए जाते हैं। यदि ग्रह नक्षत्रादि ठीक हुए और दहेज आदि की शर्तें तय हो गई तो विवाह का श्रीगणेश 'बरिच्छा' (वरीक्षा) से हो जाता है। अब आगे विवाह से सम्बद्ध विविध लोकाचारों का वर्णन किया जाएगा।

'बरिच्छा' (वरीक्षा)

विवाह के निश्चित हो जाने पर यह रस्म की जाती है। वरीक्षा का आशय होता है वर को भली भाँति परखना। जब कन्या-पक्ष के लोग वर को देखकर सन्तुष्ट हो जाते हैं तो विवाह के निश्चित हो जाने के प्रमाण स्वरूप वर को कुछ भेंट करना चाहते हैं। चौक पूरी जाती है और वर घर के भीतर से अंजुलि में अनाज लाता है और चौक पर उसे डाल देता है। कन्या पक्ष के लोग वर के हाथ में कुछ द्रव्य रख देते हैं और वह उसे ले जाकर अपनी माता को दे देता है। माता अपने पुत्र के विवाह के निश्चित हो जाने पर प्रसन्न होती है और पुत्र का मुँह मीठा कराती है।

पीरी चिट्ठी

कन्या पक्ष के लोग अपने घर जाकर परिवार के सदस्यों से विवाह के सम्बन्ध में पुनर्विचार करते हैं और सब सम्मति पर 'पीरी चिट्ठी' भेजने की तैयारी होती है। इस पीरी चिट्ठी में फलदान तथा विवाह की स्वीकृति की तिथि लिखी जाती है। वर के यहाँ भेजने के पूर्व इसे कन्या के हाथ पर रखा जाता है। कन्या के हाथ पर चिट्ठी का रखा जाना उस प्रथा का अवशेष जान पड़ता है जिसमें विवाह के लिए कन्या की स्वीकृति आवश्यक मानी जाती थी।

फलदान (लगुन)

जिस दिन कन्या पक्ष के लोगों को 'फलदान' लेकर वर के यहाँ जाना होता है उसके पूर्व रात्रि में चौक पूर कर उस पर कन्या को बिठाया जाता है। चौदह पुड़िया सुपारियाँ, नारियल, मखाने, जौ, तिल, चावल और हल्दी की गाँठें तथा कुछ वस्त्र—ये सारी वस्तुएँ कन्या की गोद में रखी जाती हैं। इसी में लग्न-पत्रिका भी रखी जाती है। स्वीकृति की सूचना के रूप में कन्या का सिर हिला दिया जाता है और उसका मुँह भी मीठा किया जाता है। इस अवसर पर कन्या का हँसना अपशकुन एवं उसकी अशिष्टता का सूचक माना जाता है, उससे आशा की जाती है कि वह गम्भीर स्वभाव का परिचय देगी। जब फलदान भेजा जाता है तो कन्यापक्ष की स्त्रियाँ यह गीत गाती हैं—

फूल तौ फूलो गुलाबी सब रग फूलो।
पाच भइआ की बहिनी अकेली रानी रुकुमिनि हो।
कासी के पाच बिराम्हन लइ लगुन लिखामैं।
पाचौ भइआ इक मत करौ रुकुमिनि व्याहे हो।

क या-पक्ष के लोग 'फलदान' लेकर वर पक्ष क यहा पहुँचते है। चौक पूरा जाता ह और पुरोहित भी शास्त्रीय विधि विधान कराता है। वह घर के अ दर स अजुलि म अनाज भरकर लाता है चौक पर उस डाल देता है और पुरोहित के आदश से 'पटली' पर बठ जाता है। जिन वस्तुओ को क या को गोद म रखा गया था उनको एक थाल म रखकर क या का भाई वर को भेंट करता है। निमत्रित किए गए सम्बन्धियो तथा मित्रो को मिष्ठा न वितरण किया जाता है। वर उठकर अ दर चला जाता है और भेंट की वस्तुआ को अपनी माता का प्रदान करता है। अ दर स्त्रिया विवाह के मागलिक गीत गाती हैं। इसी दिन स मागलिक गीत विदा के दिन तक अनवरत रूप से गाए जात है। फलदान के पश्चात वर के परिवार क सभी बडे बूढो के लिए उ हें भी दक्षिणा दिया जाता है।

'भात मागना'

फलदान के पश्चात वर तथा क या दोनो पक्ष की विवाहिता स्त्रिया अपने म.इया मे 'भात मागने आती है। इन स्त्रियों के साथ उनके पति भी जाते हैं। भात मागने के लिए जाने पर स्त्रिया अपने साथ सवासेर सत्तू या कही-कही सवासेर चावल फूल के कटोरे म रखती हैं और उस पर गुड की भेली—

फूल को वेला सवाव सेर सतुआ ऊपर गुड को बटीं
भतइअन बहुत सकोच करी।
भात मागन आई लली जू बीरन की बखरी।

लोकगीतो म स्त्री क हृदय म भात मांगन की बडी प्रबल 'साध' दिखाई जाती है। जब वे भात मागने के लिए जाती हैं तो भाई भाभी उनका स्वागत करते हैं और निश्चित समय पर भात पहनाने का वचन देते हैं। कहीं कही यह भी उल्लख होता है कि भाभी ननद से रुष्ट है। अत उसे अपमानित करके लौटा दना चाहती है पर भाई अपनी पत्नी को रोकता है और बहन को सम्मानित करके उसकी भावनाओ का आदर करता है और अवसर पर उपस्थित होकर बहन को प्रस न करता है।

जिस दिन मण्डप पूजा होती है उस दिन के लिए स्त्रियां अपन भाई को भात पहनाने के लिए निमन्त्रित करती हैं। भात पहनाने का आशय है जिस दिन भात-कढी द्वारा मण्डप की पूजा होती है, उस दिन के लिए वस्त्रों का लाना। एक पटली पर बहन बैठती है और उसके सामने दूसरे पटरे पर भाई। भाई बहन को

वस्त्र भेंट करता है और बहन भाई के मस्तक पर टीका लगाकर उसका मुँह मीठा कराती है। भात पहनने की लालसा इन स्त्रियों में इसलिए और भी तीव्र होती है कि यदि किसी के नैहर से 'भात' न आया तो उसे अन्य स्त्रियों के सामने लज्जा से सिर झुकाना पड़ेगा।

'घना'

विवाह के कुछ दिन पूर्व मुहूर्त के अनुसार 'घना' डाला जाता है जिसका आशय है कि विवाह के लिए जो खाद्य सामग्री तैयार करनी है उसका पहला घना (दिन) उस दिन प्रारम्भ कर दिया जाए। उस दिन अपराह्न काल में परिवार तथा ग्राम की स्त्रियां एकत्र होती हैं और कूटना-पीसना प्रारम्भ कर देती हैं। कूटने पीसने के साथ मांगलिक-गीत भी गाए जाते हैं। इस कार्य में भाग लेने वाली स्त्रियों का मन को दाम और गुड़ उपहार स्वरूप दिया जाता है। 'घना' का लोकाचार भी दोनों पक्षों में समान रूप से मनाया जाता है। इसी से मिलता-जुलता लोकाचार जो हरियाना प्रदेश में मनाया जाता है उसे क्रमशः 'हल्दी हाथ'[1] और 'हल्दात बान'[2] कहा जाता है।

मंडप गाड़ना

विवाह के दो या तीन दिन पूर्व मुहूर्त से अनुसार मंडप गाड़ा जाता है। पहले गांव में बुलावा लगता है और जब गांव के कुछ लोग एकत्र हो जाते हैं तो मंडप गाड़ने के लिए गड्ढा खोदा जाता है। गड्ढा खोदने वालों की संख्या पांच या सात रहती है। जब गड्ढा खुद कर तैयार हो जाता है उनमें हल्दी से रंगे हुए छोटे से कपड़े के टुकड़े में सुपारी, हल्दी की गांठ और एक पैसा बांध कर डाल दिया जाता है। मंडप में एक बांस भी बांध दिया जाता है जिसके ऊपर छिदी हुई गांठ सरइयों का लटका दिया जाता है। कन्या के यहां का मण्डप गड़ता है उसमें बांस और सरइयों की आवश्यकता नहीं पड़ती। मण्डप के गड़ने के बाद उस कार्य में भाग लेने वालों की पीठ पर हल्दी की थप्पी लगाई जाती है। खोदने और मंडप के गाड़ने सारी प्रक्रिया में 'गारी' नामक गीत गाया जाता है—

मडयो गडाउन आए (अमुक) लाय
मडरे का दीयें जल रे घना तुम्हारी अम्मा का दीयें ।
हरामजादे सुइका मजूरी बिदाय दीयें।

---

1 डा० सत्येन्द्र—ब्रजलोक साहित्य का अध्ययन, साहित्य रत्न भंडार आगरा, १९४९ पृ० १६१

2 डा० शंकरलाल यादव—हरियाना प्रदेश का लोक-साहित्य, हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद, १९६०, पृ० १५०

कन्या के यहाँ मण्डप के चारो ओर चार कोनों म बाँस गाड कर ऊपर स डस छा दिया जाता है, क्योकि उसी के नीच वर-वधू को बिठाकर विवाह सस्कार होता है। मडप छाए जाने की प्रक्रिया का उल्लेख भी लोकगीतो म मिलता है।

कौके आँगन तो मडओ छाए सो छाम्रो है रे।
ग्रजुली के आँगन मडग्रो तो पानन छाओ है रे।

पित निमन्त्रण

मडप के नीचे बठकर स्त्रियाँ गीत गाती हुई 'पितरा' को निमन्त्रित करती हैं—

(अमुक) बाबा तुमऊँ बडे हो ग्राज मारे घर अइग्रो।

जितन पूवजो का नाम स्मरण हाता है उनको नाम से निमन्त्रित किया जाता है, शेप के लिए कह दिया जाता है कि जा भूल भटक हैं वे भी आने की कृपा करें। पितरो के अतिरिक्त आँधी पानी, आधि व्याधि सभी का आह्वान किया जाता है। यह कल्पना की जाती है कि सब आ गए हैं अत उन्हें एक मिट्टी के घडे म स्थान दिया जाता है। यह समझ लिया जाता है कि विघ्नक री लाग घडे म बन्द हो गए और अब सारे काय निर्विघ्न समाप्त होंगे। इस घडे को उठा कर कोर दवताओ के स्थान म रख दिया जाता है।

मॉय मधरा

'घना' बाल गहूँ पीस कर उसम गुड मिलाकर मांडा जाता है और शकुन के लिए उसम एक बूँद तल भी डाल दिया जाता है। इसक पुए मीठी पूडियाँ सेंक जाते हैं सेंकत समय गीत भी गाए जात हैं—

(अमुक) बइठी हैं मइया धारि
मेरे पुआ लइऐ कउन

इन पुआ का सेंक कर एक मटके में बन्द करक रख दिया जाता है। इन्हें ही मॉय मधरा कहते हैं। इस लोकाचार का पालन दानो पक्षा म किया जाता है। तल चढ जाने और उबटन के पश्चात स्नान करके कन्या अपने पिता के यहाँ और वर अपने पिता के यहाँ इन पुओ को खान के पश्चात् ही अन्य वस्तुएँ खाते हैं।

'तेल चढ़ना'

यह सस्कार भी वर एव वधू दोना के यहाँ किया जाता है। गाँव में बुलाव लगता है। मडप के नीचे चौक' पूर कर वर या वधू (जिस पक्ष म तल चढ रहा हो उसको) को बुला कर पटली पर बिठाया जाता है। वर के साथ अविवाहित

एक वधू के साथ कनौजी कन्या दूसरी पटली पर बैठाई जाती है। तेल चढ़ाने के लिए आठ धानी अथवा स्त्री थोड़ा-सा अनाज लेकर घर में प्रवेश करती है। एक मिट्टी की कोरी 'गरइया' में घी और एक में तेल रखा जाता है। हरी दूर्वा भी रखी जाती है। लाल के छन्ने तथा कपड़े में राई नमक और भूमी को बाँध कर चार कंगन बनाए जाते हैं। एक वर या वधू की कलाई पर, दो को पटलियों में और एक को कलश में बाँध दिया जाता है।

तेलों की संख्या पुरोहित निश्चित करता है। कम से कम तीन और अधिक से अधिक सात तेल चढ़ाने वाली स्त्रियाँ हाथों में दूर्वा लेकर दाहिने हाथ से बाएँ और बाएँ हाथ से दाएँ पैरों घुटनों और कंधों पर क्रमशः तेल छुआती हैं। इस समय भी गीत गाए जाते हैं—

तलिन तलिन सुम बड़ी रानी काए को तेल सँचारा।

तेल चढ़ाने के पश्चात वर के नाई और वधू के नाइन उबटन लगाती है। उबटन के बाद उन्हें स्नान कराया जाता है। उबटन लगाते समय भी गीत गाए जाते हैं—

काए को ऐसा उबटनो ? काए को तेल फुलेल ?
करो लाडली (लाडले) को उबटनो।
फूल के ऐसा उबटनो सरसों को तेल फुलेल।

घूरो पुजियो[1]

यह संस्कार भी दोनों पक्षों में किया जाता है। अपने घर के घूरे को न पूजकर किसी अन्य घूर की पूजा की जाती है। आटे का बना हुआ चौमुख दीपक, गुड़ का एक टुकड़ा, हल्दी, चावल इन सब वस्तुओं को थाली में रखकर पूजा के लिए वर या वधू को साथ लेकर स्त्रियाँ घूरे के पास जाती हैं। घूरे पर पानी छिड़क कर सतिया बनाई जाती है और हल्दी में रंग पूज कर दीपक जलाया जाता है। चावलों को चारों दिशाओं में बिखेर दिया जाता है। लौटते समय वर या वधू में से एक मुट्ठी कूड़ा भर लाते हैं और उसे भंडारे में रख देते हैं। मार्ग में मौन धारण करना आवश्यक माना जाता है। यह विश्वास किया जाता है कि जिस प्रकार से घूरे को कोई नहीं छूता उसी प्रकार भंडार गृह भी सुरक्षित रहेगा। वापस लाया हुआ दीप देवताओं के सामने रख दिया जाता है। इस अवसर पर भी गीत गाए जाते हैं।

'भात-पहनाई'

भात माँगने के प्रसंग में चर्चा की जा चुकी है कि बहन भाई से वचन लेती है कि वह उसे अवश्य ही भात पहनाने आएगा। वह अपने वचन के अनुसार

१ घूर की पूजा।

आता है। निश्चित मुहूत पर भात पहनाने वाले घर मे बुलाए जाते है। बहन थाली मे नारियल रोली चौमुखा दीपक जलाकर भाई का अभिन दन करती है। वह भाई के 'रोचन' लगाती है तथा भाई उसे पहनने के लिए वस्त्र भेंट करता है। इसके पश्चात वह रोकर अपन भाई से भेंट करती है। इस समय भी गीत गाए जाते हैं।

'भात मागना, 'घना, मण्डप गाडना, 'पित निमत्रण', माय मघरा', 'तल चढाना', घरा पूजना' और 'भात पहनाई,—ये सारे लोकाचार यज्ञोपवीत सस्कार और विवाह सस्कार मे समान रूप से सम्पन्न किए जाते हैं। यनोपवीत सस्कार और विवाह सस्कार म समान रूप से सम्प न किए जाते हैं। यनोपवीत पुरुषा का ही होता है। अत य सारी क्रियाएँ ब्रह्मचारी के यहा इनके न होन का प्रश्न ही नही उठता।

वर पक्ष मे बारात यात्रा का दिन

वर को सुसज्जित करना

बारात यात्रा के पहले नाई वर को उबटन लगाकर स्नान कराता है। दरजी नए कपडे और 'जामा' पहना कर नेग लेता है। चमार जूता पहनाता है तथा माली पगडी व मौर लाता है। मौर पहनाते समय गीत गाया जाता है—

अरे की कुल को मालिआ सो की कुल को बरना।
अरे कहँवा केरो मालिआ कहवा केरो खजूर।

वर का फूफा या बहनोई पगडी और मौर पहनाता है। भाभी काजल लगाती है। य जितनी भी क्रियाए होती हैं सबके साथ विषय से सम्बद्ध गीत गाए जात है। इन गीतो म वर को सम्राट के रूप म चित्रित किया जाता है।

पुरइन पूरना

जब वर सुसज्जित हो जाता है तो एक चादर या चार स्त्रियाँ वर के ऊपर तान देती हैं और चादर क ऊपर बहनोई सात बार सूत पूरता है। इसी को पुरइन-पूरना कहा जाता है। जस जसे बहनोई सूत पूरता जाता है, स्त्रियाँ गीतो क माध्यम से उसे गाली देती ह और विनोदपूण वातावरण की सष्टि करती हैं—

पहिलो पुरइन पूरिओ हुरकिनिआ के जाये।
दुसरो पुरइन पूरिओ तुरकिनिआं के जाय।'

---

१ पीले रग से रगा हुआ ढीला ढाला वस्त्र जो घुटनो के नीचे तक लटकता है और इसे कुरते के ऊपर पहनाया जाता है। इसी समय पीले रग स रगी हुई धोती भी पहनाई जाती है।

'निकरौसी'

उपर्युक्त आचारों के पश्चात् वर खड़ा होता है और ससुराल के लिए प्रस्थान करना चाहता है परन्तु मातामही, माता, ताई, चाची और बुआ उसका मार्ग रोकती हैं—

> 'पटुली पांय धर ठाड़ो लड़इता आजी चलन ना देय।
> तुम को आजी मेरी बहुआ लइया पदन को जमन दहेज।'

इसी प्रकार अन्य लोग भी मार्ग रोकते हैं और वर उनको आश्वासन देता है। वर घर के बाहर आता है और पालकी में बैठता है। इस समय वर की भाई के ऊपर 'नून राई' उतारती है जिससे कि भाई की यात्रा निर्विघ्न पूरी हो और उस पर किसी की कुदृष्टि का प्रभाव न पड़े।

'कुआं ब्याहना'

'निकरौसी' के पश्चात् वर पालकी पर बैठकर तथा अन्य स्त्रियाँ गाते हुए पैदल कुएं के पास जाती हैं। कुएं की हल्दी चावल जल से पूजा की जाती है। माता को इस बात का भय रहता है कि बहू के आने पर, अपने प्रेम का जो एकाधिकार पुत्र पर था वह छिन जाएगा अतः वह इसको सहन नहीं कर सकती। पुत्र तो विवाह करने जाएगा ही अतः वह सोचती है कि इससे तो अच्छा है कि जीवन ही समाप्त कर दिया जाए। हो सकता है कि इस प्रकार में प्राचीन काल में वह कभी मरना श्रेयस्कर समझती हो पर अब तो यह प्रथा मात्र रह गई है। वस्तुतः माता कुएं में गिरकर मरना नहीं चाहती। वह तो गिरने का केवल प्रदर्शन करती हुई दिखाई है। वर उसको मना करता है और गीत में स्त्रियाँ कहती हैं—

> कुआं गिरन को माया जो बहठी बना गिरन ना देय।

कुआं ब्याहने के पश्चात् गाजे बाजे के साथ बारात प्रस्थान कर देती है और पालकी में बैठकर वर चल देता है। लोकरीति के अनुसार वर प्रस्थान करने पर पीछे घूमकर नहीं देखता।

'नकटौरी'

जब बारात में परिवार के प्रायः सभी पुरुष सदस्य एवं सम्बन्धी चले जाते हैं तो स्त्रियों को विशेष काम नहीं रहता। स्त्रियाँ सोचती हैं कि पुरुष लोग तो बारात का आनन्द ले रहे हैं और विवाह संस्कार में सम्मिलित होकर प्रसन्न हो रहे हैं। अतः वे ही इस आनन्द से क्यों वंचित रहें। परिणामस्वरूप वे 'नकटौरी' करती हैं। इसमें घर के अन्दर आँगन में रात्रि के समय एक स्त्री वर का तथा दूसरी वधू का वेश धारण करती है। कुछ स्त्रियाँ बाराती बन जाती हैं और कुछ कन्यापक्ष की।

विवाह संस्कार मे जितने भी आधार होते हैं, उन सबका यहाँ अभिनय किया जाता है। 'नग निछावर' को भी स्थान दिया जाता है। 'नकटौरे' के इस स्वरूप को देख कर सरलतापूर्वक कहा जा सकता है कि यह शब्द 'नाटक' का ही विकसित रूप है।

यह 'नकटौरा' प्रत्येक रात्रि मे तब तक किया जाता है जब तक बारात वापस न आ जाए। इस नाटक का अभिनय आगन मे होता है और इस बात की 'चौकसी' रखी जाती है कि कोई पुरुष लुक छिपकर इसे देख न ले। यदि कोई पुरुष ऐसा करता हुआ पकड़ लिया जाता है तो उसकी कसकर पिटाई होती है।

कन्या-पक्ष मे बारात आने का दिन

जिस दिन बारात आने को होती है, उस दिन कन्या के घर पूजन वाले उस के पितामह पितामही, ताऊ-ताई, चाचा चाची, माता पिता, भाई भाभी मामा मामी सभी व्रत रखते हैं। विवाह संस्कार के लिए मामा मण्डप छा देता है। विवाह की अन्य तयारियाँ होने लगती हैं।

जब बारात आ जाती है तो वह पक्ष की ओर से नाई 'ऐपनबारी' लेकर आता है। इसके पश्चात कन्या का पिता या बड़ा भाई वर के पिता से जाकर मिलता है और उसे दक्षिणा देता है। तत्पश्चात पुरजन परिजन बारात का स्वागत करते है और उन्हें 'जनवासे में ठहरा दिया जाता है।

'द्वारचार'

कन्या के द्वार को भली भांति सजाया जाता है। दो कहारिन द्वार के दोनो ओर अपने सिर पर कलश लेकर खड़ी होती है। कलशो पर लोटे और उन पर कटो रिया रखी जाती है। ये कटोरिया अनाज से भरी होती है और उन पर घी का दीपक रखा होता है। द्वार के अन्दर पड़ोस तथा सम्बन्धी स्त्रियाँ वर के स्वागत के लिए खड़ी होती हैं। बारात के साथ वर पालकी पर चढ़कर आता है कनौजी क्षेत्र में घोड़े पर चढ़कर वर के आने की प्रथा बहुत कम है। वर के आते ही पुरोहित थाली मे रखे हुए पूजा के सामान से उसकी पूजा करता है। स्त्रियाँ उसके ऊपर जो न रत फेंकती हैं और इसी अवसर पर पहली बार कन्या छुपकर वर का दर्शन-लाभ करती है। वर का विष्णु-रूप म माना जाता है अत सास ससुर उसकी आरती उतारते हैं तथा दान-दक्षिणा देते हैं। कभी कभी दहेज के प्रश्न पर वर तथा कन्या प क्षों म इस समय कुछ मन मुटाव भी हो जाता है पर ऐसा सामान्यतया कम ही होता है। द्वार चार की समस्त क्रिया के साथ स्त्रियाँ गीत भी गाती जाती हैं। बाराती वर के साथ 'जनवासे' लौट जाते हैं और उनके खाने के लिए 'पौन दस' भेज दी जाती है।

विवाह का सर्वाधिक महत्वपूर्ण संस्कार भांवरें'

वर का बड़ा भाई नाई के द्वारा वधू के लिए वस्त्राभूषण लाता

साथ सिंदुरा तथा शीशा, सिन्दूर तथा शृंगार की अन्य सामग्री भी होती है। पुरोहित मण्डप के नीचे एक पत्थरी पर वर को तथा दूसरी पर वधू को उठाता है। माता कन्या का हाथ और वर का अंगूठा हल्दी से रंग देता है। इसे 'हाथ पीले करना' कहा जाता है और यह विवाह की भूमिका मानी जाती है। इसके पश्चात जिन जिन लोगों ने व्रत रखा होता है, वे लोग कन्या के पैर पूजते हैं। आटे की लोई के अन्दर एक रुपया रखा जाता है। इसे कहते 'पहुन' हैं और इसी से पहले माता पिता और बाद में अन्य लोग कन्यादान देते हैं। कन्या का सगा भाई वर वधू के हाथ में हवन के लिए लाजा देता है।

कन्यादान के पश्चात वधू को दाहिनी ओर बिठाकर पुरोहित गणेश गौरी का पूजन कराता है। वधू और वर का कुछ स्थान बदल कर वह वधू को वर की बाईं ओर बिठा देता है। हवन होता है और दोनों की गाँठ जोड़कर भाँवरें फिराई जाती हैं। वस्तुतः जब तक भाँवरें नहीं होतीं तब तक विवाह पूरा नहीं माना जाता और पुत्री पर पति का अधिकार न होकर पिता का ही अधिकार रहता है। छः से लेकर जब तक छः भाँवरें होती हैं तब तक भी पिता अपनी पुत्री के अधिकार से वंचित नहीं होता, पर ज्यों ही सातवीं भाँवर होती है पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार हो जाता है—

'अरे पहिली भाँवरि होय कि अब धिया बाप की।
अरे दूसरी भाँवरि होय कि अब धिया बाप की।

+ + +

कि अरे अब सतएँ भाँवरि होय कि अब धिया साजन की'।

भाँवरों के पश्चात वर-वधू को 'नई रचना' के पास ले जाया जाता है। वहाँ उनसे पूजा कराई जाती है। इस समय वर की बुद्धि-परीक्षा भी की जाती है। इस समय वर से एक लोकाचार कराया जाता है जिसे बाती मिलाना कहते हैं। दीपक में जलती हुई दो बत्तियों को वर एक में मिला देता है और इस प्रकार पृथक-पृथक् जलती हुई दो ज्योतियाँ एक में मिल जाती हैं। यह आचार इस बात का प्रतीक है कि वर वधू में निवास करने वाले दो प्राण एक हो गए हैं। शरीर दो हैं पर प्राण एक ही है। बाती मिलाने के लिए वर को दक्षिणा मिलती है। इसी समय सालियाँ सलहजें वर से भाँति भाँति का हास्य विनोद करती हैं।

'भात' तथा बढ़ार के दिन

भात के दिन सन्ध्या समय 'कच्चा खाना' परोसा जाता है और स्त्रियाँ ज्योनार गाती हैं। इस ज्योनार में बरातियों का हास्य विनोद में अनेक गालियाँ गाई जाती हैं। 'बढ़ार' के दिन अपराह्न काल में 'पानगी' (शिष्टाचार) होता है। कन्या पक्ष के लोग पुरोहित द्वारा बतलाई हुई बहुत-सी सामग्री लेकर जनवास जाते हैं। वहाँ

पर बाराती लोग उनका आदर सत्कार करते हैं। कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष की तथा वर-पक्ष के लोग कन्या पक्ष की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हैं।

शिष्टाचार के पश्चात वर को 'कलवा' (पलङाचार) के लिए घर के अन्दर बुलाया जाता है। सजे हुए पलंग पर उसे बिठाया जाता है। साली सलहजें विनोदपूर्ण बातें करती हैं। वर को खाने के लिए मनाया जाता है पर वह जब तक मनचाही वस्तु नहीं ले लेता है कलेवा नहीं करता।

सन्ध्या समय बारातियों को पक्का भोजन कराया जाता है। इस समय भी भोजन के साथ साथ उन्हें अनेक गालियाँ दी जाती हैं।

विदा

विवाह के तीसरे दिन कन्या पक्ष की ओर से वर के पिता को 'बेला' में चने की दाल रखकर और कुछ द्रव्य भेंट किया जाता है। विदा की तयारी होती है और बारातियों को द्वार पर बुलाकर बिठाया जाता है उनके मस्तक पर टीका लगाकर उन्हें एक या दो रुपया भेंट किया जाता है। इस प्रथा को 'बरतारुनि' कहा जाता है, पर इसका प्रचलन विशेषकर ब्राह्मणों में ही है। जब विदा होने वाली होती है तो वर को घर के अन्दर बुलाकर उससे मंडप के 'गूंथ' खुलवाये जाते हैं तथा वर से 'भटठी' को गिरवा दिया जाता है और विषादपूर्ण वातावरण में आंसुओं और गीतों के साथ लड़की को ससुराल भेज दिया जाता है।

वधू का ससुराल पहुंचना

जब वधू वर के घर पहुंचती है तो पहले उसे घर के किसी बाहर कमरे में ठहरा देते हैं और शुभ मुहूर्त में उसे घर के अन्दर प्रवेश कराया जाता है। वर वधू को देई देवता के पास ले जाया जाता है और उनसे पूजा करवाई जाती है। घर की सभी स्त्रियाँ वधू का मुख देखती हैं, इसे 'मुख दिखाई' कहा जाता है। मुख देखने के उपलक्ष्य में बहू को भेंट में वस्त्राभूषण और रुपए मिलते हैं। इसके पश्चात वर वधू गाँठ जोड़कर अन्य स्त्रियों के साथ किसी निश्चित स्थान पर मण्डप 'सिराने' के लिए जाते हैं। जाते समय वधू को वर के तथा लौटते समय वर को वधू के कोड़े मारने का आदेश दिया जाता और शकुन साधने के लिए उन्हें वसा करना भी पड़ता है।

अन्त्येष्टि संस्कार

जब रोगी की नाड़ी चलना बन्द हो जाती है तो उसे लिपी हुई भूमि पर बिछौना के नीचे कुश रखकर लिटा दिया जाता है। इस कार्य को कुशासन देना कहा जाता है। मृत्यु हो जाने पर यदि सुहागिन हुई तो उसे रंगीन वस्त्र से ढककर बांस की अर्थी में बांध दिया जाता है। विधवा तथा पुरुष को सफेद वस्त्र से ढका

साथ सिंधुरा, कंघा, शीशा, सिन्दूर तथा शृंगार की अन्य सामग्री भी होती है। पुरोहित मंडप के नीचे एक पटली पर वर को तथा दूसरी पर वधू को बैठाता है। माता कन्या का हाथ और वर का अंगूठा [illegible] हैं। इसे 'हाथ पीले करना' कहा जाता है और यह विवाह की भूमिका माना जाता है। इसके पश्चात जिन जिन लोगों ने व्रत रखा होता है, वे लोग कन्या के पैर पूजते हैं। आटे की लोई के अन्दर एक रुपया रखा जाता है, इसे कहते 'पहुँच' हैं और इसी से पहुँच माता पिता और बाद में अन्य लोग कन्यादान करते हैं। कन्या का छोटा भाई वर वधू के हाथ में हवन के लिए लावा देता है।

कन्यादान के पश्चात वधू को बाँयी ओर बैठाकर पुरोहित गणेश गौरी का पूजन कराता है। वधू और वर को [illegible] देकर वह वधू को वर की बाईं ओर बिठा देता है। हवन होता है और दोनों की गाँठ जोड़कर भाँवरें फिराई जाती हैं। वस्तुतः जब तक भाँवरें नहीं होतीं तब तक विवाह पूर्ण नहीं माना जाता और पुत्री पर पति का अधिकार न होकर पिता का ही अधिकार रहता है। एक से लेकर जब तक छः भाँवरें होती हैं तब तक भी पिता अपनी पुत्री के अधिकार से वंचित नहीं होता, पर ज्योंही सातवीं भाँवर होती है पति का पत्नी पर पूर्ण अधिकार हो जाता है—

'अरे पहिली भाँवरि होय कि अब धिआ बाप की।
अरे दुसरी भाँवरि होय कि अब धिआ बाप की।
+ + +
कि अरे अब सतई भाँवरि होय कि अब पिया साजन की'।

भाँवरों के पश्चात वर-वधू को [illegible] के पास ले जाया जाता है। वहाँ उनसे पूजा कराई जाती है। इस समय वर की बुद्धि-परीक्षा भी की जाती है। इस समय वर से एक लोकाचार कराया जाता है जिसे बाती मिलाना कहते हैं। दीपक में जलती हुई दो बत्तियों को वर एक में मिला देता है और इस प्रकार पृथक-पृथक जलती हुई दो ज्योतियाँ एक में मिल जाती हैं। यह आचार इस बात का प्रतीक है कि वर वधू में निवास करने वाले दो प्राण एक हो गए हैं। शरीर दो हैं पर प्राण एक ही है। बाती मिलाने के लिए वर को दक्षिणा मिलती है। इसी समय साली सलहजें वर से भाँति भाँति का हास्य विनोद करती हैं।

'भात' तथा 'बढ़ार' के दिन

भात के दिन सन्ध्या-समय कच्चा-खाना परोसा जाता है और स्त्रियाँ 'ज्योनार' गाती हैं। इस ज्योनार में बरातियों का हास्य विनोद में अनेक गालियाँ गाई जाती हैं। बढ़ार के दिन अपराह्न काल में 'बानती' (शिष्टाचार) होता है। कन्या पक्ष के लोग पुरोहित के द्वारा बनवाई हुई बहुत सी सामग्री लेकर जनवास जाते हैं। वहाँ

र बाराती लोग उनका आदर सत्कार करते है। कन्या पक्ष के लोग वर पक्ष की या वर-पक्ष के लोग कन्या पक्ष की अत्युक्तिपूर्ण प्रशंसा करते हैं।

शिष्टाचार के पश्चात वर को 'कलवा' (पलटाचार) के लिए घर के अन्दर लाया जाता है। सजे हुए पलंग पर उसे बिठाया जाता है। साली सलहजें विनोदपूर्ण बातें करती हैं। वर को खाने के लिए मनाया जाता है पर वह जब तक मनचाही वस्तु नहीं ले लेता है कलवा नहीं करता।

सन्ध्या समय बारातियों को पक्का भोजन कराया जाता है। इस समय भी भोजन के साथ साथ उन्हें अनेक गालियाँ दी जाती है।

विदा

विवाह के तीसरे दिन कन्या पक्ष की ओर से वर के पिता को 'बेला' में चने की दाल रखकर और कुछ द्रव्य भेंट किया जाता है। विदा की तयारी होती है और बारातियो को द्वार पर बुलाकर बिठाया जाता है, उनके मस्तक पर टीका लगाकर उन्हें एक या दो रुपया भेंट किया जाता है। इस प्रथा को 'बरतार्उनि' कहा जाता है, पर इसका प्रचलन विशेषकर ब्राह्मणों में ही है। जब विदा होने वाली होती है तो वर को घर के अन्दर बुलाकर उससे मंडप के 'गूंथ' खुलवाये जाते है तथा वर से 'भटठी' को गिरवा दिया जाता है और विषादपूर्ण वातावरण में आँसुओं और गीतों के साथ लडकी को ससुराल भेज दिया जाता है।

वधू का ससुराल पहुंचना

जब वधू वर के घर पहुंचती है तो पहले उसे घर के किसी बाहर कमरे में ठहरा देते हैं और शुभ मुहूर्त में उसे घर के अन्दर प्रवेश कराया जाता है। वर-वधू को दई देवता के पास ले जाया जाता है और उनसे पूजा करवाई जाती है। घर की सभी स्त्रियाँ वधू का मुख देखती हैं, इसे 'मुख दिखाई' कहा जाता है। मुख देखने के उपलक्ष्य में बहू को भेंट में वस्त्राभूषण और रुपए मिलते हैं। इसके पश्चात वर-वधू गाँठ जोडकर अन्य स्त्रियों के साथ किसी निश्चित स्थान पर मण्डप सिराने के लिए जाते हैं। जाते समय वधू को वर के तथा लौटते समय वर को वधू के कोड़े मारने का आदेश दिया जाता और 'शकुन' साधने के लिए उन्हें वसा करना भी पड़ता है।

अन्त्येष्टि संस्कार

जब रोगी की नाड़ी चलना बन्द हो जाती है तो उसे लिपी हुई भूमि पर बिछौना के नीचे कुश रखकर लिटा दिया जाता है। इस कार्य को 'कुशासन देना' कहा जाता है। मृत्यु हो जाने पर यदि सुहागिन हुई तो उसे रंगीन वस्त्र से ढककर बांस की अर्थी में बाँध दिया जाता है। विधवा तथा पुरुष को सफेद वस्त्र से ढका

जाता है। यदि पत्नी जीवित हुई तो वह अपनी चूड़ियाँ और बिछिया तोड़कर पति के वक्ष स्थल पर रख देती है तथा अपना सिन्दूर पोंछ डालती है। श्मशान पर जाकर शव को स्नान कराया जाता है और जलाने के लिए बनी हुई चिता पर उसे रख दिया जाता है तथा लकड़ी कंडे से ढककर दाह कर दिया जाता है। माता पिता को पुत्र, और पुत्र न हुआ तो स्त्री का पति तथा पुरुष को भाई आग देता है। उपर्युक्त व्यक्ति के अभाव में पंच दाग भी लगता है। दाग लगाने वाला व्यक्ति भूमि शयन करता है और सदैव अपने पास कोई धार वाला हथियार रखता है। नव दिन 'नौवार' होता है जिसमें बाल उतराये जाते हैं। ११वें दिन एकादशी और १३वें दिन यदि दिन शुभ हुआ अथवा किसी अन्य शुभ मुहूर्त पर हवन किया जाता है और 'सूतक' समाप्त होता है। इस दिन ब्राह्मणों तथा भाइयों को भोजन तथा दान दिया जाता है।

कनौजी क्षेत्र में जितने भी संस्कार हैं उनका सम्पादन गीतों के बिना नहीं होता। पर अन्त्येष्टि संस्कार इसका अपवाद है। इस संस्कार में अनेक लोकाचारों का विधान होता है पर वे आचार गीतों के साथ नहीं चलते पर इसका आशय यह नहीं कि मृत्यु संस्कार के विषय को प्रस्तुत करने वाले गीतों का कनौजी में नितान्त अभाव है। कनौजी में कुछ गीत, विशेष रूप से शान्त रस के तथा भजन मिलते हैं जिनमें रोगी की दशा, उसकी मृत्यु, सगे सम्बन्धियों का रुदन, श्मशान, चिता का जलाना—इन सभी का वर्णन रहता है।[1] एक गीत में चिता के प्रज्वलित होने का वर्णन इस प्रकार किया है—

हाड़ जरें जइसे चंदन लकड़ी बार जरें जइसे घास।
देह जरत है कंचन जइसी आउत बास कुबास।'

मृत्यु-सम्बन्धी इन गीतों को मृत्यु संस्कार के समय न गाकर चिन्तन के क्षणों में गाया जाता है और मन को इस संसार की असारता का ज्ञान कराया जाता है।

विविध संस्कारों और उनसे सम्बद्ध लोकाचारों के विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि संस्कारों में वैदिक आचार अथवा शास्त्रोक्त आचारों की संख्या लोकाचारों की संख्या की अपेक्षा बहुत न्यून है। इन लोकाचारों से शास्त्रीय आचारों का प्रतिनिधि पुरोहित भी इतना प्रभावित हुआ है कि वह भी शास्त्रीय पद्धति के साथ लोक-पद्धति का पालन कराना नहीं भूलता। कनौजी प्रदेश में शिक्षित परिवारों में यदि स्त्रियाँ लोकाचारों से अनभिज्ञ हों तो पुरोहित ही इस उत्तर-दायित्व को सँभाल लेता है। इसके साथ ही एक बात और है। लोकाचार भी लोकगीतों का आश्रय लेकर ही अपने को मूर्तिमान कर पाते हैं। लोकगीतों द्वारा ही इन्हें आगे बढ़ने की गति प्राप्त होती है। इस दृष्टि से लोकगीतों को लोकाचारों का मेरुदण्ड कहा जा सकता है।

---

१ अनिल—कनउजी लोकगीत, पृ० २७८

कनौजी लोक साहित्य म अभिव्यक्त पारिवारिक, सामाजिक राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन के उपयुक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि यह समाज बहुरगी चित्रा वाला है। इसम एक ओर तो उच्च आदर्शवादिता है दूसरी ओर कही कही पूण यथार्थवादिता भी है लोक-साहित्य म जीवन का ऐसा कोई पहलू नही है, जिसे छोड दिया गया हो। लोकगीतो म राजनीति का विरल ही उल्लेख होता है। आर्थिक दृष्टि से विचार करने पर हम ज्ञात होता है कि इन गीतो का समाज अत्यधिक समृद्ध है। सोने के गडुआ म पानी पीना और सोने के थाल म भोजन करना तो मानो साधारण सी बात ही है। इस प्रकार हम देखते हैं कि समाज के नाना भावो और काय व्यापारा की लोक साहित्य म मनोरम झाँकी प्रस्तुत की गई है।

उपसहार

परम्परा से अनुश्रुत जन-जन मे व्याप्त कनौजी का लोक साहित्य बहुत समृद्ध है, जिसम कि लोकगीत, छोटे कथात्मक गीत मे लेकर आल्हा, ढोला जैसे दीघकाय पँवारे तथा कहावतें, पहेलियाँ आदि सभी का समावेश है।

कनौजी लोकगीतो को पाच वर्गो—सस्कारगीत, ऋतुपवगीत, व्रत गीत, क्रिया गीत और जाति गीत, म बाटा जा सकता है। कनौजी के सस्कार-गीत अन्य अवसरो या विषयो से सम्बद्ध गीतो से सख्या मे तो बहुत अधिक हैं ही, काव्यत्व की दृष्टि से भी ये ही सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं। अनुष्ठानो के समय औपचारिक गीतो के अतिरिक्त सभी सस्कार गीत रस लय, ममस्पर्शिता, भावाभिव्यजना—सभी दृष्टियो से अत्यत समृद्ध हैं। इसी कारण से गीतो के विश्लेषण करते समय तथा सास्कृतिक जीवन का चित्र प्रस्तुत करते समय इन्ही का अधिकाधिक उपयोग किया गया है और इन्ही गीतो के माध्यम से कनौजी प्रदेश के सामाजिक जीवन का विशद चित्र उपस्थित किया गया है। इनमे परिवार के सभी सम्बन्धो या यो कहा जाए कि भारतीय सम्मिलित परिवार म जो भी सम्बन्ध सम्भव हैं उन सभी के पारिवारिक व्यवहार का भी विशद वणन मिलता है और इस प्रकार ये गीत न केवल साहित्य की दृष्टि से ही वरन समाज शास्त्र के लिए उपयोगी सामग्री का भी काम करते हैं।

सावन के गीत भी भाव की दृष्टि से अत्यन्त उत्कृष्ट हैं तथा बारहमासो म विरहिणी नायिका की विरहजन्य पीडा का मार्मिक परन्तु अनलकृत चित्रण मिलता है।

इस प्रदेश मे पँवारा साहित्य भी पर्याप्त मात्रा म व्यापक है, परन्तु शिक्षा के प्रसार के साथ इनका धीरे धीरे लोप सा होने लगा है। गाँव के साक्षर लोग छपे हुए खड़ी बोली तथा कनौजी के मिश्रित पँवारे कस्बे के बाजार से लाकर पढ़ते हैं और इस प्रकार लोकप्रिय 'अल्हैया' या 'ढोलइया' की पूछ दिनो दिन कम होती जा रही है। ये पँवारे इतने अधिक विस्तृत होते हैं कि इन्हें लोक महाकाव्य की सज्ञा दी जा

सकती है। इन लोक महाकाव्यों अथवा प्रेम गाथाओं को हिन्दी के कुछ साहित्य मर्मज्ञों ने बलड का पर्याय मानकर इन्हें लोकगाथाओं का नाम दिया है जिसे सर्वथा उचित नहीं कहा जा सकता। सर्वप्रथम के नायक, विशेष रूप से आल्हा के नायक आल्हा ऊदल को इस प्रदेश में महान वीरों के रूप में सर्वाधिक लोकप्रियता मिली है और उनकी दृष्टि में इन्हें ही सच्चा लोक नायक कहा जा सकता है।

इस प्रदेश में मिलने वाली लोक-कथाओं की संख्या तो असीमित है। इन लोक कथाओं में जाति स्वभाव का पर्याप्त मात्रा में चित्रण किया गया है। कहार बाम्हनों का अत्यन्त मूर्ख के रूप में और नाई को चमत्कार आत्मा के रूप में चित्रित किया गया है। इसी प्रकार प्रायः सभी जातियों के स्वभाव का इनमें मनोरंजक चित्र प्रस्तुत किया गया है।

पशुओं को इन कथाओं में मनुष्य की भाँति बातचीत तथा अन्य मानवीय कार्यों को करते हुए दिखलाया गया है। परियों और दानवों से सम्बन्ध रखने वाले अद्भुत कार्य-व्यापारों का इनमें चित्रण होता है। प्रत्येक वर्ग की लोक-कथा में किसी-न-किसी मात्रा में अलौकिक तत्त्व अवश्य ही उपस्थित होते हैं।

कनौजी में प्राप्त होने वाले लोकगीत, पँवारे और लोक-कथाएँ सभी में भावना और कल्पना तत्त्व प्रधान होते हैं जबकि कहावतों और पहेलियों में बुद्धि तत्त्व की प्रधानता रहती है। इनमें सरलता और अभिव्यंजना द्वारा लोकानुभव को सूत्र रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इनमें बुद्धि विलास और चमत्कार का अनोखा समन्वय मिलता है। यद्यपि भावना को इनमें अधिक स्थान नहीं भी मिलता है फिर भी इस अभाव की पूर्ति उक्ति वैचित्र्य तथा लोकानुभव से घनीभूत रत्नों द्वारा हो जाती है। इन विधाओं के माध्यम से भी समाज की सूक्ष्म परन्तु मनोरम झाँकी देखने को मिलती है।

इस प्रकार कनौजी प्रदेश के लोक साहित्य में सहज परन्तु मार्मिक गुणों की प्रचुरता रहती है। इसके द्वारा इस प्रदेश की सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का सफलतापूर्वक अध्ययन किया जा सकता है। समाज शास्त्र के अध्ययन के लिए तो यह लोक-साहित्य बहुत ही उपयोगी है।

परिशिष्ट

सदभ ग्रथ-सूची

इस शोध प्रबध को तयार करने के लिए यों तो अनेक ग्रथा का अध्ययन करना पडा है परन्तु यहाँ केवल उन्ही ग्रन्थो की सूची दी जा रही है जिनके उद्धरणों का इस अध्ययन में उपयोग किया गया है—

हिन्दी

१	कविता कोमुदी, भाग ५ (ग्राम गीत)	प० रामनरेश त्रिपाठी
२	ग्राम साहित्य भाग ३	"
३	ब्रज लोक साहित्य का अध्ययन	डा० सत्येन्द्र
४	मध्य युगीन हिन्दी साहित्य का लोक तात्विक अध्ययन	
५	लोक साहित्य विज्ञान	"
६	लोक साहित्य की भूमिका	डा० कृष्णदेव उपाध्याय
७	भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन	"
८	हिन्दी लोकगीत	राम किशोरी श्रीवास्तव
९	धीरे बहो गगा	देवेन्द्र सत्यार्थी
१०	बेला फूले आधी रात	
११	धरती गाती है	"
१२	मथिली लोकगीत	राम इकबालसिंह 'राकश'
१३	छत्तीसगढी लोकगीत	श्यामा चरण दुबे
१४	पृथिवी पुत्र	डा० वासुदेवशरण अग्रवाल
१५	बिहारी सतसई	बिहारी
१६	राजस्थानी लोकगीत	सूर्यकरण पारीक
१७	भारतीय लोक साहित्य	श्याम परमार

१८ हरियाना प्रदेश का लोक साहित्य — डा० शंकरलाल यादव
१९ भोजपुरी लोकगाथा — डा० सत्यव्रत सिन्हा
२० भारतीय प्रेमाख्यान परम्परा — परशुराम चतुर्वेदी
२१ टंडन अभिनंदन ग्रन्थ — सम्पादित
२२ भोजपुरी भाषा और साहित्य — डा० उदयनारायण तिवारी
२३ मगही भाषा और उसका साहित्य — डा० कृष्णलाल हंस
२४ हिन्दी भाषा और लिपि — डा० धीरेन्द्र वर्मा
२५ ग्रामीण हिन्दी — ,,
२६ ब्रजभाषा — ,,
२७ मुहावरे — प० रामदहिन मिश्र
२८ अर्थ विज्ञान — डा० बाबूराम सक्सेना
२९ राजस्थानी कहावतें — डा० कन्हैयालाल सहल
३० लोक वार्ता (पत्रिका) — कृष्णानन्द गुप्त
३१ बोल चाल — अयोध्या सिंह उपाध्याय
३२ उत्तर भारत की लोक कथायें — सावित्री वर्मा
३३ सौराष्ट्र की लोक कथायें — प्रगाशी राम मारवाड

अंग्रेजी

१ रलिक्स आव एंशिएण्ट इंगलिश पोइट्री — बिशप पर्सी
२ ओल्ड इंगलिश बैलड — एफ० बी० गुमर
३ दी इंगलिश एण्ड स्काटिश पापुलर बैलड्स — एफ० जे० चाइल्ड
४ इंगलिश बैलड्स — राबर्ट ग्रेव्स
५ बैलेड्स एण्ड टेल्स आफ आसाम — प्रफुल्ल गोस्वामी
६ सांग्स आफ आल्हा — वाटर फील्ड
७ इंगलिश एण्ड स्काटिश बैलड — एफ० जे० चाइल्ड
८ दी बैलड — फ्रैंक सिजविक
९ लिंग्विस्टिक सर्वे आफ इंडिया — डा० ग्रियर्सन
१० दी क्वीन आफ एयर — जान रस्किन
११ लेसन्स इन प्रावर्ब्स — आर० सी० ट्रेंच
१२ दी गोल्डेन बाउ — डा० जे० जी० फ्रेजर
१३ फोक टेल्स आफ आल नेशन्स — एफ० एच० ली
१४ दी फाकटेल — स्टिथ थाम्पसन
१५ दी साइन्स आव फेयरी टेल्स — एडविन सिडनी हार्टलैण्ड
१६ एन्शेंट कस्टम्स एण्ड रीसेंट फाकटेल थियरीज — ई० एम० फास्टर

१७	रेस, लंग्वेज एण्ड कल्चर	फ्राज बोआज
१८	हैण्ड बुक आफ फोकलोर	सी० एस० बर्न
१९	हिन्दू फिक्शन	हारेस हमैन विल्सन

संस्कृत

१	नाट्य शास्त्र	भरत
२	साहित्य दर्पण	विश्वनाथ
३	उत्तरराम चरित	भवभूति
४	मेघदूत	कालिदास
५	काव्यादर्श	दण्डी
६	चन्द्रालोक	जयदेव
७	मनुस्मृति	
८	कात्यायन गृह्यसूत्र	
९	पारस्कर गृह्यसूत्र	
१०	आश्वलायन गृह्यसूत्र	
११	महाभारत	
१२	रामायण (वाल्मीकि)	
१३	ऋग्वेद	
१४	यजुर्वेद	
१५	अथर्ववेद	

गुजराती

१	गुजराती साहित्य नां स्वरूपो	मंजुलाल मजूमदार
२	लोक साहित्य	झवेरचन्द मेघाणी
३	ववराविधा नु तत्व दर्शन	फीरोजशाह रुस्तमजी मेहता

विश्वकोष एवं शब्द-कोष

१ एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका
२ एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना
३ एनसाइक्लोपीडिया आफ रिलिजन एण्ड एथिक्स
४ डिक्शनरी आफ फोकलोर
५ डिक्शनरी आफ फोकलोर मैथोलाजी एण्ड लीजेण्ड
६ आप्टे डिक्शनरी
७ नेपाली शब्दकोष

८ हिन्दी विश्वकोष
९ हिन्दी शब्द सागर
१० मराठी व हिन्दी शब्द संग्रह

पत्रिकाएँ

१ जर्नल आफ रायल एशियाटिक सोसाइटी आफ बंगाल
२ मैन इन इंडिया
३ माडर्न रिव्यू
४ हिन्दी अनुशीलन
५ जनपद
६ सम्मेलन पत्रिका
७ त्रिपथगा।